प्रस्थान







८१४.८
काम/प्र-१

श्रीकामता प्रसाद मवाखी



माननीय श्री सम्पूर्णानन्दजी,
शिक्षा-सचिव, यू. पी. की

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, पुस्तकालय
इलाहाबाद

वर्ग संख्या ८१५.८
पुस्तक संख्या काम|प्र-१
क्रम संख्या

प्रिय का

मैं आ

यह तो

प्रत्येक पु

उलट डाले। थोड़ा-थोड़ा प्रायः सबको मैं देखा। निबन्ध अच्छे हैं, उनके विषय भी अच्छे हैं। भाषा भी अच्छी है।

भवदीय—
सम्पूर्णानन्द



HINDUSTANI ACADEMY,

UNITED PROVINCES

Name of Book -

Author

Publisher

Section No. - Library No.

Date of Receipt -

प्रस्थान

(उत्साहवर्द्धक एवं ओजस्वी १५ निबंधों का संग्रह)



लेखक :—

श्री कामताप्रसाद सरावगी

—:०:—

प्रकाशक

पुस्तक-भवन, बनारस सिटी

वास्ते

शान्ति-मन्दिर

कोट, गाज़ीपुर

प्रथमावृत्ति] मार्च १९४६ [मूल

प्रकाशक—

पुस्तक-भवन, बनारस सिटी

वास्ते

शान्ति - मन्दिर

कोट, गाजीपुर

सर्वाधिकार लेखक द्वारा सुरक्षित

मुद्रक—

श्रीनाथदास अग्रवाल

टाइम टेबुल प्रेस,

बनारस । ८०२-४५

जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी !

समर्पण

स्वर्गीया जननी,

तुम्हारे ही रज-कण से निर्मित, तुम्हारे ही हाथों का खिलौना आज चला है, तुम्हें तुम्हारी ही वस्तु प्रदान करने ! यह एक आश्चर्य है, विडम्बना है और है उसकी निरी वाचालता ! परन्तु दयामयी, वह लाये भी कहाँ से ? जब कि वह भी तुम्हारा ही है !!

धृष्टता पर ध्यान न देना अबोध बच्चे की !

तुम्हें कोटिशः प्रणाम !

तुम्हारा शिशु

कामता

दो शब्द

श्री कामताप्रसादजी ने कृपाकर मुझे अपनी पुस्तक की पाण्डु लिपी देखने का अवसर दिया। इसमें उन्होंने अपने निबंधों का संग्रह किया है और पहले निबंध "प्रस्थान" के ही नाम पर पूरी पुस्तक का नाम दिया है। मैंने कई निबंध पढ़े और उन्हें पढ़कर मैंने पर्याप्त आनन्द और सन्तोष का अनुभव किया।

श्रीकामताप्रसादजी उत्साही नवयुवक हैं और विद्यानुराग के साथ साथ वे संसार की विविध घटनाओं को बड़े विवेक और बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देखते हैं और मनुष्यों के चरित्र और प्रकृति का अच्छा अध्ययन भी करते हैं। अपने देशवासियों की व्यक्तिगत और अपने समाज की सामुदायिक त्रुटियों को अच्छी तरह समझते है और उनका चित्र चित्रण उन्होंने बड़े ही मोहक प्रकार से किया है। विविध देशों के लोगों की कहानियाँ देकर उन्होंने अपनी पुस्तक को अत्यधिक रोचक और शिक्षाप्रद बनाया है।

मैं इस प्रस्थान का स्वागत करता हूँ। मैं आशा करता हूँ कि हमारे बहुत से भाई इससे लाभ उठावेंगे। संसार और समाज के लिये जीवन के प्रत्येक अंग में कार्य कुशल व्यक्तियों की आवश्यकता है। हम कार्य कुशल तभी हो सकते हैं जब हममें वे आवश्यक गुण हों, जिन पर हमारे लेखक

ने इतना जोर दिया है। उन्होंने हमें दर्शाया है कि छोटे-बड़े सबको ही इन गुणों को प्राप्त करना चाहिये, इन्हीं के कारण छोटे बड़े हो सकते हैं और सभी अपने अपने क्षेत्रों में अपने कर्तव्यों का पालन ठीक प्रकार कर सकते हैं।

वास्तव में न कोई छोटा है न बड़ा। अपना कर्तव्य करने वाला प्रत्येक पुरुष बड़ा है, और जो ऐसा नहीं करता वह चाहे जो कोई हो छोटा ही है। इस पुस्तक से मैंने यही शिक्षा ली है। इसी में शान्ति है, संतोष है, इसी में सफलता है, कर्तव्य परायणता है, इसी में स्वार्थ परार्थ सब है। मेरी यह शुभ कामना है कि हमारे लेखक यश प्राप्त करें, उनके सद्भाव संसार के कटु अनुभवों से मलिन न हों, वे ऐसे निबंध लिखकर हमें पर्याप्त मात्रा में देते रहें और अपने आदेश और आचरण से अपने देश और समाज की यथेष्ट सेवा कर सकें।

सेवाश्रम, बनारस
२१ नवम्बर १९४५

श्री प्रकाश

निवेदन

मूकं करोति वाचालं, पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे, परमानन्द माधवम्॥

जन्मजात लेखक सरस्वती के वरद पुत्र होते है। उनके सुधा-सिक्त शब्दों में सञ्जीवनी शक्ति होती है। वे शुष्क हृदयों में भी नवजीवन का सञ्चार कर सकते हैं। मेरा तो यह दुस्साहस ही है। यदि इस अकिञ्चन से किसी की कुछ भी सेवा हो सकी तो मैं इसे सार्थक समझूँगा।

इस पुस्तक का विषय मनुष्यों और विशेषकर नवयुवकों में ओज, आत्म-गौरव और आत्मोन्नति का भाव भरना है। अतः लाभप्रद होने के साथ साथ इसका शिक्षाप्रद होना स्वाभाविक ही है। शिक्षा के शब्द श्रद्धास्पद सन्तो और आदरणीय नेताओं की लेखनी का प्रसाद होना चाहिये। मैं सर्वथा इसका अधिकारी नहीं। परन्तु अभिनय की सफलता के लिये पात्र अपने को अभिनेता नहीं, नायक समझ कर ही तत् सदृश आचरण करता है, उसी भाँति वाचकों की सेवा का भाव रखते हुए मैं भी अपनी वाचालता से मुक्त न रह सका। बड़े लोग 'बड़े बड़ाई ना तजें' का स्मरण करके मेरी धृष्टता पर ध्यान न देंगे और 'पड़ो अपावन ठौर में, कञ्चन तजत न कोय' को ही चरितार्थ करेंगे।

जिन पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं के अवलोकन से सहायता मिली है,

उनके लेखकों तथा प्रकाशकों का मैं अत्यन्त आभारी हूँ । इनमें से 'आगे बढ़ो, सफलता की कुञ्जी' तथा ऐसी ही पुस्तकें एवं 'सरस्वती, विशाल भारत, कल्याण, एवं साप्ताहिक 'आज' विशेष उल्लेखनीय हैं । जिन महानुभावों का मैंने जीवन अंकित किया है, मैं उनका भी कृतज्ञ हूँ ।

आदरणीय श्री श्रीप्रकाशजी ने भूमिका लिखने की और माननीय श्री सम्पूर्णानन्दजी ने अपनी सम्मति देने की जो कृपा की है, उसके लिये मैं श्रद्धा से नत-मस्तक हूँ । श्री पं० वासुदेवजी मिश्र, काव्य-व्याकरण-तीर्थ एवं श्री पं० केशव मिश्रजी से पुस्तक-संशोधन में जो सहायतायें मिली हैं, उसके लिये उपकृत हूँ । भाई गोविन्द प्रसादजी से जो सत्परामर्श एवं प्रोत्साहन मिलता है, उसके लिये शब्दों से कृतज्ञता प्रकट नहीं की जा सकती ।

पुस्तक बसन्त पञ्चमी सं० १९९८ को ही समाप्त होने पर भी विविध झंझटों से प्रकाशित न हो सकी; इसके लिये कृपालु पाठकों से सादर क्षमा-याचना !

कोट, गाजीपुर
१९–२–४६

कामताप्रसाद सरावगी

विषय-सूची

प्रस्थान

"आगे चलो, आगे चलो भाई
पीछु पड़े थाका, पीछे मरे थाका
आगे चलो, आगे चलो भाई"

—श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर

भाइयो ! आगे बढ़ो, सर्वदा आगे बढ़ते रहो । थक कर पीछे पड़े रहना मृत्यु के समान है । सदैव आगे बढ़ते रहो ।

जीवन-संग्राम के पिछड़े सैनिक ! निराश न होओ । पश्चात्ताप न करो । व्याकुल होकर आँसू न बहाओ, रोओ मत । धैर्य्य रखो, साहसी बनो । ओफ, सैनिक ! तुम पीछे रह गये; जब कि तुम्हारे साथी सिपाही प्रस्थान कर चुके, आगे बढ़ गये । ओफ ! तुम विश्राम कर रहे थे, इसी समय आलस्य ने तुम्हारे ऊपर आक्रमण कर दिया और फिर निद्रा ने तुम्हें अकर्मण्यता की सुनहली जंजीर में जकड़ लिया ! और तुम पिछड़ गये !! कोई चिन्ता नहीं ! सैनिक ! धैर्य्य रक्खो, साहस से काम लो और अब भी प्रस्थान कर दो ।

दिन के प्रत्येक चौबीस घण्टे, प्रत्येक घण्टे के साठ मिनट और प्रत्येक मिनट के साठ सेकेण्ड जीवन-संग्राम के नक्कारे हैं, रण-वाद्य हैं, जो निरन्तर बजते रह कर—व्यतीत होते रह कर—हमें विजय-यात्रा के लिये प्रस्थान करने की, उन्नति के दुर्ग पर चढ़ाई करने की और आपदा रूपी शत्रुओं पर टूट पड़ने की तथा उन्हें तहस नहस करके अपने अनिष्ट एवं अपनी हानि का प्रतिशोध लेने की शुभ

चेतावनी देते हैं। क्या नक्कारे की चोट सुन कर भी, विजय घण्टे का शब्द सुनकर भी तुम सोते ही रहोगे ? विपत्ति के शत्रुओं से यों ही लुटते ही रहोगे और अपने प्रबल पराक्रम से—पूरी शक्ति से उन पर टूट नहीं पड़ोगे ? क्या अब भी तुम जीवन-संघर्ष में कायर ही बन कर रहोगे और संग्राम में विजयी होने से बाज़ आयोगे ? क्या तुम अपने प्रतियोगियों से आगे बढ़ना नहीं चाहते ? क्या तुम सफलता का मुकुट धारण करने के इच्छुक नहीं हो ? यदि हाँ, तो सफलता के लिये कूच कर दो, उन्नति के लिये प्रयाण कर दो। देखो, समय रण-भेरी बजा रहा है।

सैनिक ! चल दो, आगे बढ़ो और दौड़ कर साथियों की कतार में चुपके से सम्मिलित हो जाओ। परन्तु सावधान ! उनसे बोलना मत, बातें न करना। वे तुम्हें बातों में फँसा लेंगे, रोक लेंगे और तुम आगे नहीं बढ़ सकोगे। याद रखो—तुम्हें जीवन में गौरव प्राप्त करना है और सर्वप्रथम होना है। इसलिये बढ़ो, सदा आगे बढ़ते रहो। दिन में बढ़ो, रात में बढ़ो और जब वे विश्राम करते रहें—नींद में खर्राटे भरते रहें, तब भी तुम बढ़ते चलो। तुम परिश्रम करते रहो और आगे बढ़ कर अपना संकल्प पूरा करो। सफलता के उच्च शिखर पर चढ़ कर अपना विजय-नाद बजाओ और वहाँ पहले पहुँच कर विश्राम करने वाले अपने साथियों को आश्चर्यान्वित कर दो।

अच्छे अवसर की प्रतीक्षा में वर्तमान का अमूल्य समय नष्ट न कर दो। महत्ता अच्छे अवसर की देन नहीं, यह उन महापुरुषों की बाँदी है जो अपनी कार्यपटुता और अपने अध्यवसाय से अवसर को दास बना लेते हैं। दृढ़ इच्छा-शक्ति अवसर का निर्माण करती है और अध्यवसाय उसे सुनहला बनाता है। अच्छे अवसर अपने आप कभी नहीं आते। उन्हें ढूँढ़ना पड़ता है, परन्तु

ढूँढ़ने की अपेक्षा बहुधा उन्हें स्वयं बनाना पड़ता है। अवसर लगन से काम करने वाले दीवानों की आँखों से बचकर कभी नहीं निकल सकते। सच्चे उद्योगियों की आँखें उन पर पड़ ही जाती हैं। वे अवसर के पीछे पागल बने फिरते हैं और पग-पग पर, प्रत्येक स्थान और प्रत्येक समय में वे उसकी बाँकी झाँकी देखा करते हैं और उसे अपनाये बिना कभी नहीं छोड़ते।

कर्मवीर भीषण परिस्थितियों में होते हुए, आपदाओं से घिरे होने तथा उन्नति के सारे मार्ग बन्द रहने पर भी अवसर को खोज लेते हैं और उसे अपना अनुचर बना लेते हैं। विपत्ति के बादल गरजते रहने पर तथा आपदा की अन्धेरी रात्रि में भी अवसर उनके पास चला आता है और प्रसन्नता का प्याला पिला-पिला कर उनके दुःखमय जीवन को शान्त और आनन्दित बना जाता है। आवश्यकता है अवसर के लिये पागल होने की—काम करने की सच्ची लगन की, फिर प्रत्येक कठिनाई में कर्मवीर को अवसर मिल जायगा। प्रत्येक दिन उसके लिये अवसर का अनुपम उपहार लेकर स्वयं उपस्थित होगा।

युवक! राष्ट्र के कर्णधार!! देश के गौरव!!! उदास क्यों हो? निराश क्यों बैठे हो? उन्नति के लिये प्रस्थान कर दो। संसार में सबको सफलता प्राप्त करने के सुअवसर मिलते हैं। सबके लिये स्थान है। निर्धनता किसी को रोक नहीं सकती। अभाव किसी की उन्नति में बाधक नहीं हो सकता। देखो, कितने ही निर्धन लक्ष्मीवान् हो गये। कितने ही मूर्ख शिक्षित और विद्वान् हो गये। कितने ही नगण्य व्यक्ति श्रेष्ठ कवि, प्रख्यात लेखक और अमर चित्रकार हो गये। कितने ही साधारण स्थिति के लोग उन्नति की दौड़ में सर्वप्रथम हुए। कितने ही सम्मान के उच्च शिखर पर पहुँच गये। कितने ही व्यक्ति संकटों और विघ्नों के मार्ग से होकर

सुधारक और राष्ट्र-निर्माता हो गये। फिर तुम सुस्त और उदास क्यों बैठे हो? क्यों चिन्तित हो और पश्चात्ताप के आँसू बहा रहे हो? तुम्हें भी उन्नति के लिये कटिबद्ध होकर प्रयाण कर देना चाहिये। यदि मनुष्य अपने भाग्य-निर्माण का कार्य स्वयं अपने हाथ में ले और अध्यवसाय द्वारा उसकी रचना करे तो निःसन्देह उसका भविष्य भव्य और उज्ज्वल होगा। सफलता पुरुषार्थी भक्तों को कभी निराश नहीं करती और उन्हें विजयी होने का आशीर्वाद प्रदान करती है।

यदि किसी पर दुःखों के बादल घिरे हों, विपत्तियाँ छायी हों और यदि संकट किसी का पथ रोके खड़ा हो, तो उसे घबराना नहीं चाहिये, उसे यह नहीं समझना चाहिये कि वह बड़ा अभागा है और ईश्वर ने उस पर दुर्भाग्य का पर्वत ढाह दिया है। नहीं, नहीं; प्रत्येक संकट, हर एक दुःख और विघ्न-बाधा एक सुअवसर है। विपत्ति चिन्ता की वस्तु नहीं, बल्कि एक खराद है, परीक्षा का शुभ अवसर है, जिसे परमपिता परमात्मा ने महती अनुकम्पा करके उसे प्रदान किया है। यह उसका आशीर्वाद है, और है उसे अपनी वीरता और बहादुरी से उस पर विजय प्राप्त करने का ईश्वरीय आदेश। इससे यह उसके सौभाग्य का कारण है। उसकी भावी उन्नति और विजय का परिचायक है। उसकी सफलता का प्रतिबिम्ब है।

जैसे एक पहलवान कुश्ती में अपने से अधिक शक्तिमान् व्यक्ति को पछाड़ कर प्रसन्न होता है, जैसे केसरी-सुअन हाथियों के झुण्ड में अपनी दहाड़ से—घोर गर्जना से—भगदड़ मचा देता है, और जैसे एक सेनानायक अपने थोड़े से सैनिकों की सहायता से विशाल शत्रुसेना को पराजित करके प्रसन्न होता है, उसी भाँति वे भी निर्धनता के रहने पर, साधनों का अभाव होने पर तथा प्रतिकूल

परिस्थिति से घिरे रह कर भी, यदि संकटों, विपत्तियों और बाधाओं पर परिश्रम की प्रचण्ड शक्ति से, साहस के असीम बल से, विजय पाने का दृढ़ निश्चय कर लें और उन्हें जीत लें तो उन्हें भी वही आनन्द और वही गौरव प्राप्त होगा जो उनको अपनी विजय और बहादुरी से मिलता है। इसलिये उन्हें संकटरूपी हस्ती पर सिंह के सदृश टूट पड़ना चाहिये तथा चीर कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहिये। वे अपनी सिंह-गर्जना से स्वयं विपत्तियों को कँपा सकते हैं और विपरीत वातावरणों पर शानदार विजय प्राप्त कर सकते हैं।

× × × ×

"बेईमान! मेरा भाड़ा शीघ्र चुका, नहीं तो कोठरी से निकल..............!!" एक युवक का तिरस्कार करते हुए एक कर्कशा स्त्री ने कहा और उसे निकालने के लिये पुलिस बुला लायी। किसी भाँति एक सज्जन ने उसका भाड़ा चुका कर स्त्री को शान्त किया।

यह युवक बड़ा अभागा और निर्धन था। चेचक के धब्बे से उसका चेहरा इतना बुरा हो गया था कि लड़के उसे "लकड़ी का चम्मच" कह कर चिढ़ाया करते थे। गीत गा-गा कर निर्वाह करने वाले भिक्षुकों के लिये यह छोटे-छोटे गीत बनाया करता था और कठिनता से उसे दिन भर में चार पेंस मिल पाते थे। यह स्वयं बंशी बजा-बजा कर घर-घर भीख माँगता फिरता था। भिक्षाटन करके ही इसने इटली और फ्राँस की यात्रा की थी। अट्ठाईस वर्ष का यह नवयुवक लन्दन में पैसे-पैसे का मुहताज था और भिक्षुकों के मुहल्ले में रहा करता था।

दरिद्रता से अत्यन्त पीड़ित होकर इसने चिकित्सा करना आरम्भ किया। परन्तु डाक्टर बनने पर भी निर्धनता ने इसका पिण्ड नहीं छोड़ा। यह बाजार से ख़रीदा पुराना कोट पहना करता था।

उसके फटे स्थानों में जोड़ और पैवन्द लगा लेता था ! किसी के घर जाने पर अपनी मैलीकुचैली टोपी से कोट के एक-दो फटे स्थानों को सकुचाता हुआ छिपा लिया करता था !! इतना ही नहीं, ऐसे फटे और मैले वस्त्रों को भी कभी-कभी इसे क्षुधा से व्याकुल होकर गिरवी रखना पड़ता था—कितना अभागा था वह !!

इतना कष्ट पाने पर भी युवक घबराया नहीं। उसने कष्टों में भी अवसर की झलक देखी, विपत्तियों में भी अवसर को पहचाना और वह अपनी लेखन-कला में लगा रहा। उसने अपना लिखा "वालटेयर" का जीवन-चरित ४ पौंड में बेच डाला। अत्यन्त कष्ट से इसने *"Polite learning in Europe"* नामक रचना प्रकाशित करायी। जनता अब कुछ-कुछ इसे जानने लगी। इसके पश्चात् उसकी "यात्री" *(Traveller)* नामक पुस्तक ने प्रकाशित होकर उसके प्रसिद्धि की धूम मचा दी और भिखारियों के मुहल्ले में चिथड़े पहन कर रहने वाला युवक शिक्षित-समाज में प्रख्यात हो उठा। इसकी पुस्तकों में *"Deserted village"* और *"Vicar of wake field"* अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। आपत्तियाँ सह कर भी उन्नति के लिये प्रस्थान करने वाले इस युवक का नाम 'गोल्ड स्मिथ' (Goldsmith) है। मृत्यु के उपरान्त इसका शव "वेस्ट मिनिस्टर एबी" में दफ़नाया गया जहाँ पर केवल राजा-महाराजाओं तथा प्रसिद्ध पुरुषों के ही शव दफ़नाये जाते हैं।

× × × ×

एक निर्धन बालक ने आठ वर्षों तक हल चलाया, आठ-नौ महीने लन्दन में कानूनी कागज़ों की नकल की और फिर फौज में भरती हो गया। छः पैसे प्रतिदिन वेतन पाने के समय उसने व्याकरण सीखा था। उसका सैनिक जीवन बड़ा कठिनतापूर्ण और उद्यमी रहा। कोठरी का कोना उसके अध्ययन का स्थान था। एक

लकड़ी का टुकड़ा जिसे वह गोद में रखकर लिखा करता था उसकी मेज थी। मोमबत्तियों और तेल के लिये भी उसके पास पैसे नहीं थे। चूल्हे के प्रकाश से ही उसे पढ़ने का काम चलाना पड़ता था। कड़ाके का जाड़ा वह ठिठुरते हुए काटा करता था!! पढ़ने का सामान वह अपने भोजन में से पैसे बचा कर ख़रीदता था। अतएव कभी-कभी उसे आधा पेट खाकर या भूखे ही रह जाना पड़ता था।

इतना ही नहीं, पढ़ने का स्वतन्त्र समय भी उसे नहीं मिल पाता था। सिपाहियों की बातचीत, उनकी हँसी, गीत और सीटी के शोर गुल में ही उसे पढ़ना पड़ता था। क़लम या स्याही के लिये व्यय होने वाला एक फ़ार्दिङ्ग भी उसके लिये भारी रकम थी! वह स्वस्थ था और प्रतिदिन व्यायाम करता था। जेब ख़र्च के लिये प्रति सप्ताह मिलने वाले दो पैसों में से एक दिन उसने आधी पेनी बचा कर रखी। दूसरे दिन जब उसे भूख ने व्याकुल किया और वह मछली लेने गया तो वह सन्न हो गया! उसकी जेब खाली थी!! अर्धपेनी का पता नहीं था। वह भूख से व्याकुल होकर फूट-फूट कर रोया!

ऐसी दरिद्रता और कठिनता की परिस्थिति में भी वह अपनी अध्ययन-लालसा को छोड़ न सका। कठिनाई सह कर भी उसने अपने ज्ञान की वृद्धि की। इस परिश्रमी बालक का नाम 'विलियम कावेट' है। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में रह कर भी कावेट परिश्रम करके एक महान् पुरुष हो गया। उसने अपने ज्ञान की वृद्धि की। क्या अब भी कोई व्यक्ति परिस्थितियों को दोषी ठहरा कर उन्नति न करने का बहाना बना सकता है? क्या इस उद्योगी बालक ने कठिनता की मरु-भूमि में भी आनन्द की मन्दाकिनी नहीं बहा दी? तो फिर तुम परिस्थितियों से भयभीत होकर क्यों निराश बैठे हो? उठो, उन्नति के लिये प्रस्थान कर दो। विघ्न तुम्हें रोक नहीं सकते!

बाधायें तुम्हारा अवरोध नहीं कर सकतीं। अपनी स्थिति सुधारने पर तुल जाओ। सफलता तुम्हारा सम्मान करेगी।

× × × ×

फर्ग्युसन एक गड़ेरिये का पुत्र था। उसे उन्नति करने के कोई साधन प्राप्त नहीं थे। परन्तु उसके हृदय में उन्नति की एक प्रबल आकांक्षा थी। उसमें एक दृढ़ लगन थी। उसने काँच के कुछ टुकड़ों की सहायता से ही आकाश के ताराओं की दूरी को नाप लिया। स्टीफेन्सन—रेलगाड़ी के आविष्कर्त्ता—की सफलता के सारे द्वार बन्द थे। वह बड़े भाग्यहीन कुल में उत्पन्न हुआ था। परन्तु उद्योग ही उसका जीवन था। परिश्रम करके कोयले की गाड़ियों के तख्तों पर ही उसने खरिया मिट्टी से गणित का ज्ञान प्राप्त किया था। बेन्जमिन फ्रेन्कलिन ने पतंग उड़ा कर ही विद्युत् के सिद्धान्तों का आविष्कार किया था।

बचपन में हजामत बनाकर निर्वाह करने वाला आर्कराइट करोड़ों की सम्पत्ति छोड़कर मरा था। बचपन और युवावस्था में पेड़ों को काटने और बढ़ईगीरी से पेट पालने वाला "चान्सी" आगे चलकर पीतल के घण्टे बनाकर ६०० पौंड प्रतिदिन उपार्जित करने लगा। विलियम मिलबर्न जो बाल्यावस्था में ही अन्धा हो गया था आगे चलकर अमेरिका की काँग्रेस में चेपलेन (धर्म-गुरु) नियुक्त हुआ। लड़कपन में पिन लगाकर फटे पाजामे से काम चलाने वाले गारफील्ड ने अमेरिका की राज्य-परिषद् का प्रेसिडेण्ट होकर अपने दुर्भाग्य को सौभाग्य में बदल दिया ब्रिन्डले और स्टीफेन्सन (*Brindley and Stephenson*) लिखना पढ़ना नहीं जानते थे, परन्तु अपने समय में उन्होंने अद्वितीय और आश्चर्य-जनक कार्य कर दिखाये। अपने कार्य की महत्ता से उनका जीवन कई गुना महत्त्वपूर्ण और श्रेष्ठ हो गया। उनका एक जीवन

कई जीवन से अधिक मूल्यवान् था। भविष्य में बड़े होने वाले व्यक्तियों में से अधिकांश अभाव और निर्धनता की गोद में पल कर ही महान् हुए हैं।

× × × ×

"बदमाश! फिर कभी चोरी करेगा? खबरदार! यदि मेरी आखेट-भूमि में पैर रखा तो......!!" एक सरदार ने एक बालक को दण्ड देकर उसे डाँटते हुए कहा। यह बालक उसकी आखेट-भूमि में घुसकर हिरण का आखेट कर रहा था। बालक कुपित होकर घर आया, और उसने सरदार की निन्दा में कुछ तुकबन्दियाँ बना डालीं।

यह बालक एक निर्धन कुल में उत्पन्न हुआ था और स्ट्रेटफोर्ड आन एवन नामक बस्ती में रहा करता था। बड़े कष्ट से इसका निर्वाह होता था। सरदार को जब इसकी तुकबन्दियों का पता चला तो वह और भी क्रोधित हो उठा। बालक उसके भय से लन्दन भाग गया। वहाँ उसने एक नाटक कम्पनी में नौकरी कर ली। नाटक खेलते-खेलते उसने स्वयं भी नाटक लिखना प्रारम्भ कर दिया। उसके आरम्भिक नाटक अच्छे नहीं होते थे और वे बिकते भी बड़े सस्ते मूल्य में थे। धीरे-धीरे उसका अभ्यास बढ़ने लगा और वह अपने नाटकों के लिये प्रसिद्ध हो गया। आगे चल कर उसकी ख्याति इतनी बढ़ गयी कि महारानी एलीज़ाबेथ तक उसकी पहुँच हो गयी। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका जीवन-चरित एक हज़ार पौंड पर बिका, जहाँ उसके नाटक पाँच पौंड पर कठिनता से बिक पाते थे। कठिनता में से विजय के लिये कूच करनेवाले इस महान् व्यक्ति का नाम "विलियम शेक्सपियर" है। इसकी गणना यूरोप के सर्वश्रेष्ठ कवियों और नाटककारों में होती है। भारत के कविवर कालिदास ऐसे विद्वान् पुरुष से इसकी तुलना की जाती है।

अपने अवसर से लाभ उठाओ। उसे खोओ मत। फिर उसका मिलना कठिन हो जायगा। ज्वार के वेग से लाभ उठानेवाले कुशल मल्लाह अपना जहाज़ बन्दरगाह पर शीघ्र ही ले जाते हैं। परन्तु आलस्यवश उसे खोनेवाले मल्लाहों को दूसरे ज्वार की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। फलस्वरूप जब तक वह पुनः नहीं आता वे समुद्र में ही रुके रहते हैं और उनका जहाज़ समुद्र की उत्ताल तरंगों से टकराता रहता है। इसी भाँति वर्तमान के शुभ अवसर से लाभ न उठानेवालों को दूसरे शुभ समय की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। फिर दूसरे ज्वारभाटे का आना तो निश्चित भी है परन्तु दूसरे शुभ अवसर के आने में सन्देह रहता है, वह आवे या न आवे। सम्भव है उस शुभ समय के आने के पूर्व ही तुम्हारा जीवन रूपी जहाज काल की प्रचण्ड लहरों से टकरा कर सदा के लिये डूब जाय और फिर संसार तुम्हारे द्वारा होनेवाले महत्वपूर्ण कार्यों से, तुम्हारे परिश्रम और सद्विचारों से लाभ उठाने से सर्वथा वञ्चित रह जाय। प्रत्येक पल में जीवन-नौका काल की लहरों से टकराती रहती है। ऐसा न हो तुम्हारी जीवन-तरणी के साथ ही तुम्हारे सत्कार्य और सद्विचार भी डूब जायँ उन्हें शीघ्रातिशीघ्र कार्य रूप में परिणत कर दिखाओ।

गाफ़िल तुझे घड़ियाल, ये देता है मुनादी।
गरदूँ ने घड़ी उम्र की, एक और घटा दी॥

ऐ महानता के इच्छुको! ओ उन्नति के अभिलाषियो!! अपनी विजय-यात्रा आरम्भ करने के पूर्व इसे स्मरण रखना—"महानता का मार्ग अड़चनों की कंकरीली भूमि से आरम्भ होता है, कठिनाइयों के कँटीले मार्ग से होकर जाता है परन्तु शानदार विजय के साथ समाप्त होता है। यह यात्रा वे ही सैनिक आरम्भ कर सकते हैं जो परिश्रम कर सकते हों; तथा आपदायें और विपत्तियाँ झेल

सकते हों। विलासिता और विश्राम के धनिकों को असफलता के दस्यु बीच ही में लूट लेते हैं और वे महत्ता के द्वार तक भी नहीं पहुँच पाते। परन्तु कँटीले मार्ग में नंगे पाँव दौड़नेवालों की विजय-पताका सफलता स्वयं लेकर आगे-आगे चलती है।"

विपत्ति और विघ्न के नाम से ही व्यग्र होना कायरता है। अधीर होकर पतन से ही सतुष्ट हो रहना तथा कर्तव्य-च्युत होकर विफलता की विकरालता से भयभीत होना, बिना ही युद्ध के, शस्त्र रखकर पराजय स्वीकार करना है। कर्मवीरों के लिये विघ्न-बाधा एक विनोद है। विपत्ति के व्यूह से वे हँसते-हँसते निकल आते हैं, दुःख और कष्ट के तीक्ष्ण शस्त्रों से घायल होकर भी वे विमुख नहीं होते और अपना संकल्प पूरा करके माता का मुख उज्ज्वल करते हैं। वे जानते हैं—"कठिनाई में डालने के पूर्व ईश्वर मनुष्य की शारीरिक और मानसिक समस्त शक्तियों को पहले से अधिक विकसित कर देता है। वह उसके बाजुओं में पहले से अधिक परिश्रम की शक्ति और हृदय में विपत्ति से व्याकुल न होने का साहस और दुःख से विचलित न होने के लिये धैर्य्य भर देता है। इसीसे मनुष्य आपदा की भट्ठी में पड़कर भी भस्म नहीं होता, केवल झुलस कर ही रह जाता है।" क्या तुम नहीं जानते—"कठिनाई महानता का उपहार लेकर आती है?" फिर तुम कष्टों से क्यों शंकित होते हो? विघ्नों से क्यों डरते हो? मनुष्य पर जितनी ही मानसिक या शारीरिक व्याधियाँ आती हैं, जितने ही संकट उसे सताते हैं; वह उनसे त्राण पाने के लिये उतना ही प्रयास करता है, अपनी सम्पूर्ण शक्तियों का उपयोग करता है और उद्योगी बनता है। बस यहीं से उसकी उन्नति का श्री गणेश होता है। कष्ट उसकी सुषुप्त शक्तियों को जाग्रत कर देते हैं। विपत्तियों की रगड़ में पड़ने से मनुष्य की आन्तरिक शक्तियाँ चमक उठती हैं और

उसके अध्यवसाय की कुण्ठित धार पुनः प्रखर और तीक्ष्ण हो जाती है। अतएव विपत्तियों की पराकाष्ठा को उन्नति का स्वर्ण-प्रभात कहना अनुचित न होगा, क्योंकि इसके पश्चात् मनुष्य के सौभाग्य सूर्य्य का उदय अवश्यम्भावी है।

किसी मनुष्य ने जिस महत् कार्य को करने की प्रतिज्ञा की है, उसने जिस उत्कृष्ट कार्य को करने का महा-व्रत लिया है और जिस उच्च उद्देश्य की पूर्त्ति का संकल्प किया है, उसे उस पर अटल और अचल बने रहना चाहिये। उसका अपने अभीष्ट से तिल भर भी पीछे हटना ठीक नहीं। उसे अपने दृढ़ निश्चय से कुछ भी विचलित होने की आवश्यकता नहीं। जो कुछ होने की उसकी हार्दिक इच्छा है, जो कुछ बनने की उसकी आन्तरिक अभिलाषा है और जो भी सुनहला स्वप्न वह देखता है देखता रहे। वह अवश्य सफल होगा। उसकी मनकामनायें अवश्य पूर्ण होंगी, उसका स्वप्न सत्य होकर रहेगा। वह निराश न हो। असफलता की बातें सोचे भी मत। विघ्नों और बाधाओं का स्मरण तक न करे। परिस्थिति की प्रतिकूलता उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती। साधनों का अभाव उसे रोक नहीं सकता और वह उन्नति की दौड़ में सर्वप्रथम हुए बिना कदापि नहीं रह सकता।

भविष्य में महान् होने वाले पुरुष विघ्नों को कुचल कर और अभावों को रौंद कर आगे बढ़ जाते हैं। कोई भी विरोध, कैसा भी संकट और कोई भी बाधा उनकी दृढ़-इच्छा के आगे ठहर नहीं सकती। वे प्रतिकूलता के कारण कभी भी अपने पावन-पथ से विचलित नहीं होते और संकटों के अँधेरे में भी अपनी प्रतिभा की ज्योति जगमगा देते है। मनुष्य को विश्वास रखना चाहिये कि वह अवश्य सफल होगा, कोई भी शक्ति उसे लक्ष्य-च्युत नहीं कर सकती।

रथस्यैकं चक्रं भुजगनमिताः सप्त तुरगाः।
निरालम्बो मार्गश्चरण विकलः सारथि रपि ॥
रविर्यात्येवास्तं प्रतिदिनम पारस्य नभसः।
क्रिया सिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे ॥

अर्थात् सूर्य्य के रथ का पहिया तो एक ही है और घोड़े सात हैं। घोड़े भी सर्पों से बँधे हैं। और उनका पथ भी आधार रहित—शून्य आकाश—है। तिस पर बेचारा सारथी पंगु है। इतना निकृष्ट साधन होने पर भी भगवान् भास्कर प्रतिदिन अनन्त आकाश की यात्रा समाप्त करते हैं। महापुरुषों की क्रिया-सिद्धि, उनके कार्य की सफलता उनमें ही—उनकी प्रबल-भावना और दृढ़ इच्छा-शक्ति में ही होती है। सफलता साधनों की श्रेष्ठता और उपकरणों की उत्तमता पर निर्भर नहीं, मनुष्य की सच्ची लगन और उसके कार्य करने की धुन पर अधिक अवलम्बित है।

संसार में एक-दो नहीं, बल्कि हजारों, लाखों और करोड़ों व्यक्ति ऐसे हो गये हैं जो निर्धन थे, निराश्रय थे और अभागे थे। कड़ाके की सर्दी वे फटे कपड़े पहन कर काँपते हुए बिताते थे। ग्रीष्म में अंगारों सी सड़क पर, और तपते हुए सूर्य्य के नीचे वे बिना छाते और जूते के कोसों चला करते थे अर्द्धनग्नावस्था में! बरसात की मूसलधार वर्षा में वे भीगते हुए दौड़ा करते थे और सावन-भादों की अन्धेरी रात्रियों मे गरजते बादलों और चमकती बिजली के समय, उन्हें नंगे पैर और प्रकाश बिना ही बीहड़ वन-पथों और भयंकर खेतों के मध्य से जाना पड़ता था! उनके पास रहने को घर नहीं था! जाड़े की ठंडी रातें, गर्मी की चिलचिलाती दोपहरी और बरसात के दिन-रात वे सड़कों और फुट-पाथों (Foot-Paths) पर बिताते थे, सड़क की धूल एवं गन्दगी में रह कर तथा आने जाने वालों की ठोकरें सह कर!! जाड़े की सर्द वायु उनके शरी

को वेधती हुई सर्राटे से बह जाती थी। गर्मी की लू उनकी देह को झुलसाती हुई निकल जाती थी और बरसात की काली घटा उनके शरीर, वस्त्रों और सामानों को भिगो कर उनसे आँख-मिचौनी खेला करती थी चञ्चल चपला बन कर ! उनके पास भर पेट भोजन भी नहीं था। कभी वे आधे पेट भोजन करते और कभी भूखे रह कर ही रात दिन व्यतीत कर दिया करते थे। उनका सहायक कोई नहीं था। उनका साहस, उनकी दृढ़ लगन और उनका अनवरत अध्यवसाय ; यही उनके मित्र थे। वे भूखे, नंगे और निराश्रय थे। उनका जीवन पशुओं से कम दुःख-पूर्ण नहीं था, परन्तु उनके हृदय में महान् बनने की एक तीव्र लगन थी और थी भविष्य में कुछ कर दिखाने की एक अदम्य आकांक्षा !

वे विपत्तियों से घबराये नहीं, अपने सन्मार्ग से पीछे नहीं हटे और अपने लक्ष्य से कभी विचलित नहीं हुए। अपने प्रबल परिश्रम से, अविरल उद्योग से उन्होंने संसार में अपनी ज्योति फैला दी। संसार की काया पलट दी। उसमें परिवर्तन और जागृति की ज्योति जगा दी। उसके अनुभव, ज्ञान और शक्तियों की वृद्धि की। उसकी सुविधाओं और सरलताओं का द्वार खोल दिया। पशुओं सा कष्ट सहकर भी वे अपनी शक्तियों और अपने दैवी गुणों के प्रभाव से मानव-समाज की एक आदर्श प्रतिमा बन गये, और पीछे आनेवालों के लिये अपना चरण-चिह्न छोड़ गये। विश्व में उनके नाम का धूम मची है। संसार उनके परिश्रम और प्रयत्नों का चिर-ऋणी है, उनका कृतज्ञ है। क्या अब भी अन्य लोग उन्नति करने का साहस नहीं करेंगे ? क्या अब भी वे विश्व के लिये कुछ भी नहीं करेंगे ? क्या वे अपने लिये भी कुछ नहीं करेंगे ? क्या अब भी वे पृथ्वी पर बोझ बन कर ही रहेंगे ? उनके साथी आगे बढ़ कर उन्हें ललकार रहे हैं, उनके मित्र प्रतियोगिता के लिये उन्हें चुनौती दे रहे हैं।

देश और समाज उनकी ओर लालायित नेत्रों से देख रहा है। जननी-जन्मभूमि उन पर आश लगाये बैठी है। वे उठें, जागें और अपनी विजय-यात्रा प्रारम्भ कर दें। वे शीघ्र ही सफलता के लिये प्रयाण कर दें और अपनी माता के दूध की मर्य्यादा रख कर अपना मुख उज्ज्वल करें। सत्वर ही सफलता के दुर्ग की ओर चल देना चाहिये, समय प्रस्थान का बिगुल बजा रहा है।

लक्ष्य-निर्वाचन

अनन्त शास्त्रं बहुलाश्च विद्या, अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च ।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं, हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् ॥

—चाणक्य

शास्त्र अनन्त हैं और विघ्न बहुत । समय थोड़ा है और विघ्न अनेक हैं । इसलिये जो सार वस्तु हो उसे ही ग्रहण करना चाहिये । जिस प्रकार हँस पानी मिले हुए दूध में से केवल दूध-दूध ले लेता है और शेष छोड़ देता है, उसी भाँति अपने उपयोग में आने वाले ज्ञान-तत्व का संग्रह करना चाहिये ।

जीवन-यात्रा प्रारम्भ करने के पूर्व सर्व प्रथम अपना मार्ग निश्चित कर लो—अपना लक्ष्य निर्धारित कर लो । लक्ष्य रहित व्यक्ति पतवार विहीन नौका के सदृश है । जैसे पतवार रहित नौका कहाँ पहुँचेगी, किधर जायगी इसका कोई निश्चय नहीं, उसी भाँति लक्ष्य-विहीन व्यक्ति के जीवन का उसके भविष्य का भी कोई निश्चय नहीं । उसकी जीवन-धारा किस ओर बह रही है, उसका प्रवाह किधर है और वह सफलता से कितनी दूर है इसका कुछ भी पता नहीं ।

अपने लक्ष्य को खोजो, पहचानो और उसे ढूँढ़ कर स्थिर कर लो । लक्ष्य का ज्ञान ही सफलता की उच्चतम चोटी पर पहुँचाता है । लक्ष्य की स्थिरता ही कुशल सेनानायक की सफलता का कारण बनती है । अपने लक्ष्य को निश्चित कर लेने का अर्थ है—अपनी सफलता के रहस्यों को समझ लेना, अपने भाग्य की गूढ़ सम-

स्याओं का ज्ञान रखना और अपनी विजय श्री में पूर्ण विश्वास करना। जिसने अपना लक्ष्य निश्चित कर लिया उसे उसके भाग्य की कुञ्जी मिल गयी, उसकी सफलता का द्वार खुल गया।

लक्ष्य निश्चित हो जाने के पश्चात् सारे सुखों को लात मार कर और सारे प्रलोभनों से मुँह मोड़ कर लक्ष्य-वेध की तैयारी में जुट जाओ और एक सैनिक के सदृश आराम का ध्यान एकदम भुला दो।

अपने लक्ष्य के साथ खिलवाड़ न करो। उसे छोटा न समझो। उसे पूर्ण करने में अपनी सारी शक्तियाँ लगा दो। तुम और वह एक हो जाओ। उसे सावधानी और दत्तचित्तता से पूर्ण करो। सफलता की सेनाओं का सञ्चालन सावधानी के सेनापतियों द्वारा होता है। लापरवाही लक्ष्य की ओर तीव्रता से पैर नहीं बढ़ा सकती। असावधानी और अवहेलना के सिपाही बीच ही में असफलता के गर्त में गिर जाते हैं। वे सफलता के सिंह-द्वार तक पहुँच भी नहीं पाते। लक्ष्य पर ही तुम्हारे परिश्रम का अस्तित्व अवलम्बित है। जब लक्ष्य सिद्ध होगा उस समय उसमें से तुम्हारे परिश्रम की, तुम्हारे धैर्य्य और अध्यवसाय की अनुपम किरणें निकलती हुई दिखायी पड़ेंगी और तुम्हारा मुख-मण्डल उस दिव्य-प्रभा से ज्योतिर्मय हो उठेगा।

यदि तुम्हारा लक्ष्य महान् है—कार्य कठिन है—तो घबरा कर बैठ न जाओ। निराश न होओ। स्मरण रखो—कार्य की कठिनता के साथ-साथ उसकी महत्ता भी बढ़ती जाती है। कार्य जितना ही कठिन होगा उसे पूरा करने में उतना ही अधिक गौरव और उतना ही विशेष आनन्द प्राप्त होगा। जिस कार्य को एक बार किसी ने कर दिखाया, दूसरे भी दूसरी बार उसे कर सकते हैं। संसार का कोई भी कार्य मनुष्य की असीम शक्ति के बाहर नहीं है।

मनुष्य के लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। लक्ष्य-वेध में होने वाले विघ्नों की परवाह न करो। विफलता की चिन्ता न करो। असफलता की बातें सोचो भी मत। सर्वदा चलते रहो—प्रतिपल आगे बढ़ते रहो। तुम्हारी विजय अवश्य होगी। तुम्हारी जीत निश्चित है।

यदि तोर डाक् शुने केउ ना आसे,
तबे एकला चल रे।
एकला चल, एकला चल, एकला चल रे॥
यदि सवाइ फिरे याय, ओरे ओरे ओ अभागा।
यदि गहन पथे यावार काले केउ फिरे ना चाय,
तबे पथेर काँटा,
ओ तुइ रक्त माथा चरण तले एकला दल रे!!

यदि तेरी पुकार सुन कर कोई भी आगे न बढ़े, तो अकेला ही तू आगे बढ़। किसी की प्रतीक्षा मत कर। अकेला ही चल। यदि कुछ दूर जाकर सब लोग पीछे लौट पड़े तो वे सभी अभागे है। यदि कठिन मार्ग पर चलने के समय कोई तुम्हारी तरफ़ मुँह करना भी नहीं चाहता—तेरे साथ चलना नहीं चाहता—और तेरे सभी साथी कर्मक्षेत्र से पराङ्मुख होकर लौट पड़ते हैं, तो अकेला तू ही सारे कष्टों को सहता हुआ, विपत्तियों को झेलता हुआ और अपने पथ के कण्टकों को पैरों से रौंदता हुआ आगे बढ़!

लक्ष्य-सिद्धि के लिये भगीरथ प्रयत्न करो। परन्तु यदि मार्ग में बाधाएँ मिलीं, विघ्नों ने तुम्हें घेरा तो क्या लौट पड़ोगे? अपना अभीष्ट, अपना प्रिय लक्ष्य और वर्षों पूर्व निश्चित किया हुआ अपना मनोहर मन्तव्य—क्या यों ही अपूर्ण छोड़ दोगे? क्या लक्ष्य-सिद्धि की मञ्जुल-झाँकी तुम देखना नहीं चाहते? क्या स्वप्नों के सुनहले संसार को सत्य किये बिना ही तुम सन्तुष्ट हो

रहोगे ? यदि नहीं, तो विघ्नों से विचलित न होओ। उनसे लोहा लेना सीखो। उन पर विजय पाना सीखो। जानते हो—"साहसी विपत्तियों के आगे कभी शीस नहीं झुकाते! महापुरुष बाधाओं को कुचल कर आगे बढ़ जाते हैं और कर्मवीर मार्ग में पड़ने वाले संकटों को अपना दास बना लेते हैं!"

युवको! अपने लक्ष्य से जरा भी पीछे न हटो। उसे कभी काट-छाँट कर छोटा भी न करो और उसे संकुचित न बनाओ। लक्ष्य को संकीर्ण करने का विचार स्वयं एक पराजय है। स्मरण रखो—"कार्य-सिद्धि के पूर्व बाधा पग-पग पर अड़ती है, विपत्ति पीछे खींचती है और संकट क़दम-क़दम पर मोर्चा रोके खड़ा रहता है। कार्य-सिद्धि के पूर्व विपत्ति के बादल गरजते हैं, आपदाएँ आँधी बन कर घिरती हैं, विघ्न रोकते हैं और संकट शूल बन कर चुभते हैं। परन्तु कार्य-सिद्धि के पश्चात् विजयश्री स्वयं कर्त्ता का पैर चूमती है, सफलता चँवर डुलाती है और महानता उसकी विजय पताका आकाश में उड़ाये चलती है।

× × ×

"मैं उत्तरी अमेरिका के फ्रांसीसियों और अंगरेजों का इतिहास लिखूँगा!"—हारवर्ड के एक विद्यार्थी ने निश्चित किया। धीरे-धीरे यह निश्चय उसका लक्ष्य हो गया और वह इसे पूरा करने में जुट गया। यह कार्य उसका प्राण बन गया। इसे करने में उसने अपना तन, मन, धन और सर्वस्व लगा दिया। इतिहास की सामग्री एकत्र करने में उसका स्वास्थ्य नष्ट हो गया और आँखें बेकार हो गयीं—इतनी कि वह उनसे लगातार पाँच मिनट से अधिक काम नहीं ले सकता था! उसे बड़ा कष्ट हो रहा था। बड़ी वेदना थी स्वास्थ्य की क्षीणता और बेकार आँखें! परन्तु इससे भी अधिक कष्ट उसे अपने लक्ष्य को छोड़ने में हो रहा था। वह अपने निर्णय

को बदल नहीं सकता था। अपने निश्चय से टल नहीं सकता था। कष्ट सह कर भी अन्धे युवक ने लक्ष्य से मुँह नहीं मोड़ा और वह युवाकाल के निश्चित किये हुए निर्णय पर अटल बना रहा। अन्त में इतिहास का एक उत्कृष्ट ग्रन्थ लिख कर उसने संसार की भेंट की। प्राणों से भी अधिक प्रण को—जीवन से भी अधिक उद्देश्य को मूल्यवान् समझने वाले इस महान् व्यक्ति का नाम "फ्रान्सिस पार्कमैन" है।

× × ×

एक युवक ने जो गूँगा था और बड़ी कठिनता से तुतला कर हकलाता हुआ बोल पाता था, एक दिन एक प्रसिद्ध पुरुष के आगमन की सूचना सुनी। वह भी उसे देखने गया। एक विशाल मैदान में अगणित भीड़ आगन्तुक का भाषण सुनने को उत्कण्ठित बैठी थी। उस पुरुष के आते ही जनता ने खड़े होकर उसका अभिवादन किया। वक्ता ने बड़े ही मार्मिक शब्दों में अपने विचार प्रकट किये। जनता उसकी वक्तृता से प्रभावित हो उठी। युवक घर लौटा, परन्तु अपने मन में स्वयं व्याख्यानदाता बनने की एक आग—एक अदम्य इच्छा लेकर! वह तुतला-तुतलाकर व्याख्यान देने का अभ्यास करने लगा। उसके साथी उसकी इस मूर्खता पर हँसते थे, और वह उनके विनोद की वस्तु बन गया।

प्रकृति उसके प्रतिकूल थी। उसका प्रयास निःसन्देह एक पागलपन था—एक निष्फल चेष्टा थी और थी एक विडम्बना! परन्तु लक्ष्य के दीवाने युवक ने प्रकृति की प्रतिकूलता और मित्रों के व्यंग पर ध्यान तक नहीं दिया!!

समुद्र के किनारे एकान्त में जाकर और मुँह में कंकड़ियाँ भर कर वह बोलने का प्रयास करने लगा। सिन्धु का निर्जन कूल और किनारे का पवन उसकी वक्तृता सुना करते थे। बीच-बीच में जलधि

की तरंगें करतल-ध्वनि करती थीं और भाषण समाप्त होने पर वहाँ की निर्जनता उसके कथन का समर्थन करती थी। साथी उसका मखौल उड़ाया करते थे और विश्व उसके भाग्य की शून्यता पर हँसा करता था। परन्तु कौन जानता था कि पागल समझे जाने वाले युवक की गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ वक्ताओं में होगी? किसे पता था कि मुँह में कंकड़ियाँ भर कर बोलनेवाला—"डिमास्थनीज़" विश्व का प्रख्यात वक्ता होकर रहेगा?

× × ×

अभागा कियों ग्रीस का एक निर्धन दास था। उसका मस्तिष्क सुन्दर कलाओं से परिपूर्ण था। उसके गुलाम हाथों से कला छिटकती फिरती थी। परन्तु नवीन दासत्व-विधान के अनुसार गुलामों का कलाविद् होना बहिष्कृत था और था एक अक्षम्य अपराध! उसी समय हत-भाग्य कियों एक सुन्दर मूर्ति निर्माण कर रहा था। पेरीक्लीज़ से पारितोषिक पाने की उसकी उत्कट इच्छा थी। इस विधान से उसका हृदय क्षुब्ध हो उठा। वह निराश हो गया।

उसके एक बहिन थी। उसे भी इस विधान से बड़ी वेदना हुई। वह अधीर हो उठी। आँखों में आँसू भर कर देवी-देवताओं के सम्मुख हाथ जोड़ कर वह बोली—"हे कुल पूज्य देवी! हे दयामयी जननी!! मेरे भाई का संकट दूर कर। तुम्हारी दया से ही अनिष्ट टल सकते हैं, माँ! रक्षा करो!!"

फिर वह कियों से बोली—"भैया! तुम प्रकोष्ट में चलो और अपने कार्य में संलग्न रहो। मैं भोजन और आलोक लेकर शीघ्र आती हूँ। ईश्वर अवश्य सहायता करेगा हमारी, भैया! उस पर विश्वास रखो।"

अकथ परिश्रम करके कियों मूर्त्ति का निर्माण करता रहा

संगमर्मर के टुकड़ों में वह जीवन भर रहा था। मूर्त्ति में उसने अपना हृदय उड़ेल दिया। अपना सारा मस्तिष्क उसी के निर्माण मे लगा दिया और एक कलापूर्ण प्रतिमा बना कर रख दी।

इसी समय कला-प्रदर्शन का एक वृहत् आयोजन हुआ। सारा ग्रीस इस प्रदर्शनी को देखने को उमड़ पड़ा। मि० पेरीक्लीज़ इस प्रदर्शनी के प्रधान थे। उनके समीप श्रीमती एस्पेसिया बैठी थीं। साक्रेटीज़, फीडीयास और साफोक्लीज़ ऐसे ग्रीस के विद्वान् और प्रख्यात पुरुष भी उपस्थित थे। प्रदर्शनी में भिन्न-भिन्न कलाकारों की उत्कृष्ट कला कृतियाँ थी। बड़ी चित्ताकर्षक और ललित। परन्तु एक कलापूर्ण मूर्ति की ओर दर्शकों की आँखें एकटक लगी थीं। जान पड़ता था इस अद्वितीय मूर्त्ति को—ललित कलाओं के अधिपति स्वयं—"भगवान् अपोलो"—ने अपने हाथों निर्माण किया हो! कैसी कलापूर्ण और नयनाभिराम थी वह!! जनता तन्मय होकर उसे देख रही थी।

"इसका निर्माता कौन है?"—दर्शकों ने पूछा। परन्तु कोई प्रत्युत्तर न मिला। जनता कलाकार को देखने के लिये उत्कण्ठित हो रही थी। "कलाकार को बुलाओ! कितना सुन्दर वह होगा, स्वयं भी!! हम उस पर सर्वस्व न्योछावर करते हैं!!" यह स्वर आकाश में गूँज उठा।

इसी समय घसीट कर एक लड़की वहाँ लायी गयी। उसके केश इधर-उधर बिखरे थे। वस्त्र अस्त-व्यस्त हो रहे थे। और होंठ बन्द थे। आकृति से दृढ़ता टपकती थी। "यह लड़की मूर्त्ति-निर्माता को जानती है; परन्तु उसे बतलाती नहीं।" प्रहरी बोले।

लड़की से बार-बार प्रश्न किया गया। परन्तु उसने कोई उत्तर नहीं दिया। तब अवज्ञा के कारण उसे दण्ड की आज्ञा दे दी

गयी। फिर भी वह मौन ही रही। लड़की की ऐसी धृष्टता पर मि० पेरीक्लीज़ क्रुद्ध हो उठे और बोले—"इसे कारागार में ले जाओ! नियम का परिपालन अनिवार्य है!!"

इन शब्दों को सुनते ही भीड़ को चीरता हुआ दीप-ध्वज सा एक कृष्ण-काय युवक बाहर आया। उसके बड़े-बड़े बाल बिखरे हुए थे। आँखों से लज्जा टपकती थी और चेहरे से ग्लानि। वह दौड़ कर मि० पेरीक्लीज़ के चरणों पर गिर पड़ा और गिड़-गिड़ाकर बोला—"देव! इस लड़की को कोई दण्ड न दें। यह मेरे प्राणों से भी प्यारी है। इसमें इसका किञ्चित अपराध भी नहीं है। मूर्त्ति को इस हतभाग्य के गुलाम हाथों ने निर्मित किया है। यह सर्वथा निर्दोष है!"

"गुलाम!" शब्द सुनते ही जन-समूह क्रोधित हो उठा। "इसे बन्दी कर लो!" भीड़ ने उत्तेजित होकर कहा।

मि० पेरीक्लीज़ यह करुण दृश्य देख न सके। उन्होंने उच्च स्वर से कहा—"ठहरो! मैं ऐसा अन्धेर होने न दूँगा—मेरे जीवित रहते यह अन्याय नहीं हो सकता!! नादानो! एक बार उस कला-पूर्ण मूर्त्ति को तो देखो। देखो, कला के देवता—भगवान् अपोलो-स्वयं कह रहे हैं—"ग्रीस का यह क़ानून कितना अन्याय पूर्ण है! कला का विकास ही हमें अमरत्व देगा। विधान का उच्चतर उद्देश्य कला का विकास होना चाहिये, उसका विनाश नहीं। श्रेष्ठ कलाकार को दण्ड नहीं उसे सम्मान मिलना चाहिये!"

समस्त जन-समूह के सामने श्रीमती एस्पेसिया ने क्रियों के शिर पर मुकुट रखा और सबकी हर्ष-ध्वनि के बीच उन्होंने क्रियों की बहिन का स्नेह से चुम्बन किया। कला ने एक गुलाम को प्रतिष्ठा के सर्वोच्च शिखर पर बैठाया। सफलता ने लक्ष्य के दीवाने एक साधारण व्यक्ति को अमरत्व प्रदान किया।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

नीति विशारद मनुष्य निन्दा करें या प्रशंसा, लक्ष्मी आवे या चली जाय, मृत्यु अभी आवे अथवा युग के अन्त में हो, परन्तु धैर्य्यवान पुरुष न्याय के मार्ग से एक पग भी पीछे नहीं हटते।

बाधाओं की अवहेलना करके आगे बढ़ने वाले, अपने जीवन से भी अधिक उद्देश्य को प्यार करने वाले और अपने को न्यौछावर करके भी लक्ष्य पर दृढ़ रहने वाले, वीरों का दर्शन करने को सफलता सदैव उत्सुक रहती है। विरोध सह कर भी सत्पथ पर डटे रहने वाले का विजय श्री पैर चूमती है, और गौरव स्वयं उसकी चरण-धूलि मस्तक पर लगाता है।

यह आवश्यक नहीं कि तुम अमुक कार्य ही करो। अमुक काम में ही अपने जीवन को लगा दो। परन्तु यह आवश्यक है कि तुम किसी कार्य विशेष में, जिसमें तुम्हारी अभिरुचि हो; पारंगत हो जाओ। उस विषय की प्रत्येक बड़ी से बड़ी और छोटी से छोटी बातों की तुम्हें भली भाँति जानकारी हो। तुम उस विषय में पूर्णता प्राप्त कर लो। उस विषय के विशेषज्ञ हो जाओ। अपना कार्य इतनी निपुणता से करो कि उस कार्य की श्रेष्ठता में—उसकी उत्तमता में—तुम्हारे हाथों की, तुम्हारे मस्तिष्क की, तुम्हारे परिश्रम की और तुम्हारी सूक्ष्म-दर्शकता की झलक स्पष्ट दिखाई पड़े। उसमें से निकलती हुई निपुणता की आभा तुम्हारे लक्ष्य-प्रेम को प्रकट कर दे। वह बतला दे कि तुमने जो कार्य अपने हाथ में लिया है, उसे तुमने सच्चे मन और परिश्रम से किया है। अपना कार्य करने में तुम अपनी सारी शक्तियाँ लगा दो। उसमें जीवन भर दो और अपना हृदय उड़ेल

दो। अपने में वह कमाल पैदा कर लो कि तुम्हारा हाथ लगते ही उस धन्धे में प्राण आ जाय। अपने में वह चमत्कार उत्पन्न कर लो कि तुम्हारे स्पर्श करते ही वह सजीव हो उठे। उस विषय पर इतना अधिकार प्राप्त कर लो कि तुम्हारा नाम ही उस कार्य की अथवा उस वस्तु की उत्तमता का प्रमाण हो। तुम उस विषय के आचार्य हो जाओ, स्वामी बन जाओ; और उसके सर्वेसर्वा हो जाओ।

यह अनिवार्य नहीं कि तुम प्रोफेसर, वकील, डाक्टर या व्यापारी ही बनो। कोई आवश्यक नहीं कि तुम लेखक, गायक, चित्रकार या विज्ञानाचार्य ही बनो। तुम वही बनो जो तुम बनना चाहते हो। जीवन-संग्राम में तुम चाहे किसी भी मोर्चे पर रहो, परन्तु उस पर डटे रहो। जीवन की रण-भूमि में तुम्हारा युद्ध-स्थल-कर्मक्षेत्र-समरभूमि हो या कोई फैक्टरी, दुकान हो या किसी वैज्ञानिक की प्रयोगशाला, परन्तु तुम वहाँ डटे रहो; और एक बहादुर सिपाही के सदृश लड़ते रहो। फिर तुम्हारे शस्त्र बम, गोले और तोप हों या लेखनी और मसि-पात्र, व्यापारिक वस्तुएँ हों या बोझा ढोने की गाड़ी, फरसा और कुदाल हो या सूत कातने का यन्त्र, चर्खा-चक्र—तुम उनको कभी तुच्छ न समझो और कभी उनकी अवहेलना न करो। अपने उन शस्त्रों को अपनी सफलता का सोपान समझो, उन्हें अपना राज-दण्ड (Sceptor) और राजमुकुट समझो और समझो उन्हें भविष्य में तुम्हें निहाल कर देने वाली रत्न राशियाँ। अपने उस दिव्य शस्त्र को सदैव चमकाये रखो, उसे प्रखर रखो। अपनी कला में निपुणता प्राप्त करो, अपने कार्य की विशेषताओं से परिचित रहो; और अपने वीर-बाने से सुसज्जित होकर, अपने रण-कौशल और अपनी वीरता से जीवन-युद्ध में एक हलचल सी मचा दो। अपने कर्म

में, अपनी कला में और अपने व्यापार में, जीवन भर दो—उसे उत्थान के शिखर पर चढ़ा दो। अपने कार्य में एक प्रगतिशील क्रान्ति उत्पन्न कर दो। और तुम एक साधारण सैनिक से एक सफल योद्धा बन जाओ। और फिर एक विजयी सम्राट्! अपने मोर्चे पर कभी अलसाये और उदासीन न रहो तथा कभी ऊँघते न रहो। अपने धन्धे को श्रेष्ठता की ओर बढ़ा कर अपने जाग्रत जीवन तथा अपनी सतर्कता और सावधानी का परिचय दो। प्यारे सैनिक! अपने स्थान को तुच्छ न समझो, अपने कर्मक्षेत्र को बेकार और जीवन-हीन न जानो और दूसरों के उन्नतिशील पदों की ओर सतृष्ण नेत्रों से न देखो और अपना स्थान त्याग देने का विचार न करो। अपने स्थान से ही आगे बढ़ो, ऊपर चढ़ो। अपने कार्य को उन्नति की ओर ले चलने में, आगे बढ़ाने में लगे रहो। अपने धन्धे को महानता के शिखर पर पहुँचाने के पीछे सब कुछ भूल जाओ। उसमें जीवन भरने के लिये अपना जीवन दे दो—उसके पीछे मर मिटो—उसी में तुम्हें अमरत्व प्राप्त होगा सैनिक!

तुम वही करो जो तुम करना चाहते हो। वही धन्धा करो जिसमें तुम्हारी प्रवृत्ति झुकती हो। कार्य के चुनाव में तुम्हारी अन्तरात्मा का निर्णय ही अन्तिम और उत्कृष्ट है। इस निर्णय के विरुद्ध जाने की चेष्टा कदापि न करो। इसके प्रतिकूल कभी मत चलो, नहीं तो तुम बरबाद हुए बिना नहीं रह सकते। इसका उत्तरदायित्व तुम पर है। तुम्हारा भाग्य तुम्हारे हाथों में है। तुम्हारी अन्तरात्मा की प्रेरणा से ही तुम्हारे भाग्य का निर्माण होगा। दूसरों की सलाह उनकी इच्छाएँ—तुम्हारे जीवन को सफल बनाने में कोई काम नहीं दे सकतीं। उनका प्रयत्न विफल होगा। उनकी चेष्टाएँ निष्फल होंगी।

जब तुम्हारे भाग्य का निर्माण होगा, जिस समय तुम्हारे जीवन का कार्य-क्रम बनाया जायगा ; उस समय तम्हारे शिक्षकों, सुहृदों और शुभचिन्तकों की इच्छाएँ दबकी हुई तुम्हारे मस्तिष्क के बाहर खड़ी रहेंगी। उनकी प्रेरणाएँ मस्तिष्क में पहुँचने के पूर्व ही टकरा कर चूर-चूर हो जायगी और उनका अस्तित्व भी नहीं रहेगा। तुम्हारे भविष्य की रचना होते समय तुम्हारे अतिरिक्त किसी की सलाह नहीं ली जायगी। उनकी बातें सुनी ही नहीं जायगी, उन पर विचार तक नहीं किया जायगा। तुम्हारे शरीर पर शासन करने वाले भले ही तुम्हें भय या प्रलोभन देकर एक बार तुम्हें फेर लें। भले ही अनिच्छा-पूर्वक तुम्हें उनके विचारों का विषैला घूँट पीना पड़े। भले ही उनके शील, बड़प्पन या दबाव के आगे तुम्हें शिर झुकाना पड़े और वे तुम से अपनी बातें स्वीकृत करा लें ; परन्तु तुम्हारा मस्तिष्क स्वतन्त्र है। मन और आत्मा पर किसी का अधिकार नहीं है। चित्त-वृत्ति किसी दबाव के आगे झुक नहीं सकती। प्रवृत्ति को कोई रोक नहीं सकता। विश्व की बलवती शक्तियाँ शरीर पर अधिकार जमा सकती हैं, परन्तु हृदय पर नहीं—किसी के विचार और मन पर नहीं। क्योंकि :—

"जब्र अन्द करो, चाहे मुझे असीर करो।
मेरे ख्याल को, बेड़ी पिन्हा नहीं सकते॥"

तुम्हें इसके लिये प्राणों से भले ही हाथ धोना पड़े, परन्तु तुम अपने विचार पर अटल और अचल रहोगे। अपने लक्ष्य पर दृढ़ रहोगे। मित्रों की बातें सुन लेने के पश्चात् साथियों से राय मिलाने के बाद और वृद्धों का आदेश सुन लेने के उपरान्त तुम पुनः वहीं—अपने स्थान पर लौट आवोगे। अपने विचार पर स्थिर रहोगे।

भाग्य की रचना होते समय तुम्हारे मस्तिष्क में तुम्हारी आत्मा रहेगी, तुम्हारी चित्त वृत्तियाँ रहेंगी; तुम्हारी लगन होगी, तुम्हारी हार्दिक इच्छाएँ होंगी और तुम्हारी इन्द्रियों का स्वामी मन होगा। हृदय की प्राचीर लाँघ कर किसी अन्य का विचार वहाँ पहुँच नहीं सकता। वे सब तुम्हारे मस्तिष्क के बाहर हवा में चक्कर लगाया करेंगे। दूसरों के वे ही विचार, उनकी वे ही सम्मतियाँ मस्तिष्क की बैठक में सम्मिलित हो सकेंगी, जिन्हें तुम्हारी आत्मा द्वारा बैठने की स्वीकृति मिल चुकी होगी। जिन्हें बैठने की आज्ञा इन्द्रियों के सम्राट् मन ने दे रखी होगी। इस बैठक का निर्णय तुम्हारे जीवन का निर्णय होगा। इसका फैसला तुम्हारे जीवन का फैसला होगा। इसका रचा भविष्य तुम्हारा भविष्य होगा और यही तुम्हारा भाग्य होगा। संसार के किसी भी व्यक्ति में इस निर्णय को बदलने की शक्ति नहीं है। कोई भी शक्ति इसमें परिवर्तन नहीं करा सकती और इसे रोक नहीं सकती।

प्रत्येक मनुष्य में विद्वान्, व्याख्यानदाता, वायुयान सञ्चालक, पहलवान, धनवान, सेनानायक और राष्ट्रनिर्माता सब कुछ बनने की शक्ति अन्तर्हित है। तुम क्या बनोगे—यह तुम क्या बनना चाहते हो, पर निर्भर है। प्रथम अपना लक्ष्य निर्धारित कर लो फिर लक्ष्य-वेध के लिये उद्यत हो जाओ। तुम अवश्य सफल होओगे। संसार की बाधाएँ तुम्हारी दासी होकर रहेंगी। तुम्हारे शूल भी फूल होंगे। यह सब तुम्हारी दृढ़ता और लक्ष्य की निश्चयता पर निर्भर है।

मनुष्य वही होता है जो वह होना चाहता है। उसकी शक्ति उधर ही दौड़ती है जिधर उसकी प्रवृत्ति होती है। मनुष्य का भाग्य-निर्माण, उसके भविष्य की रचना; उसकी आन्तरिक



इच्छाओं के आधार पर ही होती है—उसकी आत्मा की पुकार के अनुकूल—ही होती है। जीवन-सुधार के बहाने किसी की प्रवृत्ति मे बाधा डालना, उसकी आन्तरिक शक्तियों के विकास को रोकना है। उनको कुण्ठित और निकम्मी बनाना है। किसी की लगन को रोकना उसके स्वाभाविक जीवन-प्रवाह को प्रतिकूल प्रवाहित करने की कुचेष्टा है। वह जो कुछ बनना चाहता है, उसमें बाधा डाल कर उसे कुछ भी नहीं बनने देना है।

× × ×

गेलीलियो आरम्भ से ही गणित-प्रेमी था। उसका पिता उसे डाक्टर बनाना चाहता था। पिता द्वारा प्रेरित होकर उसे शरीर-शास्त्र की पुस्तकें पढ़नी पड़ती थीं। परन्तु वह उन पुस्तकों के नीचे गणित की पुस्तकें छिपा कर पढ़ा करता था और पिता की आँखें बचाकर गणित के कठिनतर प्रश्नों को हल किया करता था। उसने १८ वर्ष की आयु में ही गिरजाघर में पेण्डुलम के सिद्धान्त का आविष्कार किया। दूरबीन और खुर्दबीन बना कर उसने मनुष्य के ज्ञान और शक्ति की वृद्धि की। यदि गेलीलियो अपने लक्ष्य पर नहीं चलता तो वह कभी सफल नहीं हो पाता और वह एक नक्काल डाक्टर होता एवं पैसे-पैसे के लिये तरसता रहता।

माइकेल एंजिलो के पिता ने अपनी सन्तान को चित्रकला से सदैव दूर रहने की शिक्षा दी थी। दीवारों पर चित्र बनाने के कारण पिता ने उसे दण्ड भी दिया था। परन्तु उसका हृदय चित्रकला से ओतप्रोत था। उसकी चित्तवृत्ति चित्रकारी द्वारा बाहर निकलने का प्रयास कर रही थी। जब तक एंजिलो ने सेण्टपीटर और सिसटाइन के गिरजे को अपने हाथों चित्रित नहीं कर दिया, तब तक उसके हृदय की स्वामिनी कला ने—उसको

प्यारी चित्रकारी ने—उसे विश्राम नहीं लेने दिया। चित्रकला ने भी अपने प्रणयी को अमरत्व प्रदान किया।

जोसफ टरनर की हार्दिक रुचि चित्रकार बनने की थी। परन्तु उसका पिता चाहता था कि वह नापित का कार्य करे। बहुत विरोध तथा आग्रह के पश्चात् उसे चित्रकारी के लिये स्वीकृति मिल गयी। अब क्या था। टरनर को इच्छानुकूल कार्य करने की स्वतन्त्रता मिल गयी। फलस्वरूप वह शीघ्र ही एक सफल चित्रकार हो गया। आरम्भ में उसके पास साधनों का अभाव था। उसे अच्छा काम भी नहीं मिलता था। केवल गाइड की पुस्तकों तथा पञ्चाङ्गों के लिये ही उसे चित्र बनाने का कार्य मिल पाता था। फिर भी वह अपने कार्य को बड़े परिश्रम और लगन से पूरा करता था। यद्यपि उसे उसके कार्य की अपेक्षा पारिश्रमिक बहुत न्यून मिलता था, फिर भी वह निराश नहीं होता था। धीरे-धीरे जब उसकी ख्याति बढ़ने लगी तो उसे अच्छे-अच्छे कार्य मिलने लगे और प्रचुर पारिश्रमिक भी प्राप्त होने लगा। उसके चित्रों में सौन्दर्य और आकर्षण दोनों रहते थे। प्राकृतिक दृश्यों का तो वह रूप ही खड़ा कर देता था। संसार में उसके चित्रों को अच्छा सम्मान प्राप्त है। चित्र कला में टरनर का वही स्थान है जो साहित्य में शेक्सपियर का। यदि टरनर अपनी रुचि के विरुद्ध चलता अथवा उसका पिता उसके स्वाभाविक जीवन-प्रवाह को विपरीत दिशा में घुमाने की कुचेष्टा करता तो टरनर आजन्म गलियों में भटकने वाला एक तुच्छ नाई ही बना रहता और कभी सफल नहीं हो पाता।

× × ×

"गधे! दुष्ट!! तुम्हें मना करते सैकड़ों बार हो गये कि तू कविता न कर!! इस बेकार के धन्धे में न पड़! फिर भी तू इस

इस काम में [illegible] रहता है—चाण्डाल ! नहीं मानता !!"
[illegible]त होते हुए एक लड़के के पिता ने कहा और फिर उसे ऐसा न करने की धमकी दी ।

लड़का जन्म सेही कवि-हृदय था । कविता करना ही उसका मनोरञ्जन और स्वभाव था । जब कभी वह अवसर पाता—एकान्त देखता और तुरन्त काग़ज़-पेन्सिल लेकर तुकबन्दियाँ करने बैठ जाता । उसके पिता इस कारण उससे अप्रसन्न रहा करते थे । इसके लिये उसे कभी-कभी मार भी खानी पड़ती थी । उसके पिता चाहते थे कि वह किसी अच्छे कार्य में लगे । कोई ऐसा धन्धा सीखे जिससे कम-से-कम वह अपनी जीविका उपार्जन कर सके । इसी से पुत्र के कृत्य से वे दुःखी रहा करते थे । एक बार लड़का एकान्त में एकाग्र बैठा कुछ कर रहा था । पिता की दृष्टि उस पर पड़ गयी । उन्होंने देखा वह तुकबन्दियाँ लिख रहा है । पिता को क्रोध चढ़ आया । उनकी आँखें लाल हो गयीं और क्रोध से होठ फड़कने लगे । उन्होंने इस बार उसकी आदत छुड़ा ही देने का प्रण कर लिया । वे उसे बुरी तरह मारने लगे । बेचारा लड़का मार से घबरा गया और फूट-फूट कर रोने लगा । अपने रुदन में वह पिता से न मारने की प्रार्थना कर रहा था और भविष्य में कविता न करने की प्रतिज्ञा । उसके पिता ने सुनाः—

Father ! father !! pity take,
No more shall I verses make.

अर्थात्

"पिताजी ! पिताजी !! न मारो मुझे ।
अब जो कविता करूँ, दण्ड देना मुझे ॥"

मार खाते समय लड़का गिड़-गिड़ाकर अपने पिता से उपर्यु
प्रार्थना कर रहा था । परन्तु चिल्ला-चिल्ला कर रोने के कार

उसका कथन स्पष्ट समझ में नहीं आता था और पिता का ध्यान उधर नहीं जा सका। लेकिन कई बार दुहराई जाने पर पिता ने जब उसकी बात सुनी तो वह पहले कुछ प्रसन्न हुए फिर आश्चर्य में पड़ गये और मारना छोड़ कर अपने कृत्य पर मन ही मन पश्चाताप करने लगे। उन्होंने विचार किया—"लड़का मार से बचने की प्रार्थना और भविष्य में कविता न करने की प्रतिज्ञा करता तो है, परन्तु सच्चे हृदय से नहीं—मार से ऊब कर—और उससे बचने के लिये। अपनी रक्षा के लिये यह पुनः कविता न करने का प्रण तो कर रहा है, परन्तु इतना व्याकुल होने पर भी वह उसे कहता है कविता में ही। इससे इसे मारना भूल है। कविता करना इसका मनोरञ्जन नहीं, स्वभाव है; और यह छूट नहीं सकता" फिर उन्होंने उसे कभी विघ्न नहीं पहुँचाया और प्रसन्नता-पूर्वक उसे कविता करने की अनुमति दे दी।

लड़के को इच्छानुसार स्वतन्त्रता मिल गयी। उसे उन्नति करने का पर्याप्त अवसर मिल गया। लड़के ने अपनी रचनाओं में अच्छी सफलता और ख्याति प्राप्त की। इसका नाम "अलेकज़ेन्डर पोप" है। इसके रचे ग्रन्थों में "इलियड" अत्यन्त प्रसिद्ध है। बचपन में कविता करने के लिये पिता द्वारा पीटे जाने वाले लड़के का रचा 'इलियड' सारे यूरोप में प्रख्यात है।

किसी भी पिता अथवा संरक्षक का अपने पुत्र या अपनी संरक्षता में रहने वाले किसी लड़के की इच्छा के विरुद्ध, यदि वह इच्छा स्वाभाविक है—प्रकृति प्रदत्त है, उसे किसी कार्य विशेष में लगने के लिये प्रेरित करना उसके उज्ज्वल भविष्य को शून्य और अन्धकार मय बनाना है। जीवन-सुधार के भ्रम से उसे अपने अभिलषित धन्धे की ओर लगाना उसके स्वाभाविक सामर्थ्य को नष्ट करना है, और करना है उसकी जीवन-शक्तियों (Energy) का दुरुपयोग।

किसी की स्वाभाविक रुचि को मिटा कर उसके हृदय पर अपनी इच्छाओं का साम्राज्य स्थापित करना, उसके जीवन-मन्दिर को खण्डहर बनाना है, और है ईश्वरीय-सृष्टि की एक उत्कृष्ट रचना को नष्ट भ्रष्ट करने का एक भयंकर अपराध! उसके भाग्य-विधाता उसकी प्रकृति-प्रदत्त शक्तियों की अवहेलना करके उसका जीवन अपूर्ण बनाने और विश्व को भविष्य में उसके द्वारा होने वाले लाभों से वञ्चित रखने के उत्तरदायी होंगे!!

निःसन्देह उसके माता-पिता, संरक्षक अथवा गुरुजन उसकी कल्याण-कामना से ही ऐसा करते हैं परन्तु उन्हें ध्यान रखना चाहिये—"वह वही होगा जो होने की उसकी हार्दिक, अभिलाषा है। वह उधर ही जायगा जिधर उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है और जिस ओर उसका मन लगा हुआ है। इसमें हस्तक्षेप करना उसके भाग्य-निर्माण में बाधा डालना है—विधाता के विधान में टाँग अड़ाना है। इससे उसे विघ्न पहुँचाना—उसके जीवन को अधूरा और अनियमित बनाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। उसके कृपालु शुभ-चिन्तकों को सोचना चाहिये—"उसकी रुचि में बाधा डालने से,वह जो बनना चाहता है वह नहीं बन सकेगा, तथा टूटे हुए हृदय से दूसरा कार्य करने से—उसमें भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकेगा और वह भी नहीं बन सकेगा जो उसके हितैषी उसे बनाना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में वह अभागा कहीं का भी न होगा और कुछ भी न होगा। उसकी दशा 'धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का'सी होकर रहेगी। इसके लिये उसके सुहृद जनों को-उसके शुभेच्छुओं को उसकी प्रकृति का अध्ययन करना सर्वोत्तम होगा। उसकी प्राकृतिक मनोवृत्ति का ज्ञान प्राप्त कर लेने के बाद उसे उसके अभिलषित साँचे में ढालने से उसकी स्वाभाविक शक्तियाँ जागृत हो उठेंगी, उसकी प्रकृति-प्रदत्त प्रज्ञा प्रज्ज्वलित हो

उठेगी ,जिससे वह एक अमूल्य रत्न बनेगा, जो अपनी ज्योति से जन-समूह को सत्य-प्रकाश में लायेगा और जो उनका मुकुट-मणि होकर रहेगा।

सभ्यता उस समय सर्वोच्च शिखर पर पहुँचेगी—उस समय पूर्णता को प्राप्त होगी-जिस समय प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्रता पूर्वक अपना अभिलषित व्यवसाय चुन सकेगा, अपनी इच्छानुसार कला में प्रवीण हो सकेगा और अपने मनोनुकूल विद्या पढ़ सकेगा। जब वह बिना किसी बाधा के स्वयं अपना भाग्य विधाता होगा और अन्य कोई भी उसमें छेड़ छाड़ न कर सकेगा। किसी की रुचि में बाधा न डालने का अभिप्राय यह नहीं है कि यदि कोई कुमार्ग पर जाता है तो आप उसे न रोकें और जाने दें तथा उसे सन्मार्ग पर लाने की चेष्टा न करें, बल्कि यह कि उसे उसके इच्छानुसार व्यवसाय चुन लेने दें; उसे उसकी रुचि के अनुसार कार्य में लगने दें।

अत्यन्त सावधानी और विवेक से अपना लक्ष्य स्थिर करो। लक्ष्य-निर्वाचन में सफलता का अद्भुत रहस्य छिपा पड़ा है। लक्ष्य की स्थिरता के कारण कितने ही मनुष्यों ने विचित्र कौतूहल उत्पन्न कर दिया और विश्व की काया पलट करके—उसे लाभान्वित करके उसको सदैव के लिये अपना ऋणी बना लिया। लक्ष्य की स्थिरता ने ही उनमें संजीवनी शक्ति उत्पन्न की थी।

लक्ष्य की स्थिरता ने ही, विघ्न और विरोध होने पर भी, कोलम्बस को अमेरिका अनुसन्धान के लिये प्रोत्साहित किया था। लक्ष्य की स्थिरता ने ही दक्षिणी-ध्रुव के अन्वेषण यात्री—"कैप्टेन स्काट"—के हिमाच्छादित पथ में आशा की चारु चन्द्रिका छिटका दी। लक्ष्य की स्थिरता ने ही नेपोलियन के लिये, बर्फीले आल्पस की छाती पर राज-मार्ग का निर्माण किया। लक्ष्य की स्थिरता ने ही

स्वदेश की स्वतन्त्रता के पीछे मर मिटने वाले —"गैरीबाल्डी" के काँटों के ताज को स्वर्णमुकुट में परिणत किया। लक्ष्य की स्थिरता ने ही संसार को बुद्ध के "अहिंसा परमो धर्मः" का पाठ पढ़ाया। इसी की धुन में ऋषि दयानन्द ने विरोध और अपमान को अलङ्कार समझा और राष्ट्र को जीवन-जागरण का सन्देश दिया। इसी ने मुहम्मद साहब को ईंट-पत्थरों की मार से भी विचलित न होकर इस्लाम का धर्मोपदेश देने की शक्ति दी। इसी ने महात्मा ईसा को कष्ट और अत्याचार से भी न घबरा कर परोपकार में लगे रहने का आशीर्वाद दिया। इसकी स्थिरता के कारण ही सुकरात ने विष में भी अमरत्व की झाँकी देखी। इसी की मस्ती में मन्सूर ने सूली की नव-वधू का स्नेह से चुम्बन किया और रक्त से उसकी माँग भर दी। इसी ने दुःख और संकट उठा कर भी अन्याय का विरोध करने की शक्ति साहसी पुरुषों को प्रदान की है। इसी ने विश्व में जागृति की ज्योति फैलायी और संसार को प्रगतिशील बनाया। अपने लक्ष्य को एकाग्र होकर स्थिर करो। फिर शस्त्र चलाओ—कर्म करो तुम्हारा प्रहार—तुम्हारा प्रयत्न—अचूक होगा। लक्ष्य की स्थिरता के समीप ही सफलता की स्वर्ण पुरी अवस्थित है।

मैसूर राज्य की सीमा पर "जोग" का प्रख्यात प्रपात है। वहाँ की अतिथि-शाला की दर्शक सम्मति (Visitor's-Book) में देशी तथा विदेशी अनेक दर्शकों ने अपने हार्दिक आनन्दोद्‌गार अङ्कित कर रखे हैं। "जोग दर्शन" को पृथ्वी का स्वर्ग-दर्शन कह सकते हैं महात्मा जी तथा श्री कालेलकर जी दक्षिण खादी-यात्रा में साथ थे शिमोगा सागर पहुँचने पर श्री कालेलकर जी ने महात्मा जी से "योग प्रपात" देखने का अनुरोध किया।

"चलिये, 'जोग-प्रपात' देख आवें, यह सिर्फ १५ मील ही तो है!"—श्री कालेलकर जी बोले।

"नहीं, हम लोग प्रचार करने आये हैं ! हमें अपना कार्य करना चाहिये"–महात्मा जी ने कहा।

"अजी, चलिये न ! बहुत शीघ्र तो लौट ही आवेंगे। बहुत समीप है। फिर "जोग" कितना सुन्दर है ! बड़ा ही चित्ताकर्षक है। पृथ्वी का स्वर्ग है !! अवश्य चलें आप !"

"पर, मैं जा कैसे सकता हूँ ? यदि मैं यों ही स्वच्छन्दता करता रहूँ तो स्वराज्य का कार्य कौन करेगा ?"......हाँ, तुम जाओ। तुम शिक्षा-शास्त्री हो, उसे देख कर विद्यार्थियों को भी कुछ-न कुछ आनन्द और ज्ञान वितरण कर सकोगे !"

"किन्तु आप भी अवश्य चलें ! 'जोग' ६६० फ़ीट की ऊँचाई से गिरता है। लार्ड कर्ज़न विशेष कर इसकी छटा देखने ही यहाँ आये थे !!

"आकाश का जल इससे भी अधिक ऊँचाई से गिरता है ! मुझे यहीं रहने दो !—महात्मा जी अनिच्छा प्रकट करते हुए बोले और अपने कार्य में संलग्न रहे।

"एकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।
जो गहि सेवे मूल को, फूले फले अघाय॥"

अपने लक्ष्य के समक्ष आकर्षण और लुभाव की ओर झाँको भी मत। भलेही विनोद तुम्हें बुला रहा हो, विश्वास तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हो और प्रलोभन तुम्हें आकृष्ट कर रहा हो ; परन्तु तुम उसकी ओर दृष्टिपात भी न करो; उसकी बातें सुनो भी मत। अपने लक्ष्य को अपना इष्टदेव समझो। उसी की पूजा-अर्चना करो और उसे ही प्रसन्न रखो। लक्ष्य के आगे विश्व के प्रलोभन और स्वर्गीय सुखों को भी ठुकरा दो। तुम्हारे इस त्याग और तपश्चर्या से विफलता की महापिशाचिनी स्वयं भस्मीभूत हो जायगी और भगवती सफलता का महिमामय सिंहासन हिल उठेगा।

जैसे तुम अपनी जीविका के निमित्त कोई कार्य या व्यवसाय चुनते हो; उसी भाँति तुम्हें अपने जीवित रहने या जन्म धारण करने के प्रमाण स्वरूप एक उच्चतर उद्देश्य या एक पवित्रतम लक्ष्य (व्रत) चुनना चाहिये। जिससे तुम्हारे जन्म लेने और मनुष्य शरीर धारण करने का ध्येय सिद्ध हो सके और तुम पृथ्वी पर भार रूप न रहो। जैसे भगवान् राम ने पितृ-भक्ति, भरत ने त्याग, हरिश्चन्द्र ने सत्य, युधिष्ठिर ने धर्म, कर्ण ने दान, शिवि ने शरणागत रक्षा तथा पितामह भीष्म ने आजन्म ब्रह्मचर्य्य का महाव्रत लिया था। उसी भाँति तुम भी अपने सामर्थ्य और शक्ति के अनुसार कोई लक्ष्य चुन लो। इससे तुम्हारा जीवन अमर हो जायगा और तुम देवता बन सकोगे।

आत्म-विश्वास

एकोऽहम् असहायोऽहं, कृशोऽहम् अपरिच्छदः ।
स्वप्नेप्येवं विधा चिन्ता, मृगेन्द्रस्य न जायते ।।

मैं अकेला हूँ, असहाय हूँ, दुर्बल हूँ और आवरणरहित—अरक्षित-हूँ, स्वप्न में भी सिंह को ऐसी चिन्ता नहीं होती । उसे ऐसा विचार तक उत्पन्न नहीं होता ।

प्रत्येक मनुष्य में अपार शक्ति भरी पड़ी है । उसमें अनन्त बल है और है संसार के सारे कार्यों को करने की क्षमता । ऐसा कोई कठिन कार्य नहीं जिसे करने की योग्यता उसमें न हो । जिसे वह न कर सके । फिर उसकी असफलता का क्या कारण है ? फिर वह क्यों पराजित एवं निराश होता है ? अनायास ही संकटों का स्मरण करके वह क्यों चिन्तित होता है ? निष्प्रयोजन ही विफलता की कल्पना करके वह क्यों व्यग्र हो उठता है ? केवल इसीलिये कि उसे अपनी शक्तियों पर विश्वास नहीं है । वह उन्हें पहचानता नहीं और उन पर भरोसा नहीं रखता । इसी कारण इतना योग्य और शक्तिशाली होने पर भी वह साधारण व्यक्तियों के आगे शिर झुकाये रहता है और अपना स्वाभिमान खो बैठता है ।

जिस शक्ति से एक मनुष्य मदमाते मतङ्ग को अपने वश में करता है, जिससे वह क्रोधित केहरी को वशीभूत कर लेता है, जिस बुद्धि से वायुयान बना कर उसने आकाश पर आधिपत्य प्राप्त किया, जिससे उसने अनन्त महासागरों के वक्षस्थल पर भी

अपना साम्राज्य स्थापित किया, जिस शक्ति से वह विश्व का नेतृत्व करता है- संसार के समस्त जीवों पर शासन करता है—और कोई भी उसके ज्योतिर्मय मुख-मण्डल की ओर देखने का साहस भी नहीं करता, ठीक वही शक्ति, वही बल, वही बुद्धि और वही तेज प्रत्येक पुरुष में है। किन्तु मनुष्य का स्वभाव हस्ती के सदृश है और वह अपनी शक्तियों को पहचानता नहीं। उसकी असफलता का केवल यही एक प्रधान कारण है। इसी से उसे विफल होना पड़ता है और वह निराश होता रहता है।

जैसे हाथी डील डौल में बड़ा होता है—विशाल काय और शक्तिशाली होता है। यदि वह सिंह को अपने पैर से कुचल दे तो उसका कचूमर निकल जाय—उसकी चटनी बन जाय। यदि कहीं गजराज की एक ठोकर मृगराज के मेरु-दण्ड पर पड़ गयी तो उसके मुख से रक्त-स्राव होने लगेगा और वह परलोक का पथिक हो जायगा। परन्तु गज अपनी शक्तियों को समझता नहीं, उसे अपने बल पर विश्वास नहीं है, और इसी से वह मृगपति से पराजित होता रहता है वन-पति अकेला होकर भी हाथियों के झुण्ड को तितर-बितर कर देता है। उसकी दहाड़ सुनते ही इनके देवता कूच कर जाते हैं और इनमें भगदड़ मच जाती है। इतने भीमकाय और अतुल बलशाली हस्ती के शरीर में अत्यन्त दुर्बल आत्मा निवास करती है और लघुकाय केहरी के शरीर में महा प्रबल आत्मा! यह एक विचित्र ही कौतूहल है। इसी से केशरी-कुमार भी उछल कर गजेन्द्र के मस्तक पर आरूढ़ हो जाता है, अपने नखों से उसे विदीर्ण कर देता है और अपनी वज्र सम दाढ़ों से उसके टुकड़े-टुकड़े कर देता है। आत्म-विश्वास विहीन होने के कारण ही सिंह के सामने सुण्डाल की बहुमूल्य गज-मुक्ता का कुछ भी मोल नहीं रहता और वह उसके समक्ष शक्ति, सामर्थ्य तथ

साहस का कङ्काल बना रहता है और निस्तेज होकर भागता फिरता है।

आत्म-विश्वास के अभाव से द्विरद को भारी क्षति उठानी पड़ती है, क्योंकि इसे खोने के साथ ही यह स्वाभिमान भी खो बैठता है। इससे इसकी 'और भी मिट्टी पलीद होती है। सिंह-सुअन तो इसे कपि-नृत्य नचाते ही हैं, परन्तु एक साधारण व्यक्ति—हस्तिपक–भी इसे अंकुश से अपने वश में किये रहता है। उसके भय से यह जगह-जगह उठता बैठता है, घोड़े की तरह सवारी में जुता रहता है और खच्चरों की भाँति बोझ ढोता फिरता है एक अतिकाय और असीम बलशाली प्राणी की ऐसी दुर्दशा देख कर हृदय क्षुब्ध हो उठता है और आत्म-विश्वास का अलौकिक चमत्कार मूर्तिमान होकर सामने आ खड़ा होता है।

मनुष्य अपनी शक्तियों को पहचाने, उनका उपयोग करे तो वह महान् बन सकता है और अवश्य अपनी माता के स्तन्य की मर्य्यादा रख सकता है। यदि वह अपनी योग्यता पर विश्वास रखे और आत्मोन्नति के लिये कटिबद्ध हो जाय तो निश्चय वह विजयी होगा और जननी, जन्मभूमि का मस्तक ऊँचा कर सकेगा। उसकी गर्जना से समस्त वन-स्थली थर्रा उठेगी और उसकी निद्रावस्था में उसके विपिन की–उसके मातृभूमि की—बन्दर बाँट करने वाले वन-पशु भाग खड़े होंगे। उसे विश्वास रखना चाहिये कि वह महान् प्राणी है, ईश्वरीय सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्कृष्ट जीव है। उसका हृदय अनन्त शक्तियों का भंडार है, सम्पूर्ण सफलताओं का केन्द्र है और समस्त विजयों का उद्गम स्थान। अपनी शक्तियों के सहारे वह कोई भी बड़े से बड़ा कार्य कर सकता है, अपनी योग्यता से वह संसार के किसी भी उच्चतम स्थान पर पहुँच सकता है। विश्व का किसी भी श्रेष्ठतम वस्तु को प्राप्त कर सकता है। विपत्तियाँ उसे ठहरा नहीं

सकती, संकट उसे चिन्ता शील नहीं कर सकते और संसार की कोई भी शक्ति उसका अवरोध नहीं कर सकती। कठिनता का कोई भी बन्धन उसे बाँध नहीं सकता। उसे विश्वास रखना चाहिये कि उसमें सारी शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। वह कठिनाइयों को कुचल सकता है, बाधाओं को मसल सकता है और कंटकों को रौंद कर आगे बढ़ सकता है।

आत्म-विश्वास का अर्थ है,—अपनी अन्तरात्मा का दृढ़ विश्वास, अपनी सफलता का पूर्ण निश्चय "उदासीन होकर कार्य करने और आत्म-विश्वास से उसे सम्पादित करने में ठीक उतना ही अन्तर है जितना असफलता और सफलता में भारी भेद है, जितना पराजय और शानदार विजय में महान् अन्तर है। आत्म-विश्वासी पराजित नहीं होता, और पराजित होने पर भी कभी निराश नहीं होता। असफल होकर भी वह हतोत्साह नहीं होता। विपत्ति में भी उसे इसका गर्व रहता है कि एक दिन वह फिर अपनी विजय में अग्रसर होगा। एक बार पुनः अपने खोये हुए साम्राज्य को प्राप्त करके रहेगा और अपने को कायर नहीं नर-शार्दूल प्रमाणित करेगा। पुनः स्वत्व, सम्पत्ति, स्वातन्त्र्य और सम्मान प्राप्त करके अपना संकल्प पूर्ण करेगा और अपने धवल यश से दिग दिगन्त को आलेकित करेगा और करेगा अपने पूर्वजों का मुख उज्ज्वल !

आत्म विश्वास में अद्वितीय शक्ति भरी पड़ी है। संसार के समस्त महान् और महत्वपूर्ण कार्य इसी महाशक्ति की सहायता से सम्पादित होते हैं। जो कार्य धन नहीं कर सकता, बुद्धि जिसे सोच नहीं सकती और प्रभुत्व जिसे पूर्ण नहीं कर सकता, उस कठिन कार्य को और उसी महत्तर कार्य को आत्म-विश्वासमिनटों में समाप्त कर सकता है। आत्म-विश्वास में अद्भुत कमाल भरा पड़ा है। यह सन्देह और अविश्वास को फटकने ही नहीं देता निराश का प्रादुर्भाव ही नहीं होने देता। असफलता की बाते

सोचने तक नहीं देता। राणा प्रताप के पास अकबर से लड़ने की कौन सी शक्ति शेष थी ? शिवाजी के पास मुग़ल साम्राज्य को हिलाने के कौन से साधन प्रस्तुत थे ? ईरान के गड़ेरिये—नादिर के पास उन्नति करने के कौन से अच्छे अवसर थे ? पच्चीस रुपये मासिक पाने वाले श्रीआनन्दीलाल जी पोद्दार, विपद्ग्रस्त श्री गोविन्दराम जी सेक्सरिया और भूखों मरने वाले जे० एन० ताता, कैसे दरिद्र से धन-कुबेर हुए ? कैसे वे रङ्क होकर भी राव थे, निर्बल होकर भी बलवान थे, कैसे कुछ भी न होने पर भी सब कुछ उनके पास था ? इसलिये कि उनके पास आत्म-विश्वास का अटूट भण्डार था ! आत्मविश्वास की अतुल निधि थी ! इसी से तख्त और ताज के बिना भी वे एक राजा थे सिंहासन बिना भी एक सम्राट् थे जिनकी भ्रू-वकों के समक्ष विश्व-विरोध की शत्रु सेना कैसे भी टिक नहीं सकती थी और जिस पर उन्होंने बिना सेना और शस्त्रागार के भी शानदार विजय पायी। किसने निर्धनों को धन-वानों की प्रतियोगिता में विजयी बनाया। किसने अभागों और अनाथों को भाग्यमानों तथा श्रीमन्तों द्वारा भी पूजित कराया ? किसने असफल मनुष्यों को बार-बार प्रयत्न करने के लिये प्रोत्साहित किया ? किसने मरभूखों और निराश्रयों को निरुत्साह होने से बचाया ? किसने दुर्बलों को बलवान से लोहा लेने की शक्ति दी ? किसने अभागों को सौभाग्य संग्राम में विजयी बनाया ? आत्म-विश्वासने ! आत्म-विश्वास ने !! और एक मात्र आत्म-विश्वास ने !!

मनुष्य !—महावीर !! अपनी शक्ति पर विश्वास रख अपने अतुल बल का गर्व कर। ओ बल-बुद्धि निधान ! तुम में समस्त शक्तियाँ अन्तर्हित हैं, तू उनका आभास कर और व्यर्थ ही चिन्तित न हो। अहंकारी रावण का दर्प दलन करने की तुम में क्षमता है, अपने विपुल बल का स्मरण तो कर ! अत्याचारी घट-कर्ण और

घन-नाद को तू मसल सकता है विक्रम वज्राङ्गी ! यही नहीं तुम्हें जलाने की युक्ति करने वाले निरंकुश निशिचरों को भस्म करके तू उन्हीं के हाथों उनके मुँह में थप्पड़ लगा सकता है पवन पुत्र ! इतना ही क्यों मुर्च्छित सौमित्र को सञ्जीवनी लाकर प्राण-प्रदान करने की शक्ति तुम में ही तो भरी है वायु तनय ! फिर कैसे समझते हो कि तुम कुछ नहीं कर सकते ? अपने बल का विस्मरण न करो हनुमान ! कैसे समझते हो कि तुम सीता को स्वाधीन नहीं कर सकते प्रलयंकर के प्रतिनिधि ! तुम्हारी सहायता से ही राम-राज्य का निर्माण होगा। जननी-अञ्जनी के दुलारे ! तुम सब कुछ कर सकते हो।

× × ×

नील नदी का युद्ध काल समीप था। युद्ध-वार्ता चल रही थी। सेना नायक विचार विमर्श में तन्मय थे। गम्भीर वातावरण था। कैप्टेन बेरी विचार-मुद्रा में निमग्न था। कभी किसी के मुख पर विषाद की रेखा अङ्कित हो रही थी और कभी किसी के अधरों पर हास्य अठखेलियाँ कर रहा था। इसी समय नेलसन ने युद्ध-स्थल का चित्र सेना नायकों के समक्ष रखा। कुछ मिनट उसे देखने के पश्चात् "बेरी" प्रसन्न हो उठा और आशान्वित होकर बोला—"खूब ! यदि हम विजयी हुए तो संसार कितना आश्चर्य करेगा" !!

इस पर नेलसन अपने हृदयोद्गारको रोक न सका और बोला "मि० बेरी ! 'यदि' के लिये कोई स्थान नहीं है, हम विजयी होंगे—अवश्य होंगे !! हाँ, हमारी विजय-वार्ता कहने को कोई रहेगा य नहीं; यह प्रश्न दूसरा है।

जिस स्थान पर सेना नायकों को हार दिखायी देती थी, जिर विषय में उसके साथियों को शंका थी, वहाँ और उसी स्थान प आत्म-विश्वासी नेलसन अपनी सफलता का—पूर्ण सफलता का—

स्वप्न देख रहा था। कुछ समय पश्चात् जब सेनाध्यक्ष जाने लगे तब नेलसन ने निश्चयात्मक होकर दृढ़ता से कहाः—

"बहादुरो! कल इस समय के पूर्व, या तो हमें विजय ही, मिलेगी—अवश्यमेव मिलेगी—अन्यथा "वेस्टमिनिस्टर" के गिरजे में मेरी कब्र ही तैयार मिलेगी!

आत्म-विश्वासी निराशा के अन्धकार में भी आशा की उज्ज्वल ज्योति देख लेते हैं और उसी के प्रकाश में चल पड़ते हैं। जैसे जौहरी धूल-कणों में भी रत्नों की आभा देख लेता है और जोखिम-उठा कर भी सौदा कर लेता है—परन्तु वीर जीवन का सौदा पक्का कर लेता है और प्राणों की बाज़ी लगा देता है।

× × ×

कालोना के स्टीफेन को बन्दी करने पर शत्रुओं ने व्यंग से उससे पूछा—"स्टीफेन, ओ गर्वीले स्टीफेन! बोलो, तुम्हारा क़िला कहाँ है?—जिस पर तुम्हें नाज़ था वह दुर्ग कहाँ है?"

आत्म-विश्वासी स्टीफेन ने गरजते हुए कहा—"मेरे पास है! (हृदय पर हाथ रखते हुए) यहाँ है!! देखें, छीन तो लो-! नादान, मुझे बन्दी करके भी इसे जीत न सके!"

× × ×

सिकन्दर ने विजयोन्माद में पोरस से पूछा—"बताओ, तुम्हारे साथ कैसा व्यवहार किया जाय?"

"जैसा एक सम्राट् को दूसरे सम्राट् से करना चाहिये"।—आत्म-विश्वासी पोरस ने निर्भीकता पूर्वक उत्तर दिया। सब कुछ खोने पर भी पोरस ने स्वाभिमान नहीं खोया था। हारने पर भी उसने शत्रु के समक्ष घुटने नहीं टेके थे। पराजित होने पर भी पोरस की आत्मा पराजित नहीं हुई थी और अभी भी वह अपने को अनन्त शक्तियों का सम्राट् ही समझता था।

सिकन्दर पर पोरस के आत्म-विश्वास का जादू छा गया। वह प्रसन्न हो उठा। सिकन्दर स्वयं एक वीर था और वीरत्व का सम्मान करना जानता था। उसने सैनिकों को आज्ञा दी—"इस आत्म-विश्वासी को मुक्त कर दो।"

× × ×

झंझावात के कारण तरणी को डगमगाती देख कर नाव का स्वामी विकल हो उठा। उसकी व्यग्रता देख कर सीज़र बोला—"घबराओ नहीं; इस नौका में सीज़र और उसका भाग्य दोनों है।"

× × ×

आत्म-विश्वासी किसी भी परिस्थिति में विकल नहीं होता। उसे अन्धेरी कोठरी में बन्द किया जा सकता है, हिंसक जन्तुओं में छोड़ा जा सकता है, उसके शरीर को लौह-शृङ्खला से जकड़ा जा सकता है, चमकती कृपाणें उसे भयभीत करने का प्रयत्न कर सकती हैं; किन्तु किसी प्रकार भी उसे चिन्तित और भयकातर नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार विविध प्रयत्नों द्वारा भी सूर्य्य रश्मियों का अवनी तल पर आना रोका नहीं जा सकता उसी भाँति आत्म-विश्वासी की प्रसन्नता को—उसके अन्तरात्मा की प्रखर और स्वर्णिम रश्मियों को कैसे भी रोका नहीं जा सकता। क्या मिश्री को चूर्ण करके उसका माधुर्य्य मिटाया जा सकता है? क्या घृत को जला कर उसकी सुगन्धि कम की जा सकती है? तोप तलवारों से साम्राज्य जीते जा सकते हैं, सेना बन्दी की जा सकती है किन्तु आत्म-विश्वासी के हृदय पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती; परतन्त्र करके भी उसके विचारों को क़ैद नहीं किया जा सकता, उसकी हस्ती मिटायी जा सकती है पर उसकी मस्ती नहीं; उत्पीड़न और शोषण से उसके आनन्द के अजस्र स्रोत को शुष्क नहीं किया जा सकता। जिन्दगी और मौत के इन बाँ

खिलाड़ियों की शरीर रचना विचित्र ही जीवन तत्वों से निर्मित होती है। जिस देश और जिस धरती पर ये होते हैं, इन ज़िन्दा शहीदों के पीछे मस्ती का असंख्य आलम उमड़ा रहता है और मरने पर भी युग-युग तक इन न बुझने वाले चिरागों पर करोड़ों परवाने मंडराते रहते हैं।

अमेरिका का एक अभागा भूखा बालक। बिल्कुल साधन हीन और निर्धन !! उसने संसार पर एक दृष्टि डाली और फिर अपनी दशा पर—"कैसा कोलाहलपूर्ण और रमणीक संसार है। ये गगन चुम्बी भव्य भवन ! ये वैभव और ऐश्वर्यवान् धनिक !!" फिर उसने अपनी दशा पर दृष्टि पात किया और एक ठण्डी आह भरी—"मेरे ये फटे कपड़े और भूखा पेट······! इन प्रासादो में मेरे लिये इञ्च भर भी स्थान नहीं है और न इन समृद्धशाली धनिकों में है मेरे प्रति प्रेम ही !! हा ! मुझे आश्वासन देने वाला भी कोई नहीं !!"

फिर उसने अपनी अन्तरात्मा को टटोला। उसमें प्रकाश चमक रहा था। उसने उसमें पढ़ा—"अपने पर विश्वास रखो। अपनी शक्तियों का सम्मान करो। जब तुम्हारी आन्तरिक शक्तियाँ जाग्रत होंगी तब संसार की कोई भी बाधा, कोई भी कठिनता, तुम्हें रोक न सकेगी !"

उन दिनों आप ग्राण्टट्रन्क रेलवे पर एक अभागे लड़के को समाचार पत्र बेचते पायेंगे। "एक पैसा ! संसार की ताजी खबरें······एक पैसा !!" 'वह आप से आग्रह करेगा।'

आपको समाचार पत्रों के पढ़ने का शौक़ ही नहीं। फ़ुर्सत भी कहाँ है ? क्या करेंगे लेकर ! आप नहीं लेना चाहते।"

"जनाब ! बड़ी ताजी ख़बरें हैं। एक पैसा ही तो है ? ले लीजिये। ट्रेन में बेकारी का समय पत्रों से सुगमता से कटता है।

काम की बातें भी निकल आती हैं। सिर्फ़ एक पैसा।" वह आप से कहेगा।

आपने कई बार उसके पत्र लिये हैं। कभी-कभी आपकी पत्र लेने की इच्छा न रहने पर भी जब उसने बहुत आग्रह किया—परेशान किया—तो आपने उसे दुत्कार भी दिया है। अभागे का जीवन ही ऐसा था। प्लेट फार्म पर स्टेशन में चलती ट्रेनों में भाग-भाग कर दौड़-दौड़ कर लोगों को पढ़ने को समाचार पत्र देना। यात्री पत्र पढ़ते थे और लड़का पैसे वालों और निर्धनों की विषमता का अध्ययन करता था। एक-एक पैसे के लिये जाड़े, गर्मी एवं वर्षा में ठिठुरता, जलता और भींगता हुआ दुत्कार, फटकार और झिड़कियाँ सह कर!

अवसर मिलने पर लड़का रसायन-शास्त्र का अध्ययन किया करता था। पैसे बचा-बचा कर वह पुस्तकें क्रय करता था और बड़ी लगन से उन्हें पढ़ता था धीरे-धीरे विज्ञान-शास्त्र में उसकी अच्छी प्रगति हो गयी।

आपने ग्रामोफ़ोन से कभी मनोरञ्जन तो किया ही होगा। कैसे सरस-सरस गाने निकलते हैं एक निर्जीव पदार्थ से! ग्रामोफोन के आविष्कारक—"थामस एलवा एडीसन"—से आज कौन अपरिचित है? क्या यह वही लड़का है जिसे समाचार पत्रों के लिये विशेष आग्रह करने पर आपने कभी दुत्कारा भी था!

इरस्कीन चार वर्षों तक समुद्री बेड़े का कार्य करके सेना में भरती हो गया। इसको भी वह दो वर्षों तक करता रहा। एक दिन वह विचरता हुआ कोर्ट में चला गया। न्यायाधीश इसके सुपरिचित थे। उन्होंने इसे अपने समीप बैठाया और कहा—"देखो, ये इङ्गलैण्ड के प्रसिद्ध बैरिस्टर हैं।" इरस्कीन व बैठा-बैठा सबका वाद विवाद सुनता रहा। सबका कथन और त

सुनने के पश्चात् उसके हृदय की सुषुप्त शक्तियाँ जाग्रत हो उठीं, और हृदय से एक आवाज़ निकली—"इरस्कीन ! तू स्वयं एक बैरिस्टर बन सकता है—एक सफल बैरिस्टर बन सकता है। उठ, प्रयत्न तो कर !" इरस्कीन ने अन्तरात्मा के शब्दों में आत्मोत्थान की देववाणी सुनी। वह उसी दिन से क़ानून के अध्ययन में संलग्न हो गया और अपने देश का प्रख्यात बैरिस्टर होकर रहा।

आत्म-विश्वास वह अनुपम शक्ति-पुञ्ज है जो निर्धनों का धन दुर्बलों का बल, महापुरुषों का तेज और असहायों का सामर्थ्य बन कर उनमें अलौकिक ज्योति उत्पन्न करता है और वे अपनी असाधारण प्रतिभा से अनैतिक अन्धकार मिटाकर विश्व का नैतिक-पथ की ओर मार्ग प्रदर्शन करते हैं। इसी के बल पर कर्मवीर विश्व विरोध से भी विचलित नहीं होते, और अपने सुख-चैन की आहुति चढ़ा कर भी वे विश्व-कल्याण का महा-यज्ञ प्रारम्भ रखते हैं। इसी की कृपा से मनस्वी अकेले होकर भी अपने पीछे असंख्य अनुगामी होने का आभास करते हैं; यही वह महा शक्ति है जो संसार के समस्त महापुरुषों के हृदय में काम करती रहती है इसी के भरोसे वे विघ्न और अत्याचार के मध्य भी अपने को स्वर्गीय शक्ति की छत्र-छाया में सुरक्षित समझते हैं।

स्वामी विवेकानन्द जब अमेरिका गये तो वे वहाँ वालों के विनोद की वस्तु बन गये। उनकी धोती, बगल-बन्दी और साफ़ा अमेरिका वालों के लिये विचित्र वस्तु था। लोग उनकी हँसी उड़ाया करते थे। भीड़ में तो उन्हें धक्के तक खाने पड़ते थे। यहाँ तक कि एक बार किसी सज्जन ने पीछे से उनके सिर पर एक ऐसी चपत लगायी कि उनका साफ़ा गिरते गिरते बचा। स्वामी जी ने पीछे मुड़ कर देखा तो कुछ व्यक्तियों को मुसकराते पाया।

"महोदय ! मेरे साफे को गिराने के लिये क्या आपको ही कष्ट करना पड़ा है ?"—स्वामी जी ने उनसे पूछा।

उन व्यक्तियों ने ऐसे पुरुष से जिसकी वेश-भूषा उन्हें गँवारों सी प्रतीत होती थी सज्जनता का व्यवहार करना भी उचित नहीं समझा और उक्त प्रकार से अपनी शिष्टता का परिचय दिया ! परन्तु उस गँवार के पाण्डित्य से वे प्रभावित हो गये। उन्होंने गुदड़ी में—जिससे उन्हें घृणा थी—रत्नों की आभा देखी। और स्वामीजी से क्षमा-याचना की।

बड़ी कठिनता से शिकागो की एक सभा में स्वामीजी को व्याख्यान के लिये समय मिला—केवल पाँच मिनट का। इतने अल्प समय में उन्हें अपने विचार प्रकट करने थे, ऐसे देश में और उस समय—जो भारत को असंस्कृत समझता था। विकट समस्या थी। पर कुछ भी हो स्वामीजी को तो उनके दुर्व्यवहार को सद्व्यवहार में परिणत करना था और सुनाना था उन्हें भारत का अमर सन्देश। स्वामीजी बिल्कुल व्यग्र नहीं हुए। उन्हें ऐसा आभास हुआ मानो वे किसी अलौकिक शक्ति की गोद में बैठे है। उन्होंने वक्तृता प्रारम्भ की। समय पाँच ही मिनट था पर वे घण्टों बोलते रहे—धारा प्रवाह ! उस पाण्डित्य-पूर्ण प्रवाह को रोकने में कौन समर्थ था ? समस्त श्रोता एवं प्रधान सभी उनका प्रवचन सुनते रहे—मन्त्र-मुग्ध से ! उस पुनीत प्रवाह ने अमेरिका की कटुता और दुर्भावनाओं को दूर करके युग-युग की सञ्चित भारतीय संस्कृति की मुक्ता-मणियाँ वहाँ बिखेर दीं ! फिर तो प्रतिदिन और स्थान-स्थान पर अगणित नर-नारी इस भारतीय विभूति के दर्शन और वचनामृत-पान के लिये उत्सुक और उत्कण्ठित रहा करते थे। और इस भाँति भारतवर्ष की अमेरिका पर नैतिक विजय हुई ! आज भी सुहृद अमेरिकनों के हृदय पर भारतवर्ष का साम्राज्य प्रस्थापित है

४

आत्म विश्वास के अभाव में योग्यतम व्यक्ति को भी नीचा देखना पड़ता है। वह लज्जा से गड़ जाता है और पराजय लेकर घर लौटता है। आत्मविश्वास के बल पर साधारण व्यक्ति भी अपनी प्रतिभा दिखा सकता है और थोड़ी योग्यता के सहारे भी सफलता की दौड़ में सर्व प्रथम हो सकता है।

यदि कोई चाहता है कि वह अपने कार्य में उन्नति कर सके, अपनी कला में कुशलता प्राप्त कर सके और अपने धन्धे में निपुण हो सके, तो उसे अपने कार्य का सावधानी और तल्लीनता से अध्ययन करना चाहिये तथा अपनी त्रुटियों का सतर्कता से अन्वेषण करना चाहिये और उन्हें दृढ़ता पूर्वक दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। परन्तु कर्त्तव्य के रङ्ग मञ्च पर पहुँच कर कभी भी अपने को अयोग्य समझना ठीक नहीं। उस समय अपनी त्रुटियों का स्मरण करना भी बुरा है, अपनी दुर्बलताओं पर दृष्टिपात करना भी उचित नहीं है। वरन् मनुष्य संकुचित लज्जित और कायर हुए बिना नहीं रह सकता। वह अपना कर्त्तव्य-पालन उत्तमता से नहीं कर सकेगा और अवश्य पराजित होकर घर लौटेगा।

वक्तृता देते समय वक्ता कभी विचार भी न करे कि श्रोताओं में उससे भी विश्रुत विद्वान् बैठे हैं, उपदेश देते समय उपदेष्टा कभी विचार भी न करे कि स्वयं उसमें भी वही दोष है, लिखते समय लेखक इसका स्मरण भी न करे कि उसकी रचना उससे भी विशिष्ट व्यक्तियों के करों में जायगी; इसी भाँति परीक्षा भवन में परीक्षार्थी को अपनी अयोग्यता का किञ्चित भी स्मरण नहीं करना चाहिये। अपितु संकुचित, शंकित, लज्जित और भयभीत होने से उद्विग्नता के कारण मनुष्य स्पष्टता, निर्भीकता, और स्वच्छन्दता से कर्त्तव्य-पालन न कर सकेगा। फलस्वरूप जन-

समुदाय उसके स्वतन्त्र विचारों, सद्उपदेशों, और उसकी लेखनी के चमत्कारों से सर्वथा वञ्चित रह जायगा और उज्ज्वल सत्य पर भी पर्याप्त प्रकाश न पड़ सकेगा। योग्य होने पर भी मनुष्य को अपनी योग्यता में सन्देह होगा और जीवन परीक्षा में वह पग-पग पर असफल ही होता रहेगा।

कार्य को हाथ में लेने के पूर्व भली प्रकार उसे सोच विचार लो, परन्तु उसे आरम्भ करने के पश्चात् कभी अपनी अयोग्यता तथा असमर्थता का विचार भी न करो। कर्त्तव्य के रङ्गमञ्च पर सदैव अपने को विद्या, बल, बुद्धि और तन, मन, वचन से सुयोग्य और परिपूर्ण समझो। संदिग्धता और हिचकिचाहट स्वयं एक असफलता है—पराजय है। कार्य आरम्भ करने के पश्चात् कभी अपनी त्रुटि और न्यूनता की कल्पना न करो और मार्ग में आने वाले विघ्नों की कुछ भी परवाह न करके बाधाओं और संकटों को कुचल कर उन पर से निकल जाओ! आत्म-विश्वास का प्याला सफलता-सुधा से सदैव प्लावित रहता है।

युवकों को कभी यह नहीं सोचना चाहिये कि—"बहुत से वकील, डाक्टर, प्रोफ़ेसर तथा विद्वान् हो गये; और अब इनकी कोई आवश्यकता ही नहीं। कितने ही शिक्षित मारे-मारे फिर रहे हैं, और नौकरियों का अभाव है, ऐसा सोच कर उन्हें ज्ञान-अर्जन से विमुख नहीं होना चाहिये। साबुन, जूते, खिलौने और दवाओं के बहुत से कारखाने खुल गये और अब इस क्षेत्र में प्रगति नहीं हो सकती!"—उन्हें ऐसे मुर्दा विचारों से हतोत्साह नहीं होना चाहिये। यों तो संसार में करोड़ों, अरबों नर-नारी, बाल, युवा वृद्ध भरे हैं। इतने अगणित प्राणियों के होने पर इनके उत्पन्न होने की आवश्यकता ही क्या थी? क्या ये निरर्थक और बोझ स्वरूप ही हैं? नहीं, नहीं; कदापि नहीं! ईश्वर ने उन्हें किसी उद्देश्य

से—किसी महत्तर उद्देश्य से ही बनाया है। विश्व में इनकी भी आवश्यकता है और अत्यन्त आवश्यकता है। वह इनकी सहायता और सेवा की प्रतीक्षा में बैठा है। इनके मुख-मण्डल की ओर आशा भरी दृष्टि से देख रहा है। इन्हें चिन्ता और मातमी के—कापुरुषता के विचारों को त्याग कर कर्म क्षेत्र के लिये कमर कस कर सन्नद्ध हो जाना चाहिये; और अपनी विद्या, बल, बुद्धि एवं अपने अध्यवसाय से विश्व को आगे बढ़ा कर अपनी स्मृति चिरजीवी करनी चाहिये; और जननी-जन्मभूमि के चरणों में महानता का मस्तक झुका देना चाहिये। ये भी वसुन्धरा पर कुछ कर दिखाने के लिये ही उत्पन्न हुए हैं, और कुछ कर दिखाने की शक्ति ईश्वर ने इन्हें प्रदान भी की है। अतः अपने योग्य कार्य में लग कर, देवदूत की भाँति ईश्वर के निर्देश का परिपालन करना चाहिये।

आत्म-विश्वास निराशा और उत्साह हीनता के कीटाणुओं को नष्ट करके निष्प्राण हृदय को प्राण-दान देता है और मनुष्य की सुप्त शक्तियों को जाग्रत करके उसे प्रगति शील बनाता है। आत्म-विश्वास में ऐसी अलौकिक शक्ति है कि यह मनुष्य के पतझड़ के दिनों में भी वसन्त-ऋतु ला सकता है, उसकी शुष्क जीवन-वाटिका को पुनः सुजला, सुफला और शस्य श्यामला बना सकता है। यह उसके वृद्ध विचारों में जोशे जवानी की आँधी लाकर उसकी काया पलट सकता है। यह उसकी निर्जीव नसों में स्फूर्ति और चैतन्यता का इन्जेक्शन देकर उसे पुनः सजीव और शक्ति सम्पन्न कर सकता है। इस सञ्जीवनी शक्ति से उसमें नूतन बल-वीर्य्य और उत्तेजना उत्पन्न होगी जो उसे जीवन-संग्राम का कर्मठ योद्धा बना देगी; बल्कि उसे स्वयं बनने के लिये प्रेरित करेगी—बाध्य करेगी। क्या मनुष्य आत्म-विश्वास से लाभान्वित होकर सफलता के लिये प्रस्थान करेंगे? क्या वे

अपने अभिलषित किसी भी विद्या, व्यवसाय या कला में निपुण होंगे और आत्मोन्नति करके किसी भी प्रकार जनता जनार्दन की सेवा का शुद्ध व्रत लेंगे ? क्या वे किसी सत्कार्य में लग कर अपनी प्रभु-प्रदत्त शक्तियों का सम्मान करेंगे और कर्म की उपासना करके सर्व शक्तिमान ईश्वर का मंगलमय आशीर्वाद प्राप्त करेंगे ?

साहस

"विजय उसी को प्राप्त होती है जो विजयी होने का साहस करता है।"

—पं० जवाहरलाल नेहरू।

साहस वह अनुपम शक्ति है जो हारती हुई सेना को विजय दिलाती है, जो पिछड़े हुए राष्ट्र को आगे बढ़ाती है, जो गिरी हुई जाति को ऊपर उठाती है, जो विपत्ति में भी स्वाभिमानियों का मस्तक ऊँचा रखती है, जो डूबते हुओं को प्राण-दान देती है, जो आपदा सह कर भी—खतरा उठा कर भी—महत् कार्य करने के लिये वीरों को प्रोत्साहित करती है, और जो संसार के आविष्कार, मनोरंजन और उसके ज्ञान की अतुलनीय वृद्धि करती है। इसी के बल पर देश के नवनिहाल तोप-गोलों की गर्जना से भी भयभीत न होकर-मौत से खिलवाड़ करते हुए—जननी-जन्मभूमि की सेवा में संलग्न होते हैं और कफ़न बाँधे घरों से निकल पड़ते हैं। इसी के बल पर दुर्बल भी बलवानों से लोहा लेते हैं, कायर भी निर्भीकता का परिचय देते हैं, और थोड़े से सपूत मिलकर भी एक निहत्थे देश को परतन्त्र होने से बचा लेते हैं। जिस देश के निवासियों में साहस का अभाव होगा वह देश परतन्त्र और पद-दलित होकर रहेगा। उसकी जनवृद्धि से कोई लाभ नहीं। उसकी प्रतिवर्ष बढ़ने वाली जन-संख्या पृथ्वी का भार बढ़ायेगी और देश में गुलामों की वृद्धि करेगी। साहसी पुत्रों की ही माता वास्तविक पुत्रवती है। सिंह-सुअन ही माता का मस्तक ऊँचा कर सकते हैं।

साहस या निर्भीकता शारीरिक शक्ति से भी श्रेष्ठ और बौद्धिक

योग्यता से भी उत्कृष्ट है। इसके द्वारा शक्तिशाली प्राणियों, भयंकर पशुओं और हिंसक जन्तुओं पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है और प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी अनुकूल वातावरण बनायी जा सकती हैं। साहस निडरता और निर्भीकता का पिता है।

कितने ही उच्च विचार, उपयोगी निर्णय, लाभप्रद कार्यक्रम और बहुत सी महत्वाकांक्षाएँ केवल थोड़े से साहस के अभाव में अपूर्ण और अधूरी पड़ी रह जाती हैं। प्रतिदिन मरने वाले अगणित व्यक्तियों में से कितने ही ऐसे पुरुष निकलेंगे जो बड़े और महान् बनने के स्वप्न देखा करते थे, जिन्होंने उन्नति करने का बड़ा और वृहत् कार्य-क्रम तैयार किया था और एक सफल योजना बनायी थी। उनके विचार महान् और लाभप्रद थे। वे समृद्धिशाली बनने, देश-सेवा करने अथवा वीरता के किसी श्रेष्ठकार्य करने की कल्पना में निमग्न थे। उनमें सब गुण थे। वे ठीक-ठीक सोच सकते थे, उलझनों को सुलझा सकते थे और संकटों से मुठभेड़ कर सकते थे। उनका निर्णय पक्का था और उनका लक्ष्य भी उच्च था। परन्तु उनके विचार, उनकी योजनाएँ और उनके उपयोगी निर्णय सब व्यर्थ और अपूर्ण ही पड़े रह गये। साहस के अभाव में वे दूसरों के सामने अपने को अयोग्य समझा करते थे। दूसरों की थोड़ी-सी प्रतिभा के आगे वे शिर झुका देते थे। उनकी थोड़ी सी चमक के आगे वे निस्तेज हो जाते थे। उनके थोड़े से विरोध के आगे वे लक्ष्य-च्युत हो जाया करते थे और भ्रम में पड़ जाया करते थे। विरोधियों के आगे शिर उठाने का उनमें साहस नहीं था। विपत्तियों और बाधाओं से लोहा लेने की उनमें क्षमता नहीं थी। असफलता का हँस-हँस कर स्वागत करने का उनमें साहस नहीं था। वे गिर कर उठना नहीं जानते थे। इसी से संसार से वे असफल होकर ही कब्र या चिता में गये। और संसार उनके

विचारों से, उनकी योजनाओं से और उनके वर्षों के उपयोगी अनुभव से लाभान्वित होने से सर्वथा वञ्चित रह गया !! वर्षों विश्व में रह कर भी वे अपने ज्ञान भण्डार से उसे कुछ भी नहीं दे सके ! वे जीवन में कोई भी महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर सके और असफलता की चादर लपेटे ही उन्होंने विश्व से प्रयाण किया । उनकी इस लम्बी जीवन-यात्रा (दीर्घायु) का कोई भी चरण-चिह्न इस वसुन्धरा पर अवशिष्ट नहीं है । कभी-कभी कोई वृद्ध उनकी अपूर्ण इच्छाओं को स्मरण करके उनकी स्मृति का धूमिल पट हटा देता है और अश्रु-मुक्ताओं का हार पहना कर उन्हें प्रेमाञ्जलि प्रदान करता है !

× × × ×

"विघ्न ! प्रतिकूलता !! अभाव !! आपदा !! असफलता !! दुर्भाग्य !! और········निराशा !!" चिन्तित युवक सोच रहा था । साहस बड़े ध्यान से युवक की बातें सुन रहा था—"विघ्न ! प्रतिकूलता !!······दुर्भाग्य !! और······निराशा !!!"—"ऐं ! निराशा क्यों ?" वह चौंक पड़ा और युवक से बोला—"युवक ! शक्तियों को सम्राट् !! इच्छाओं के अधिपति !! विचारों के बादशाह ! और मेरे (साहस के) प्रभु !!! निराशा—निराशा क्यों मेरे स्वामी ?" युवक से कोई उत्तर न पाकर और उसे पूर्व की भाँति ही विचार-मग्न देखकर उसे सम्बोधित करके—"युवक ! ऐ विश्व के गौरव !! ओ भविष्य के निर्माता !! निराशा क्यों ? क्या तुम्हें पता नहीं कि तुम्हारे अन्तःकरण में अपार शक्तियाँ भरी पड़ी हैं ? तुम्हारे अन्दर शक्तियों का भण्डार है ? तुममें विपत्तियों पर विजय पाने की शक्ति है ? प्रतिकूलता को पराजित करने का पराक्रम है ? कठिनाइयों को जीतने का सामर्थ्य है ? दुर्भाग्य का मस्तक फोड़ कर सौभाग्य को चमत्कृत करने का पौरुष है ? फिर

निराशा, निराशा क्यों मेरे स्वामी ? जब कर्त्तव्य तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, जब अभीष्ट तुम्हें ढूँढ़ रहा है, जब दीन-दुःखी तुम्हारी ओर देख रहे हैं, जब भूखे-नङ्गों का क्रन्दन तुम्हारा आह्वान कर रहा है, जब दुःशासन देश-माता को नग्न किया चाहता है ! ऐसे समय तुम विचार-मग्न क्यों प्रभु !! उठो, अमर पुत्र जागो ! यह समय वंशी टेरने का नहीं, कन्हैया ! सँभालो अपना चक्र-सुदर्शन और······एक अबला की सम्मान रक्षा करो ! देखो, दुष्ट दुर्योधन अब भी द्रौपदी पर दाँत पीस रहा है ! देश के दुलारे उठो, माता तुम्हारी बलैया ले रही है।"

युवक चौंका, उसका ध्यान भङ्ग हुआ और वह बोल उठा—"मेरी नसों में चैतन्यता भरने वाले ! मेरी रगों को स्फूर्ति प्रदान करने वाले !! और मेरे पास विजय श्री का संवाद लाने वाले अपरिचित तुम कौन ?"

"देव ! मैं आपका सेवक "साहस" हूँ। स्वामी की चिन्ता ने मुझे व्यग्र बना दिया। इसी से बिना बुलाये भी मैं सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। विघ्न के लिये क्षमा करें नाथ !" साहस बोला।

युवक को उसकी वाणी ने हर्षित कर दिया। उसके वचनामृत ने युवक के हृदय में आनन्द का स्रोत बहा दिया। युवक उस पर कुपित नहीं हुआ और बोला—

"साहस ! क्या सचमुच मैं विपत्तियों पर विजय पा सकता हूँ ? संकटों को चूर-चूर कर सकता हूँ ? और दुर्भाग्य का वध करके सौभाग्य और सफलता प्राप्त कर सकता हूँ ? बोलो, शीघ्र बोलो साहस ?"

"हाँ, देव ! आप अवश्य विजयी होंगे। सफलता आपका अभिवादन करेगी। राजपुत्र ! माता आपको आशीर्वाद दे रही है।" साहस बोला।

"अच्छा, मै शक्तियों का आह्वान करता हूँ; आन्तरिक शक्तियों की सेना बुलाता हूँ। बिगुल बजाओ। चलो, शीघ्र प्रस्थान करें। समय थोड़ा है।"—साहस ने आदेश दिया।

युवक अपनी आन्तरिक शक्तियों की सेना लेकर बढ़ा। साहस उसे अपने ओजस्वी गीतों से प्रोत्साहित करता रहा। भीषण युद्ध हुआ। युवक और दुर्भाग्य का, उद्देश्य और संकट का। विघ्न, कठिनाई और प्रतिकूल परिस्थिति नामक महारथी दुर्भाग्य के सहायक थे। परन्तु साहस ललकारता गया और युवक उन्हें तलवार के घाट उतारता गया। अन्त में युवक विजयी हुआ। विजय-वाद्य बजने लगे। "राष्ट्र के कर्णधार की जय! देश के जीवन-धन की जय!! विश्व के सेनानी की जय!!!" जनता ने जय-घोष किया और उसके अमरत्व के नारे लगाये। युवक सफलता और सौभाग्य के साथ विजय श्री लेकर लौटा। माता अपने साहसी सिंह को देख कर फूली नहीं समायी।

× × × ×

"सामन्तो! बड़ी विकट समस्या है, औरंगजेब की सेना से—उस प्रचण्ड मुग़ल शक्ति से—लड़ने किसे भेजा जाय? थोड़े से सैनिकों का अध्यक्ष बन कर साम्राज्य-शक्ति से लोहा लेने की किस वीर में क्षमता है? कुमारी प्रभावती का पत्र आया है। उसने अपनी रक्षा के लिये मुझसे निवेदन किया है। गो, विप्र, अबला और धर्म्म की रक्षा करना प्रत्येक क्षत्रिय का कर्त्तव्य है। बहिन प्रभावती की रक्षा करने में कौन सा वीर समर्थ है? क्षत्रिय-कुल भूषण—वह कौन सा नर-शार्दूल है जिसे मैं अध्यक्ष बना कर भेजूँ? क्षत्राणी के लाड़ले तो मरण के भी रण-निमन्त्रण को परण समझ कर स्वीकार कर लेते हैं और अपने प्राणों की बाजी लगा कर बाजी जीत लेते हैं! बोलो, कौन सा नर-पुङ्गव बहिन की रक्षा.

के लिये जाने को उद्यत है ?"—महाराणा राजसिंह ने सभा में सामन्तों से कहा।

औरंगजेब कुमारी प्रभावती के मादक सौन्दर्य पर मुग्ध था और उसका अपहरण करना चाहता था। अपने पिता और भाइयों की असमर्थता समझ कर प्रभावती ने धर्म्म भाई—महाराणा राजसिंह से सतीत्व रक्षा का निवेदन किया था। औरंगजेब की कुभावना के प्रति सबको क्षोभ और घृणा उत्पन्न हुई और प्रभावती के प्रति करुणा और दया। परन्तु अत्याचारी का दमन तो दूर रहा उससे लोहा लेने का भी किसी को साहस नहीं हुआ। सभा में सन्नाटा छाया रहा।

थोड़ी देर में सन्नाटे को चीरती हुई सामन्तों के मध्य से एक आवाज़ आई—"महाराणा मैं मुग़ल सेना से लड़ूँगा। प्रभावती के पाणि-ग्रहण के पूर्व तक मैं औरंगज़ेब को रोके रहूँगा। मेरे जीते-जी मुग़ल उसे स्पर्श तक नहीं कर सकते।" और एक वीर ने आगे बढ़कर तलवार उठा कर शपथ ले ली। सामन्तो ने हर्ष-ध्वनि की और यह साहसी पुरुष सैनिकों का सरदार बना दिया गया। इस मेवाड़ी वीर का नाम सरदार—"चूड़ावत" है।

तीन दिन तक यह वीर मुग़लों के छक्के छुड़ाता रहा। अन्त मे मुग़ल सेना पराजित होकर भागी। जब वीर चूड़ावत औरंगज़ेब को मारने बढ़ा तो उसने शरणागत होकर प्राण-भिक्षा माँगी। चूड़ावत ने प्राण-दान देते समय उससे दो प्रण कराये। प्रथम, वह एक वर्ष तक प्रभावती के लिये मेवाड़ पर आक्रमण न करे। दूसरे, एक बार पुनः वह अपनी सेना चूड़ावत से युद्ध करने भेजे। दूसरी बार भी उसने मुग़ल सेना के दाँत खट्टे कर दिये और अन्त में वीरता से लड़कर साहसी चूड़ावत ने संग्राम में वीर-गति प्राप्त की

× × × ×

महाराज रणजीतसिंह ने सैनिकों को आज्ञा दी—"अटक को पार कर जाओ।" उस समय अटक नदी पूर्ण यौवनावस्था को प्राप्त थी। उसमें उत्ताल तरंगे उठ रही थीं। सैनिकों में से किसी का अटक पार करने का साहस नहीं होता था। सैनिकों को विचार-मग्न देख कर महाराज स्वयं आगे बढ़े और घोड़े को नदी में बढ़ा कर बोले:—

"सभी भूमि गोपाल की, या में अटक कहाँ?
जाके मन में अटक है, सोई अटक रहा॥"

महाराज का साहस देखकर और उनकी ओजस्विनी वाणी सुन कर सैनिकों में उत्साह छा गया और वे अटक में घुस पड़े। देखते ही देखते सैनिकों ने खिलवाड़ में ही अटक को पार कर दिया!

× × × ×

सिंहगढ़ विजय के समय तानाजी अपने पुत्र के ब्याह में लगे हुए थे। घर में आनन्द मनाया जा रहा था। वैवाहिक कृत्य हो रहे थे। स्त्रियाँ माँगलिक गीत गा रही थीं। भाट और चारण विरुदावली सुना रहे थे। बाजे बज रहे थे। घर में बड़ी धूमधाम और चहल पहल थी। ठीक ऐसे ही समय शिवाजी का दूत एक संदेश लाया—"महाराज शिवाजी ने आज सायंकाल तक सिंहगढ़ विजय की प्रतिज्ञा की है। यदि वे इसे पूर्ण न कर सके तो स्वयं उनके जीवन में सन्देह है! छत्रपति ने आपको स्मरण किया है।"

इतना सुनते ही तानाजी—स्वामी-भक्त तानाजी—अपने को रोक न सके। वैवाहिक कार्यों को छोड़कर तुरन्त उन्होंने युद्ध के लिये प्रस्थान कर दिया। इस रण-बाँकुरे को जिसके चेहरे पर युद्ध की रूप-रेखा अङ्कित थी, देख कर कौन कह सकता था कि इसके घर विवाह की धूमधाम होगी और यह उसे त्याग कर रण-प्राङ्गण में जा रहा है!

समर-भूमि में तानाजी बड़ी वीरता से लड़ रहे थे। इनकी तीक्ष्ण तलवार शत्रुओं को मुट्टे की भाँति काट रही थी। जिस तरफ तानाजी का असि-प्रहार होता था, उधर के शत्रु धराशायी होते अथवा प्राण लेकर भाग खड़े होते थे। तानाजी के प्रबल पराक्रम से मुग़ल पराजित हो गये और सिंहगढ़ पर विजय प्राप्त हो गयी। परन्तु इस युद्ध में तानाजी ने वीरगति पायी और सूर्य्य-मण्डल को भेद कर परमधाम प्रयाण किया।

तानाजी के निधन पर शोक प्रकट करते हुए शिवाजी बोले—"सिंहगढ़ तो प्राप्त हुआ, परन्तु मेरा सिंह खो गया!" अपने साहसी सिंह के लिये शिवाजी बहुत व्यग्र हुए। तानाजी के पुत्र का विवाह छत्रपति ने स्वयं अपने हाथों किया।

× × × ×

साहस रहित योग्यता बिना पानी के मोती की तरह है, उससे कुछ नहीं बन पड़ता। साहस मिश्रित थोड़ी सी भी योग्यता कुछ कर सकती है। उसका जीवन में उपयोग हो सकता है। उस मनुष्य की योग्यता से क्या लाभ है जिसका मस्तिष्क विविध विद्याओं का भण्डार तो है परन्तु वह अपने ज्ञान से दूसरों को लाभान्वित नहीं कर सकता, जो दूसरों की साधारण दलीलों से ही निष्प्रभ हो जाता है और जन-समाज को अपने रंग में रंग नहीं सकता, उन पर अपने विचारों की छाप नहीं लगा सकता। वह व्यक्ति सेना-नायक कैसे हो सकता है जो रण-कौशल का पण्डित तो है और अस्त्र-परिचालन में निपुण भी है किन्तु जो शत्रुओं का प्रहार सहने में असमर्थ है। उस वक्ता से क्या लाभ जो एकान्त में घण्टों बोल सकता है, किन्तु सभा में जिसकी बोली बन्द हो जाती है। साहस के अभाव में बहुत से योग्य व्यक्ति अयोग्य प्रमाणित हो जाते हैं और प्रतिष्ठा खो बैठते हैं।

साहस-हीन व्यक्ति कभी जन-समूह का नेतृत्व नहीं कर सकता। जन साधारण द्वारा विरोध होने पर वह अवश्य घबरा जायगा और पथ-भ्रष्ट होकर रहेगा। फिर वह अपनी अमूल्य शक्तियों को—जिनसे उसे जन-वर्ग का हित करना चाहिये—जनता को प्रसन्न रखने और उसकी प्रवृत्ति देखने में लगा देगा और मानव-समाज का कुछ भी कल्याण नहीं कर सकेगा। सबको प्रसन्न रखने का विचार उसे डँवाडोल किये रहेगा और वह कभी आगे नहीं बढ़ सकेगा। अधिक लोक-मत के साथ चलने की बात दूसरी है, परन्तु कभी-कभी यह भी प्राप्त नहीं होता और साहसी पुरुषों को सर्वथा विरोधी वातावरण से होकर जाना पड़ता है। साहस वह महा-शक्ति है जो विश्व पर शासन करती है, विपत्तियों पर विजय दिलाती है और मनुष्य को निर्भीक बनाती है।

यह नहीं समझना चाहिये कि केवल बड़े-बड़े कार्य करने में ही साहस की आवश्यकता होती है। तोप, तलवारों के घमासान संग्राम में निर्भीकता पूर्वक युद्ध करना तथा प्रलयंकर गोले और गोलियों की अग्नि-वर्षा से कुछ भी विचलित न होना साहस का कार्य है। परन्तु झूठ और फरेब से धनवान् न बन कर निर्धन रहना भी एक साहस है। असफल होने पर भी पुनः पुनः प्रयत्न में लगे रहना एक साहस है। सबके समर्थन करते रहने पर भी अनुचित कार्य का विरोध करना एक साहस है। अत्याचार सह कर भी सत्पथ पर डटे रहना एक साहस है। अच्छे वस्त्र पहने लोगों में अपने फटे वस्त्रों के कारण संकुचित न होना एक साहस है।

विष-पान करना जितने साहस का कार्य है उससे कहीं कठिन अपना अपराध स्वीकार करना है। ऐसा साहसी पुरुष आरम्भ में यदि दोषी, अपराधी या पापी भी हो तो वह भविष्य में एक आदर्श पुरुष होकर रहेगा। साहस जैसे राष्ट्रों की स्थिति में परिवर्तन कर

देता है, उसी भाँति यदि मनुष्य अपनी कुप्रवृत्तियों और अपने दोषों के सुधारने में साहस से काम ले तो निश्चय ही उसके जीवन में महान् परिवर्तन हो जायगा और एक दुरात्मा भी महात्मा बन कर रहेगा। विश्व की काया पलट साहसी पुरुषों ने ही की है। उन्होंने ही सामाजिक अत्याचारों और देश की परम्परागत रूढ़ियों को बदला है। शताब्दियों से स्वतन्त्रता खोये हुए राष्ट्रों को चैतन्य किया है और सोते हुए सिंहों को जगाया है।

उत्साह

"कर्त्तव्य पथ पर दृढ़ रहो,
होगी सफलता क्यों नहीं ।"

—श्री मैथिली शरण !

मरणासन्न व्यक्ति को जैसे एक सफल डाक्टर प्राणदान देता है, फाँसी पर चढ़े हुए को जैसे एक कुशल बैरिस्टर मरण-मुक्त करता है, हारती हुई सेना को जैसे एक सफल सेना नायक विजय दिलाता है, पिछड़े हुए राष्ट्र को जैसे एक कर्मवीर आगे बढ़ाता है ; उसी भाँति उत्साह-विपत्ति के घोर अन्धकार में घिरे व्यक्ति के समीप, आपत्ति और संकट की सरिता में डूबते हुए मनुष्य के निकट, बार-बार की असफलता से दुःखित और हताश हुए पुरुष के पास, चारों ओर से निराश्रय होकर घबड़ाये हुए मनुष्य के सम्मुख, अपने वर्तमान जीवन से असन्तुष्ट और भविष्य को अन्धकारपूर्ण समझ कर जर्जर जीवन व्यतीत करते हुए पुरुष के पास—प्रकाश, आशा, आश्रय, आश्वासन और उज्ज्वल भविष्य बनकर आता है तथा निराशा और विफलता से सन्तप्त मृत प्रायः प्राणियों को आशा का अमृत पिला कर पुनर्जीवन प्रदान करता है।

विफलता के विकट अन्धकार में उत्साह सफलता का केवल टिमटिमाता सा प्रकाश लेकर ही नहीं आता बल्कि आशा-दीपों की सुनहली किरणों से भविष्य-पथ को आलोकित और प्रशस्त करते हुए आता है तथा साथ में शानदार विजय में पूर्ण विश्वास रखने का दिव्य-संदेश लेकर उपस्थित होता है।

सम्पूर्ण विघ्न-बाधाओं, संकटों और निरुत्साह कर देने-वाली भयंकर परिस्थितियों के होते हुए भी आगे बढ़ते रहो, सर्वदा अपनी विजय-यात्रा में चलते रहो। समस्त महान् पुरुषों की जटिल समस्याएँ, उनकी उलझी हुई गुत्थियाँ इसी युक्ति द्वारा सुलझी हैं। संकटों और कष्टों को झेलते हुए भी आगे बढ़ना, आपदाओं से घिरे रहने पर भी अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होना ही आश्चर्य-जनक सफलताओं और समस्त विजय-यात्राओं का प्रतिफल है।

कठिन है मंजिल, ठहर न रहबर,
उदू है शमसीर, खम निकाले।
तुझे ये साबित है, कर दिखाना,
क़दम न मोड़ेंगे, खूँ बहा ले॥

छोटे-बड़े, बाल-युवा और वृद्ध सबको यह स्मरण रखना चाहिये—"कभी निराश न होओ, कभी निरुत्साह न होओ, चाहे आकाश में कैसी भी घनघोर घटा छायी हो और तुम्हारा पथ कितना ही अन्धकारपूर्ण क्यों न हो। चाहे कितने भी महान् संकट क्यों न हों और असफलता तुम्हें बार-बार घेरती क्यों न हो, तुम बढ़ते चलो, सर्वदा आगे बढ़ते रहो। कभी निराश न होओ।"

यदि सौभाग्य आज तुम्हें धोखा देकर, छल कर चला गया तो क्या कल—भविष्य में—तुम अपने साथ सत्यता का व्यवहार न करोगे? अपनी भूलों से लाभ नहीं उठाओगे? यदि तुम्हारी सम्पत्ति चली गयी—पंख बाँध कर पक्षी की भाँति उड़ गयी और तुम्हें अकेले ही छोड़ गयी तो क्या तुम उसी के स्मरण में, उसी की स्मृति में सारी आयु रो-रोकर बिता दोगे? क्या तुम फिर से सम्हलने का, फिर से उन्नति करने का प्रयत्न नहीं करोगे? नहीं, उठो; आलस्य त्यागो और फिर से अपनी विजय-यात्रा आरम्भ कर दो। पुनः परिश्रमी और उद्योगी बन कर नवीन धैर्य, नये

शक्ति, नवीन मुसकराहट और नूतन उत्साह से अपने उद्देश्य पर, अपने प्रियतर लक्ष्य पर डट जाओ। अपनी हानि का प्रतिशोध करने का दृढ़ निश्चय कर लो। तुम अवश्य सफल होवोगे। बिछुड़ी हुई भाग्य श्री फिर से लौटेगी। विजय-लक्ष्मी तुम्हारे चरणों पर मस्तक रख कर क्षमा-याचना करेगी और गिड़गिड़ा कर शरणा-भिक्षा माँगेगी। गया हुआ गौरव तुम्हें चँवर डुलायेगा और सफलता स्वयं तुम्हारी विजय-पताका लेकर आगे-आगे चलेगी। उत्साह के अचल राज्य के स्वामी बनो और उत्साह की असीम शक्ति पर प्रभुत्व प्राप्त करो।

मनुष्यो! तुम उदास क्यों होते हो? व्याकुल होकर आँखें क्यों भरते हो, और निराश होकर क्यों प्रयत्न से मुँह मोड़ लेते हो? यदि दुर्भाग्य ने तुम्हें परीक्षा में अनुत्तीर्ण कर दिया, यदि अभाग्य से तुम अपने प्रयत्न में असफल हुए, दुर्दिन ने तुम्हारे चमकते व्यापार को नष्ट कर दिया, तुम किसी प्रतियोगिता में पिछड़ गये, विफलता तुम्हें घेरती रहती है और यदि प्रतिकूलता तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ती तो भी तुम निराश न होओ। हतोत्साह होकर हाथ बाँधे बैठे न रहो और प्रयत्न करने से कदापि विमुख न रहो। शोक और चिन्ता से जीवन को और भी दुःखमय न बना डालो। उठो, धैर्य्य धारण करो और अपनी सारी शक्तियाँ लगा कर पहले से भी अधिक उत्साह और तल्लीनता से अपने कार्य में डट जाओ। तुम अवश्य सफल होओगे। अकर्मण्यता रूपी कायरता त्यागो। प्रयत्न की अन्तिम चोट विफल नहीं हो सकती। वह सफलता का सिंह-द्वार अवश्य खोल कर रहेगी।

विफल होकर पुनः कार्य न करने वाला, फिर से सफलता का स्वप्न न देखने वाला व्यक्ति उस कायर के सदृश निन्दनीय है जो अपनी हार में ही सन्तुष्ट हो रहता है, जिसमें शत्रुओं से बदला

लेने का साहस नहीं, जिसके हृदय में प्रतिशोध की अग्नि प्रज्ज्वलित नहीं होती और जिसकी रगों में बदला लेने का उष्ण-रक्त प्रवाहित नहीं होता। जिसमें कर्त्तव्य-पालन की क्षमता नहीं, हानि का मूल्य चुकाने की शक्ति नहीं, जिसमें विजय-माल पहनने की योग्यता नहीं और जो हार को हार मान कर सन्तोष धारण कर लेता है और जो कायरता से कलंकित होकर प्रतिष्ठा खो बैठता है; वह जीते जी भी मृतक तुल्य है।

विफल होने पर भी प्रयत्नशील उत्साही व्यक्ति उस राज्य-च्युत सम्राट् के सदृश है जो राज्य के चले जाने पर फिर से अपना साम्राज्य स्थापित करने का मनोरम स्वप्न देखा करता है, जो पराजित हो-होकर भी आक्रमण से विमुख नहीं होता और जो विफलता से खिन्न होकर अपनी सफलता के आशादीपों को बुझाता नहीं, जो बादलों की ओट में लक्ष्य को घिरा देख कर भी अपने भविष्य को अन्धकार मय नहीं समझता, और जो एक दिन अपने स्थापित समृद्धिशाली साम्राज्य की छत्रच्छाया में अपने आशा-दीपों की शुभ्र-ज्योति में अपनी उद्देश्य-प्रियता की सत्यता को उज्ज्वल करके प्रमाणित करता है।

यदि तुम अपने कार्य में बार-बार असफल होते हो तब भी निराशा की कोई बात नहीं। किन्तु उत्साह-हीन होकर कार्य को छोड़ कर बैठ रहना अवश्य ही शोक और लज्जा की बात है। असफल होने पर तो तुम्हें और भी अधिक उत्साह से और सारी शक्तियाँ लगा कर अपने कार्य में डट जाना चाहिये। क्या तुम नहीं जानते कि बरसात की उमड़ी नदियों के प्रखर प्रवाह से बार-बार पीछे हट कर भी साहसी भौंरे प्रवाह के प्रतिकूल ऊपर चढ़ना चाहते हैं? क्या असफल होकर बिना ऊपर चढ़े ही वे वापस लौट जाते हैं? क्या तुम्हें ज्ञात नहीं कि मर्माहत सर्प बार-बार चोटें

करता है और वार खाली जाने पर शीघ्रता और सावधानी से-दूने उत्साह से-फण प्रहार करता है ! क्या अब भी तुम असफलता से घबरा कर कार्य नहीं करोगे ? क्या तुम्हें पता नहीं कि हारने पर जुआड़ी का उत्साह और भी बढ़ता जाता है ? जुआड़ी उत्साह का वह धनी है जो हार को कभी सहन नहीं कर सकता। हारने पर तो उसे भूख, प्यास और नींद सभी हराम हो जाते हैं। जीत के लिये वह अपने समस्त सुख-चैन एवं विश्राम तक की आहुति दे सकता है। अपने उद्देश्य के पीछे वह मतवाला हो उठता है और वह बाजी जीतने के लिये अपने को भी बाजी पर लगा देता है। हारा हुआ जुआड़ी उत्साह का विश्व में अद्वितीय उदाहरण है। परन्तु संसार उसे घृणा की दृष्टि से क्यों देखता है ? इसलिये कि वह "उत्साह" जैसी अलौकिक शक्ति का दुरुपयोग करता है। तुम उत्साह का—ईश्वर प्रदत्त इस दिव्य शक्ति का—सदुपयोग करके, उसे सत्कार्य्यों में लगा कर अधिक-से-अधिक उन्नति कर सकते हो, निहाल हो सकते हो और सफलता के लिये ईश्वर का आशीर्वाद और वरदान प्राप्त कर सकते हो। विफल होकर कार्य को छोड़ न दो। अकर्मण्य बन कर और कर्त्तव्य से विमुख होकर कायर न बनो। असफल होकर भी उद्देश्य के पीछे पड़े रहो। निराश होकर उसे छोड़ न दो बल्कि दूने-चौगुने उत्साह से उसके पीछे लग जाओ और "*Do or die*"—"करो या मरो" का दृढ़ निश्चय करके उसे सम्पादित करके ही विश्राम लो। यदि तुममें असफल होकर भी कार्य करने की लगन है—यदि गिर कर फिर उठने का उत्साह है तो तुम अवश्य विजयी होवोगे। सफलता तुम्हारा पैर चूमेगी। विजय तुम्हें ढूँढ़ती फिरेगी।

संसार में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं हुआ जो सदैव सब कार्यों में सफल ही होता रहा हो और जो कभी भी असफल न हुआ

हो। संसार के अधिकतर उन्नतिशील मनुष्यों ने आपदा और असफलता की पगडण्डियों से ही अपनी यात्रा आरम्भ की है, उन्होंने विघ्नों और पराजय के मध्य से ही अपना मार्ग बनाया है। परन्तु अपने अभीष्ट को प्राप्त किये बिना वे पीछे कभी भी नहीं लौटे। उन्नति करके महान् होने वाले समस्त व्यक्ति विफलता के विषय में यही आदर्श रखते आये हैं :—

"गिरते हैं शह सवार ही,
मैदाने जंग में।
वह तिफ्ल क्या गिरेंगे,
जो घुटनों के बल चलें !"

"कुशल अश्वारोही—बहादुर योद्धा-ही तो संग्राम में डटते हैं और रण-प्राङ्गण में धराशायी भी वीर बाँके ही तो होते हैं, उन्नति दुर्ग पर चढ़ने वाले मर्दाने ही तो भू-लुण्ठित भी होते हैं—असफल भी होते हैं। कायर, कपूत और बुज़दिल जो युद्ध के नाम से ही भागते हैं—कर्त्तव्य के नाम से ही काँपते हैं—वह क्या असफल होंगे ? घुटनों के सहारे भूमि पर चलने वाले नन्हें शिशु गिरेंगे भी क्या ?" इसी अमूल्य सिद्धान्त को लेकर उन्होंने अपनी विकट यात्रा आरम्भ की थी और अनेक असफलताओं तथा कितनी ही विफलताओं से युद्ध करते हुए अन्त में एक दिन सफलता की चोटी पर अपनी विजय पताका फहरा दी।

विफल होने पर भी प्रयत्न में लगे रहने वाला उत्साही मनुष्य उस सैनिक के सदृश है जो विजयी नहीं हुआ परन्तु जिस पर सबको गर्व है कि वह लड़ते-लड़ते मरा है, मरते-मरते भी जिसने देश का झण्डा झुकने नहीं दिया—पराजय के आगे शीस नहीं झुकाया—जिसने अपना स्वाभिमान नहीं खोया और जिसने उज्ज्वल मुख से ही संसार से अन्तिम विदा ली। उसकी प्रशंसा

कौन नहीं करेगा ? कौन ऐसे नर-पुङ्गव को सर्व प्रथम श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने को उत्सुक न होगा ?

असफलता से डरना कायरों का काम है। असफल होकर भी प्रयत्न में लगे रहना असफलता से युद्ध करना है। किन्तु विफलता से घबड़ाकर कार्य छोड़ देना पराजय के आगे नत-मस्तक होना है। असफलता से पछाड़े जाने पर तो मनुष्य को विफलता का शत्रु ही हो जाना चाहिये और उसका विनाश करके सफल मनोरथ होना चाहिये।

"यह कोई गौरव की बात नहीं है कि हमारा कभी पतन ही नहीं हुआ। जितनी बार पतन हो, उतनी बार उठ सकने में ही गौरव है।"

—गोल्डस्मिथ

असफलता से ऊब कर आत्म-विनाश पर तुले व्यक्ति को प्राण-दान देने की शक्ति उत्साह में ही है। सर्वस्व खोये हुए और संकटों से दबे व्यक्ति को फिर से सफल और सुखी हो सकने का आश्वासन देने वाला केवल उत्साह ही है। विफलता पर विजय प्राप्त करने का पराक्रम उत्साह में ही है। निराशा को मिट्टी में मिलाने का पौरुष उत्साह में ही है। अवनति का मुँह काला करने का साहस उत्साह में ही है। उदासीनता और अकर्मण्यता को प्रादुर्भाव होने से पूर्व ही, गर्भावस्था में ही; नष्ट करने का जादू उत्साह में ही है। असफल व्यक्तियों को प्रोत्साहित करने और सफलता के लिये उन्मत्त करने वाला अमृत का प्याला उत्साह ही है।

उत्साही पुरुष मार्ग में पड़ने वाली कठिनाइयों की कुछ भी परवाह नहीं करते। उत्साही युवक कभी भी अपना भविष्य अन्धकारपूर्ण नहीं देखता। उत्साही पुतले मौत की कुछ भी परवाह नहीं करते और सदैव संकटों का आह्वान करते रहते हैं। उन्हें

जीवन से अधिक सफलता प्यारी लगती है। उसकी प्राप्ति के लिये वे बड़े-से-बड़े खतरे में भी अपने को सहर्ष डाल देते हैं। उत्साही पुरुष में अद्भुत शक्ति भरी रहती है। उसकी मुसकराहट के आगे दुःखों का पर्वत टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। उसकी चितवन निरुत्साह व्यक्तियों पर उत्साह की किरण फेंकती है और उसके प्रकाश में उनका अन्धेरा पथ भी ज्योतिर्मय हो उठता है। उत्साहपूर्ण निर्धन व्यक्ति वह कार्य कर सकता है जो एक धनवान् की शक्ति के बाहर है। उत्साह युक्त साधारण व्यक्ति वह महान् कार्य कर दिखाते हैं जिसकी कल्पना बुद्धिमान भी नहीं कर सकते। दो-एक उत्साही युवकों की शक्ति के आगे एक विशाल सेना विफल हो जाती है। उत्साह वह महा शक्ति है जिसके बिना धन-बल, विद्या-बल और शारीरिक-बल कुछ भी नहीं कर सकते। यह वह महा-प्राण है जिसके अभाव में जीवित मनुष्य भी निर्जीव सा बना रहता है। यह वह काया-कल्प है जो पके बालों वाले, झुर्रियाँ पड़े हुए और ज्योति-विहीन वृद्ध को भी नव युवकों की प्रतियोगिता में सफल कराता है। उत्साह वृद्धता का आभास भी नहीं होने देता। एक उत्साही वृद्ध वह कमाल कर सकता है जिसे सहस्रों नवयुवक नहीं कर सकते। उत्साह से भरे बच्चे वह कार्य कर दिखाते हैं जो एक बड़े मनुष्य के लिये कठिनतर प्रतीत होता है। उत्साही व्यक्ति सदैव अपने उद्देश्य की धुन में मस्त बना रहता है। उसकी मस्ती कभी टूटती नहीं, अपितु तभी हल्की होती है जब वह अपने प्रयत्न में सफल होता है। उत्साही मनुष्य कराहते-कराहते प्राण-त्याग नहीं करता बल्कि मस्ती में ही, अपने लक्ष्य की धुन में ही पञ्च-तत्व में मिल जाता है।

उत्साह वह क्रोधित सिंह है जो असफलता को फाड़ खाता है, वह विषैला विषधर है जो विफलता को डस लेता है, वह भयंकर

यम है जो निराशा और उदासीनता पर वज्र-प्रहार करता है, वह महारथी है जो विरुद्धता पर विजय प्राप्त करता है, वह कठोर शासक है जो अवनति को लूली-लँगड़ी करके निर्वासित करता है, वह स्वाभिमानी है जो हीनावस्था में भी पराजय के आगे नत-मस्तक नहीं होता, वह हठी है जो पतन को पद-दलित करके, उसे धूल में मिला कर अपना प्रतिशोध लेता है। वह सुदृढ़ दुर्ग है जिसकी फौलादी दीवारों पर निर्धनता, निर्बलता, निराश्रयता और प्रतिकूलता के प्रहारों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता, वह प्रकाश-स्तम्भ (*Light-house*) है जो मनुष्य के अन्धेरे पथ को ज्योतिर्मय करता है, वह महा-प्राण है जिसके अभाव से जीवित मनुष्य भी निर्जीव सा बना रहता है, वह भाग्यशाली सम्राट् है सफलता स्वयं जिसका अभिषेक करती है—जिसके राजत्व-काल में सदैव प्रोत्साहन की पीयूष-वर्षा होती रहती है और जहाँ प्रत्येक घर में विजयोत्सव का आनन्द छाया रहता है।

महान् बनने की कल्पना करने वालो! ऐ भविष्य में उन्नति करने के इच्छुको! तुम इतने शीघ्र अधीर क्यों हो उठते हो? थोड़ा सा विघ्न देखते ही घबरा क्यों जाते हो और समझ बैठते हो कि तुम्हारा अभीष्ट कभी पूर्ण नहीं होगा? तुम विद्वान् बनना चाहते हो या प्रख्यात लेखक, प्रभावशाली वक्ता होना चाहते हो, या अमर चित्रकार, कुशल व्यापारी होने के इच्छुक हो या सफल डाक्टर, अपूर्व आविष्कारक होने के उत्कण्ठित हो या विश्व विजयी योद्धा, तुम जो कुछ भी बनना चाहते हो वह बन सकते हो। तुम अवश्य वह हो सकते हो जो होने की तुम्हारी हार्दिक इच्छा है। अवश्य वह बन सकते हो जो बनने की तुम्हारी उत्कट अभिलाषा (*Earnest-desire*) है। जिसमें तुम्हारे साथियों को सन्देह है तथा अन्य लोग भी जिसे सोचते हैं कि—"यह नहीं हो सकता—

कदापि नहीं हो सकता।" परन्तु यदि तुम्हें उसमें बिल्कुल सन्देह नहीं है और तुम्हारी अन्तरात्मा जिसे कहती है कि तुम इसे कर सकते हो, तो सन्देह-भरे मित्रों के बीच और "नहीं हो सकता" कहने वाली जनता के कोलाहल के मध्य तुम डंके की चोट घोषणा कर दो—"यह होकर रहेगा—अवश्य होकर ही रहेगा; और मुझे इसकी सफलता में दृढ़ विश्वास है!" और अपने शब्दों की दृढ़ता से जन-रव को बन्द कर दो। फिर सारी शक्तियाँ उसे सफल करने में लगा दो और अपने मित्रों का भ्रम और जनता का सन्देह न मिटा दो। कोई कारण नहीं कि उत्साह तुम्हें लक्ष्य तक पहुँचा सके।

यदि तुम अपनी अन्तरात्मा की पुकार के पीछे चलते हो; यदि अपनी उत्कट इच्छा और सच्ची अभिलाषा को पूर्ण करना चाहते हो तो संसार की कोई शक्ति तुम्हें पथ-भ्रष्ट नहीं कर सकती, विश्व की कोई बाधा तुम्हें लक्ष्य-च्युत नहीं कर सकती। यदि तुम अपने निर्णय पर अटल और अचल बने हो, यदि तुम अपने अभीष्ट सिद्धि का पूरा-पूरा मूल्य चुकाने को तैयार हो, यदि तुम अपने उद्देश्य की सफलता के लिये अपने सारे सुखों को बलिदान कर सकते हो, यदि तुम समस्त कष्टों को सहन करके भी सफलता का आह्वान कर सकते हो, यदि सफलता के लिये अपने सुख-चैन की आहुति दे सकते हो तो जाओ—निर्भीक रहो, सफलता तुम्हारी दासी होकर रहेगी। परन्तु सफलता के विषय में तुम्हें उतावलेपन से काम नहीं लेना चाहिये। उद्देश्य-सिद्धि में विलम्ब होते देख कर व्यग्र नहीं होना चाहिये और कार्य छोड़कर बैठ नहीं जाना चाहिये।

जिस महान् व्यक्ति को तुमने अपना पथ-प्रदर्शक बनाया है, जो श्रेष्ठ व्यक्ति तुम्हारा आदर्श है और जिस उन्नतिशील व्यक्ति के

सदृश तुम स्वयं भी होना चाहते हो, थोड़ा उसकी दशा पर विचार तो करो। तुम देखोगे—वह एक ही दिन में ऐसा नहीं हो गया है। उसने अपने अभीष्ट के पीछे वर्षों व्यतीत किये हैं; अपने लक्ष्य की सिद्धि में सालों लगाये हैं और बड़े धैर्य्य से अपने उद्देश्य की प्रतीक्षा की है।

आज का विद्वान् किसी समय मूर्ख था। आज का लेखक किसी समय एक पत्र में कई अशुद्धियाँ करता था। आज के चित्रकार को एक दिन सीधी रेखा भी खींचने नहीं आती थी। आज का वक्ता किसी दिन शुद्ध-शुद्ध बोलने में भी असमर्थ था। आज का व्यापारी कभी टुटपुंजिया दूकानदार था। आज का बैरिस्टर एक दिन क़ानून के 'क, ख, ग' से भी अनभिज्ञ था। आज के डाक्टर को पहले रोगों का नाम भी ज्ञात नहीं था। आज का नेता किसी समय अप्रसिद्ध और अज्ञात व्यक्ति था। परन्तु इन सबने जी लगाकर और सच्ची लगन से काम किया। इन्हें विघ्नों ने घेरा, बाधाओं ने रोका, और प्रलोभन ने अपनी ओर आकृष्ट किया, परन्तु ये पर्वत की भाँति अपने लक्ष्य पर सदैव अटल और अचल रहे। मार्ग में पड़ने वाली विपत्तियों को इन्होंने विनोद समझा, कार्य के मध्य में आने वाली असफलताओं को एक खिलवाड़ जाना और उत्साहपूर्वक अपने कार्य में लगे रहे।

विद्वान् बनने वाला व्यक्ति प्रतिदिन अपना पाठ कण्ठस्थ करता, लेखक अपने विचारों को केन्द्रित करके लिपि-बद्ध करता, चित्रकार रबड़ से मिटा-मिटा कर अपने चित्र बनाता, वक्ता एकान्त अथवा मित्रों के सम्पर्क में वक्तृत्व-कला का अभ्यास करता, व्यवसायी व्यापार सम्बन्धी बातों की विवेचना करता, बैरिस्टर क़ानून की पुस्तकें पढ़ता, डाक्टर रोगों के लक्षणों का अध्ययन तथा औषधियों के प्रयोग की विवेचना करता और नेता बनने वाला व्यक्ति प्रतिदिन जन-हित के कार्यों में व्यस्त रहता था।

उन दिनों कोई इन्हें जानता भी न था और ये धूल मिश्रित हीरे की भाँति बिखरे पड़े थे। उस समय उत्साह ही इनका प्राण था और वही इनकी सम्पत्ति थी। वही इन्हें असफल होने पर भी अपने कार्य में लगे रहने की शिक्षा देता था और विघ्नों पर विजय पाने का बल देता था। उत्साह ने ही संसार के सारे व्यक्तियों को जीवन-दान दिया है—उन्हें निराश होने से बचाया है। उसी ने छोटों को बड़ा बनाया, और अप्रसिद्ध व्यक्तियों को प्रख्यात किया है। उत्साह ने ही निर्धनता में भी अशिक्षित को विद्वान् बनाया और कष्ट सहने वाले कंगाल को धनवान् किया और धूल में पड़े हुए लोगों को प्रतिष्ठा के उच्च शिखर पर चढ़ाया है।

× × × ×

डिसरेली दुर्भाग्य को साथ लेकर उत्पन्न हुआ था। वह निर्धन, निराश्रय और असहाय था। परन्तु उसमें उत्साह की चमक थी। स्वाभिमान उसका भूषण था। वह कहा करता था—"मैं बन्दी नहीं हूँ। किसी का दास नहीं हूँ। अपनी शक्ति से विघ्नों को चूर-चूर करने की शक्ति मुझमें भरी पड़ी है।" भाग्यहीन होते हुए भी महान् बनने की उसकी उत्कट इच्छा थी। वह इङ्गलैण्ड का प्रधान मन्त्री होना चाहता था। एक अशिक्षित और अभागे लड़के का प्रधान-मन्त्री बनने का यह स्वप्न कितना मूर्खतापूर्ण था? कैसी कठिन और आशा से परे की बात थी उसकी? जब कि उसकी सहायता के सारे द्वार बन्द थे! और जब कि उसे उन्नति करने के कोई भी साधन उपलब्ध नहीं थे!! उसका हाथ पकड़ने को केवल हजारों वर्ष पूर्व का एक उदाहरण था। बस वही उसका सहायक और उसकी सफलता का सोपान था। वही उसका लक्ष्य भी था। उसी के सहारे डिसरेली का भविष्य घिरे बादलों में झिल-मिल-झिलमिल कर रहा था और कभी-कभी विद्युत् के प्रकाश में

आशा उसे देख लिया करती थी—सुदूर आकाश से। केवल यह उदाहरण ही उसे प्रोत्साहित करता था और सारे अभावों के होते हुए भी उसे सफल होने का आश्वासन देता था। "जब-'जोसफ़'-एक निर्धन यहूदी-चार हजार वर्षों पूर्व उन्नति करके मिश्र का प्रधान मन्त्री (Prime-minister) हो गया तब वह क्यों नहीं हो सकता? जो कार्य एक व्यक्ति ने कर दिखाया उसे दूसरा भी कर सकता है। जो बातें एक बार हो चुकी हैं वे फिर से हो सकती हैं और बार-बार हो सकती हैं।" उसके निराश जीवन को यही भावना सान्त्वना देती थी और उसे प्रोत्साहित कर रही थी। यही उदाहरण उसकी आशा को सुनहली बनाता था और उसके भी सफल हो सकने की सत्यता का साक्षी था।

अपनी सारी शक्तियाँ लगाकर डिसरेली परिश्रम में लीन हो गया। असफलता की बातें वह सोचता तक न था। कष्टों और कठिनाइयों की उसे तनिक भी परवाह न थी। उसके साथी उसकी बातों पर हँस पड़ते थे। लोग उसका मजाक उड़ाया करते थे और ताली बजाकर हँसा करते थे। वह सबके विनोद की वस्तु बन गया था। परन्तु उसे इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं थी। उसने लोगों के विनोद पर कान ही नहीं दिया। उनके विरोध का विचार भी नहीं किया, वह निर्भीकता से उनसे कहा करता था—"अभी चाहे हँस लो और मेरा उपहास कर लो, परन्तु समय आयेगा जब तुम हँसना छोड़ दोगे और मेरी बातें सुनोगे!"

उत्साही डिसरेली परिश्रम और अध्यवसाय में लगा रहा और थोड़ा-थोड़ा अपने स्थान से ऊपर उठने लगा। वह निम्न श्रेणी से ऊपर उठा, मध्यम वर्ग से आगे बढ़ा और ऊँची श्रेणी वालों में सम्मिलित हो गया। धीरे-धीरे वह राजनीतिक और सामाजिक समस्त शक्तियों का स्वामी बन बैठा। पार्लियामेण्ट में पहुँचने पर

भी लोग उसकी हँसी उड़ाया करते थे। परन्तु वह कभी निरुत्साह नहीं हुआ।

कार्य कठिन होने पर भी अन्त में उत्साह विजयी हुआ। लक्ष्य-वेध ठीक हुआ और उद्देश्य पूर्ण हुआ। आश्रय-हीन अभागा डिसरेली इङ्गलैण्ड का प्रधान-मन्त्री होकर रहा। लगभग पच्चीस वर्षों तक वह अपने देश का भाग्य-विधाता बना रहा। उत्साह ने एक अभागे को उच्चतर लक्ष्य वेध में सफल किया और एक निराश्रय को प्रतिष्ठा के सर्वोच्च स्थान पर बैठाया।

इसकी कोई चिन्ता नहीं यदि तुम्हारा कार्य कठिन है और तुम्हारे साधन अल्प हैं। इसका कोई विचार नहीं यदि तुम्हें विघ्न घेर रहे हैं और इसकी कुछ भी परवाह नहीं यदि असफलता तुम्हें नहीं छोड़ती। इतने पर भी चिन्ता की कोई बात नहीं। परन्तु यदि तुमने अपना उत्साह खो दिया तो तुमने अपना सर्वस्व गँवा दिया और अब तुम्हारे उद्धार की कोई आशा शेष नहीं है, क्योंकि पतन से पीड़ित हुए को गले लगाने की सहृदयता उत्साह में ही है। गिरे हुए को उठाने की शक्ति उत्साह में ही है। पिछड़े हुए को आगे बढ़ाने की योग्यता उत्साह में ही है। रोते हुए को हँसाने की कुशलता उत्साह में ही है। विफलता को सफलता में परिणत करने का कमाल उत्साह में ही है। हारी हुई बाजी जिताने का कौशल उत्साह में ही है। विफलता से पछाड़े गये व्यक्ति की पीठ ठोंकने का साहस उत्साह में ही है।

उत्साह लक्ष्मण की वह रेखा है जिसके भीतर निराशा और अवनति के असुर प्रवेश नहीं कर सकते, परन्तु जिसे लाँघने पर सीता के सतीत्व की भाँति मनुष्य के 'प्रण और प्राण' दोनों संकट-ग्रस्त हो जाते हैं। फिर सफलता रूपी वैदेही का अकर्मण्यता के रावण से छुड़ाना राम-रावण युद्ध सा दुष्कर हो जाता है।

उत्साह एक देवदूत है जो मनुष्यों की अधोगति देखकर दुखित हो उठता है, जिसकी आँखें किसी का पतन नहीं देख सकती, जिसके कान किसी की करुण-कहानी नहीं सुन सकते और जिसका हृदय दुखियों के आर्त्तनाद से द्रवित हो उठता है और जो उन्हें उन्नत दशा में लख कर ही हर्षित होता है। उत्साह का विशाल हृदय वात्सल्य-प्रेम से सदैव प्लावित रहता है। यह पिता की भाँति आपत्तियों से रक्षा करता है और माता के सदृश चोट लगे हुए और धूल धूसरित बच्चों को गोद में उठा लेता है।

उत्साह एक ईश्वरीय-सन्देश (आकाश-वाणी) है जो प्रतिपल आगे बढ़ने का आदेश देता रहता है। यह उन्नतिशील व्यक्तियों को अग्रगामी बनने और उन्नति की दौड़ में पिछड़े व्यक्तियों को तीव्र बनने का शुभ सन्देश सुनाता है :—

"जीवन-रथ को आगे हाँको,
प्रतियोगी से बढ़े चलो।
अरे सिपाही, पीछे वालो,
तुम भी बढ़ कर चले चलो॥

शीघ्र-निर्णय

प्रतिष्ठा के जितने भी श्रेष्ठ स्थान हैं, सर्वोच्च सम्मान के जितने भी अवसर हैं, अनेक व्यक्तियों का भाग्य बनाने और बिगाड़ने के जितने भी कार्य हैं, जन-समूह का नेतृत्व करने के जितने भी श्रद्धास्पद पद हैं, सब उत्तरदायित्व से परिपूर्ण हैं। उत्तरदायित्व रत्न-अलंकृत स्वर्ण-मुकुट नहीं; यह काँटों का ताज है; जिसे गर्वीले योद्धा नहीं, "शीघ्र-निर्णय" कर सकने वाले महारथी ही पहन सकते हैं।

"लल्लो!—री बेटी लल्लो!! रसोई में कितनी देर है?"

"बाबू दी! लथोई एकदम टैयाल है। उाने ट···लि···ये! अम्मा बुलाती है।"

"री बेटी! क्या-क्या बन गया?"

"दाल, भात, लोटी, थाग, थब बन द···या। ट···लि···ये!"

"बेटी! अपनी अम्मा से कह दे—मेरे लिये आलू की पूड़ी और दाल का हलवा कर दें।"

जाड़े के दिन थे। रात्रि के सात बज चुके थे। सारी रसोई बन जाने पर कञ्चनमल ने पूड़ी, हलवे की फरमाइश की। दिन भर के परिश्रम से श्रान्त बेचारी गृहिणी पुनः पतिदेव के आदेश-पालन में लग गयी। आलू उबाले, दाल पीसी, आटा गूँधा, हलवा बनाया। अब पूड़ी बना रही थी। सवा आठ हो रहे थे। इतने में नीचे से पुनः आवाज़ आयी:—

"लल्लो!—ओ लल्लो रानी!! रसोई में कितनी देर है?"

"बाबू दी! थब तुथ बन द···या। अम्मा पूली बेल लही है।"

"रानी बेटी! अपनी अम्मा से कह दे—बाबू जी लखनऊ जायेंगे। बहुत जरूरी काम है। वे खायेंगे नहीं। सामान ठीक कर दें।"

स्त्री ने ऊपर बुलाया। कहा—"खा तो लो, इतने मन से रसोईं बनवायी है। इतना घन लगा है! सचमुच हलवा बहुत बढ़िया बना है! अभी गरम-गरम पूड़ी उतारे देती हूँ···!!"

"खा तो लेता, किन्तु ट्रेन का समय हो गया है; जल्दी करो!"

"खा लो, न! ऐसी क्या जल्दी है? कल ही चले जाना!"

"तुम जानती नहीं; काम-धन्धे की बातें हैं; देर करने से ठीक नहीं होता।"

स्त्री ने बहुत आग्रह किया। पर वे न माने। जल्दी-जल्दी यात्रा का समान जुटाया गया। जल्दी में दस आने की अपेक्षा सवा रुपये में टाँगा मिला! स्टेशन पहुँचे। टिकट कटाया। गाड़ी लेट थी। साढ़े नव में गाड़ी आयी। ठण्डक तेज थी। घर पर आवश्यक काम भी रह गया था। कञ्चनमल कुछ सोच रहे थे······।

घर की ओर।

ठंडी रात सायँ-सायँ कर रही थी। कभी-कभी कुत्ते भूँक कर रजनी की नीरवता भंग कर रहे थे। सहसा किसी ने द्वार खटखटा कर पुकारा—"लल्लो!—ओ लल्लो रानी!! किवाड़ खोल! लल्लो की माता की आँख लगी ही थी। वह चौंक पड़ी—यह क्या? यह तो उनकी सी आवाज़ है। क्या ट्रेन छूट गयी? पर उन्हें गये तो विलम्ब हुआ! तब तक पुनः निश्चयात्मक उन्हीं की आवाज़ आयी। द्वार खोले। देखा वही हैं। गाड़ी आने पर कञ्चनमल का विचार बदल गया। उन्होंने दूसरे दिन जाने का निश्चय कर लिया। ख़रीदा हुआ टिकट कम दाम में वापस कर दिया गया।

आपके सामने निर्णय-शक्ति के आभाव का एक मनोरंजक और महत्वपूर्ण उदाहरण है। ऐसे विवेक विहीन चञ्चल विचारों से कार्य अधूरा और अपरिपक्व होता है। इससे कार्य तो होता ही नहीं; क्षति भले ही होती है। कार्य अपूर्ण और अव्यवस्थित होता है। दो बार रसोईं बनवायी गयी, खा भी न सके। यात्रा की हड़बड़ाहट में सारे घर को सर पर उठा लिया। ताँगे वाले को दूने पैसे दिये। खरीदा हुआ टिकट घाटा सहकर वापस किया गया। लौट कर आने में फिर पैसों का खून हुआ। समय और शक्ति का अपव्यय हुआ। मस्तिष्क को व्यग्रता हुई। फिर भी कार्य न हुआ। अपने निर्णय पर स्थिर न रहने वाले, कभी कुछ और कभी कुछ सोचने वाले "ढुल-मुल" स्वभाव के मनुष्य निश्चय कभी कुछ नहीं कर पाते।

मनुष्य अपने को वर्तमान से परिष्कृत परिस्थिति में देखने को सदैव ही उत्सुक रहता है। कदाचित् वह हो भी पाता। किन्तु ये द्विविधामय विचार उसे रोक लेते हैं और उसका जीवन-रथ आगे नहीं बढ़ पाता। यह संशयात्मक प्रवृत्ति मनुष्य को जीवन-संघर्ष में कभी आगे नहीं बढ़ने देती। इससे मनुष्य भीरु बनता है और किसी भी उत्तरदायित्व को सँभालने में आगा पीछा करता है। यह कर्त्तव्य-पलायन, योग्य होने पर भी मनुष्य की अयोग्यता प्रकट करता है और कर्त्तव्य के युद्ध-स्थल पर पीठ दिखाने से उसके व्यक्तित्व पर संदिग्धता, अपमान और घृणा की एक अवांछनीय छाप लगती है। क्षण-क्षण में विचार परिवर्तन करने से मनुष्य के कथन पर विश्वास करना कठिन हो जाता है। उसके सम्पर्क में आने वाला कोई भी व्यक्ति उसका निर्णय न जान सकेगा और स्वयं उसे भी ज्ञात न होगा कि वह क्या करना चाहता है निर्णय-क्षमता के अभाव में मनुष्य केवल सफलता और लाभ से

ही वञ्चित नहीं होता; कभी-कभी वह अपनी भीषण-क्षति भी कर बैठता है। कभी तो उसका पतन इतना गहरा होता है कि उसका पुनरुद्धार दुष्कर हो जाता है।

"ठण्डक विशेष है, टहलने जायँ या नहीं? खेल अच्छा है, सिनेमा देख लें या व्यर्थ पैसों का खून होगा—रहने दें?" प्रति दिन के व्यवहार में आने वाली ऐसी ऐसी छोटी-छोटी बातें देखने में यद्यपि साधारण प्रतीत होती हैं; किन्तु अप्रकट रूप से जीवन पर इनका असाधारण प्रभाव पड़ता है। ये नन्हीं-नन्हीं बातें नन्हीं-नन्हीं चिनगारी सा महत्व रखती हैं, जो धीरे-धीरे बढ़ कर भीषण रूप धारण कर लेती हैं, और मनुष्य के सोने की लंका को भस्मीभूत कर देती हैं। यह संशय-वृत्ति शनैः-शनैः मनुष्य के मस्तिष्क पर पूर्ण आधिपत्य जमा लेती है और आगे चल कर मनुष्य जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों को हल करने में भी असमर्थ हो जाता है। मस्तिष्क के ज्ञान-तन्तुओं के इतने निर्बल हो जाने पर मनुष्य कुछ कर नहीं सकता और संशय के दास होने पर वह स्वयं अपना स्वामी नहीं रह जाता। इससे मनुष्य सदैव द्विविधामय और अशान्त बना रहता है। उसका जीवन कभी भी एक साँचे में ढल नहीं पाता और उसकी दशा भली भाँति न जमे हुए दूध सी होती है—जो न दूध ही रह पाता है न दही ही।

शीघ्र किसी भी निष्कर्ष पर न पहुँचने वाले व्यक्ति को कोई भी महत्वपूर्ण कार्य कैसे सौंपा जा सकता है? मरणशय्या पर पड़े रोगी की चिकित्सा का भार यशस्वी परन्तु उस चिकित्सक पर कैसे छोड़ा जा सकता है, जो रोग-निर्णय के लिये घन्टों का समय चाहता हो? वह व्यवसायी क्या व्यापार कर सकता है जो भाव की 'घटा-बढ़ी' के समय 'क्रय-विक्रय' का निर्णय करने में घण्टों संदिग्धता में पड़ा रहे? आक्रमण के शुभ-मुहूर्त्त में 'कब और कैसे?'

की उलझन में पड़े रहने वाले सेनापति से विजय की क्या आशा की जा सकती है ? तब तक विपक्षी की इस दुर्बलता से लाभ उठा कर शत्रु चढ़ आयेंगे और संशयी सेनाध्यक्ष मारा जायगा। उसका देश परतन्त्र होकर रहेगा। उसके निर्दोष सैनिकों का सिर भुट्टे की भाँति उड़ा दिया जायगा ! उनका रक्त नालों और मोरियों में बहता फिरेगा और उनके मातृ-भूमि की छाती पर विधर्मियों की पताका फहरा दी जायगी !! इस प्रकार 'शीघ्र-निर्णय' न कर सकने वाले असफलता तथा हानि के ही भागी नहीं होते बल्कि कभी-कभी उन्हें जीवन से भी हाथ धोना पड़ता है, सो भी कलंक का टीका लगा कर ! क्योंकि सभी प्रकार से समर्थ और योग्य होने पर भी संशयी होने के कारण वे उपयुक्त समय पर कर्त्तव्य-पालन के लिये तैयार नहीं हो पाते और इसी से वे पराजय और परिहास के पात्र होते हैं।

किसी फैक्टरी के सञ्चालक, किसी बड़े आफिसर, किसी शिक्षालय के प्रधान, किसी राष्ट्र-नायक और किसी भी लोक-प्रसिद्ध नेता के जीवन पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होगा कि उनका जीवन उत्तर-दायित्व से भरा पड़ा है। पग-पग और स्थान-स्थान पर उन्हें जिम्मेदारी के बीहड़ वनों से होकर जाना पड़ता है। इसके साथ ही कार्य बाहुल्य सदैव उन्हें घेरे रहता है। सैकड़ों पत्र प्रायः प्रति दिन पढ़ने पड़ते हैं, उनका विवेक पूर्ण उत्तर देना पड़ता है, दर्जनों व्यक्तियो से मुलाकात करनी पड़ती है; विभिन्न घटना-स्थलों का स्वयं निरीक्षण करना पड़ता है, बहुत से विवाद-ग्रस्त विषयों पर विचार-विमर्श करना पड़ता है, कार्य विषयक अनुशासन और प्रबन्ध की व्यवस्था करनी पड़ती है; विभिन्न राजनैतिक और समाजिक उत्सवों और सभाओं में सम्मिलित होना पड़ता है। कुछ समय तक स्वाध्याय भी करना पड़ता है, पत्र पत्रिकाओं को

वक्तव्य भी देना रहता है, कौटुम्बिक कर्त्तव्य भी रहते ही है। साथ ही शरीर और मस्तिष्क को विश्राम देना भी अनिवार्य है ही। जितने भी महान् व्यक्ति हैं, उन्हें अधिक से अधिक कार्य-न्यूनतम समय में ही—करना पड़ता है।

क्या आप सोचते हैं कि—"उन्हें एक पत्र में कम-से कम १० मिनट तो लगते ही होंगे और एक व्यक्ति से ५ मिनट तो उन्हें बोलना ही पड़ता होगा? पर वे बहुत तीव्र लेखक और वक्ता होंगे।" हाँ, वे प्रत्येक कार्य में तीव्र और स्फूर्ति-शाली तो होते ही हैं, पर उनकी बुद्धि बड़ी प्रखर और तीक्ष्ण होती है। उनकी विचार शक्ति बड़ी प्रौढ़ और परिपक्व होती है। शरीर की अपेक्षा उन्हें मस्तिष्क से अधिक कार्य करना पड़ता है। वे बहुत से पत्रों का उत्तर मिनिटों और सेकेण्डों में डिक्टेट कर देते हैं। मुलाकातियों से काम की ही बातें करते हैं और मिनटों एवं सेकेण्डों में उसका उपयुक्त और संक्षिप्त उत्तर दे देते हैं। उनकी वाणी और लेखनी के प्रत्येक शब्द नपे तुले और निर्णात्मक होते हैं। वे शीघ्रता से कार्य-सम्पादन करने में अभ्यस्त से हुए रहते हैं। अपने कार्यों के अनवरत संघर्ष में वे 'शीघ्र-निर्णय' का दिव्यास्त्र लेकर ही आगे बढ़ते हैं। उन्हें प्रत्येक क्षण उत्तरदायित्व का भार वहन करना पड़ता है। तत्काल निर्णय-क्षमता इन गम्भीर योद्धाओं के दुर्ग का कार्य करती है और जब विचारने का बिल्कुल ही अवसर नहीं रहता तथा उनकी लड़ाई खुले मैदानों में होती है, उस समय 'शीघ्र-निर्णय' उनके सलाहू का कार्य देता है। 'शीघ्र-निर्णयी' में अवसर का उपयोग करने की योग्यता और 'प्रत्युत्पन्न मतित्व' स्वयमेव आ जाती है।

प्रतिष्ठा के जितने भी श्रेष्ठ स्थान हैं, उच्चतर सम्मान के जितने भी अवसर हैं; अनेक व्यक्तियों का भाग्य बनाने और बिगाड़ने के

जितने भी कार्य हैं; जन-समूह का नेतृत्व करने के जितने भी श्रद्धास्पद पद हैं, सब उत्तरदायित्व से परिपूर्ण हैं। उत्तरदायित्व रत्न-अलंकृत स्वर्ण-मुकुट नहीं; यह काँटो का ताज है, जिसे गर्वीले योद्धा नहीं, शीघ्र-निर्णय कर सकने वाले महारथी ही पहिन सकते हैं।

शहन्शाह अकबर महाराणा प्रताप का पत्र पढ़ते ही विह्वल हो उठा। उसके अभूतपूर्व आनन्द की सीमा न रही। महाराणा प्रताप ने पत्र द्वारा अकबर से सन्धि-याचना की थी। कविवर पृथ्वीराज प्रायः अकबर से कहा करते थे कि—'प्रताप को पराजित करना टेढ़ी खीर है।' आज प्रताप को स्वयं ही नत-मस्तक होते देखकर अकबर फूला न समाया। दिल्लीश ने विजय-गर्वित होकर यह पत्र कविवर के पास भेज दिया, जिसमें वह देख लें कि उसकी तलवार का लोहा शूरवीरों को भी कम्पित कर देता है और आज प्रताप—स्वाभिमानी प्रताप—ने भी उसके समक्ष शीश झुका दिया। आज हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान पर मुग़लों का एकछत्र आधिपत्य है।

कविवर पृथ्वीराज पत्र पढ़ते ही सन्न हो गये। हिन्दू-सूर्य्य को इस तरह अस्त होते देख कर उनके प्राण सूख गये। किन्तु इतने पर भी वे अधीर होकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ नहीं हुए और तत्क्षण समयोचित कर्त्तव्य-पालन में तत्पर हो गये।

दरबार में उन्होंने यह जन-श्रुति फैलायी कि यह पत्र महाराणा प्रताप का नहीं है। उन्होंने सम्राट् से कहा—"शाहन्शाह! आप कहीं इस ख़त का यक़ीन न कर बैठें। यह एकदम जाली है और किसी दुश्मन की कारसाजिश है। मैं प्रताप के हरुफ़ पहचानता हूँ। उसका दस्तख़त ऐसे होता ही नहीं। जहाँपनाह! आप धोखे में हर्गिज़ न आयें। प्रताप टुकड़ों पर आबरु नहीं

बेच सकता। वह बुज़दिल और कायर नहीं। वह जवाँमर्द है, बहादुर है-जिसकी दहाड़ सुन कर बड़े-बड़े दिलेरों का भी होश काफ़ूर हो जाता है! जहाँपनाह! जिस बदनसीब को उससे पाला पड़ा; पूछिये—उसे छठी का दूध याद होगा। उसके मामूली भीलों से लड़ना गोया—शेर के दाँत गिनना है। मौत से जग मोल लेना है। वतन के लिये वे सब नक्कारे की चोट सरफ़रोशी को तैयार हैं!"

उन्होंने फिर कहा—"जहाँपनाह! इसमें शक नहीं कि प्रताप बड़ा गुस्ताख़ है। वह इतना मगरुर है कि हम लोगों को ज़लीलो नापाक समझता है। हम लोगों से गुफ्तगू में भी उसे ग़ैरत महसूस होती है। जिस्म छू जाना तो वह गुनाह ही समझता है!! भला वह मगरूर आपको सुलह का ख़त लिखेगा? क्या वह दीवाना दम रहते आपको अपना बादशाह तस्लीम करेगा? नहीं, हर्गिज़ नहीं, शाहन्शाह! जब तक उसे बिना पानी न मारा जाय! जब तक उसके पास मौत का परवाना न भेजा जाँय! ख़त की बातें झूठ हैं,—सरासर झूठ हैं! आप कहीं दुश्मनों के चकमे में न आ जायें। अल्लाह!.........(आकाश की ओर दृष्टि करके) आपका एकबाल बुलन्द रखे। शाहन्शाह! हमें मुहलत दें ताकि हम प्रताप से असलियत का राज़ दरियाफ्त कर सकें।"

इसके अनन्तर गुप्त-रूप से उन्होंने महाराणा प्रताप को निम्नाशय का ओज-पूर्ण पत्र लिखा:—

"ओ मेवाड़ के मुकुट! ऐ मातृ-भूमि के जीवन प्राण!! हम अधम और पामर तो अपनी मान-मर्य्यादा, अपना गौरव और सभी कुछ खो चुके! विधर्मियों की दासता स्वीकार करके हमने अपना धर्म, कर्म, और अपना सर्वस्व लुटा दिया। हम कपूतों ने केवल

अपने मुख में ही कालिख नहीं लगायी है; जननी-जन्म भूमि को भी कलंकित और अपमानित कर दिया है !! आज हिन्दू-वंश का प्रदीप सदैव के लिये बुझना चाहता है—प्रताप ! इस टिमटिमाते दीप को तुम्हीं स्नेह और जीवन देकर पुनः ज्योतिर्मय कर सकते हो !! इस आर्य्य-जाति, आर्य्य-संस्कृति और आर्य्य-भूमि की लज्जा तुम्हारे ही हाथ में है—महाराणा ! तुम्हारी ओर ही देव-पितर सब सतृष्ण नेत्रों से देख रहे हैं। क्या प्रणवीर प्रताप के रहते क्षत्राणी के दुग्ध की निन्दा होगी ? क्या आर्य्य-केशरी के होते भारत-भूमि पर अनार्यों का शासन होगा ? संकट में ही साहस, शौर्य्य और धैर्य्य की परीक्षा होती है ? प्राण रहते प्रण का परित्याग मत करना ! वीरोचित मरण भी गर्व है—और एक महान् पर्व है ! सेनानी ! संकल्प से विचलित न होना। भावी-वंशज तुम से स्वाधीनता की शिक्षा लेंगे, मस्तक के मोल भी वे स्वतन्त्रता क्रय करेंगे और कड़कड़ा कर देश की कड़ियाँ चूर-चूर कर देंगे ! देश के दुलारे ! हम सब तन बेच कर भी मन से तुम्हारी जय-जयकार कर रहे हैं।"

कविवर पृथ्वीराज महाराणा प्रताप का पत्र पढ़ कर और हिन्दू-जाति के पतन का स्मरण करके भी कर्त्तव्य-च्युत नहीं हुए और उसी समय तथा उसी क्षण सत्वर बुद्धि से उन्होंने हिन्दू-पति को प्रोत्साहित करके आर्य जाति के उत्थान में सहायता दी। यदि वे थोड़ी भी देर करते तो इतिहास की रुप-रेखा कुछ और ही होती।

उत्तरदायित्व उन्हीं बुद्धि विशारदों को सौंपा जा सकता है जो संदिग्धता की उलझन में नहीं पड़ते और किसी विषय का महत्त्वपूर्ण निर्णय तत्काल कर सकते हैं। प्रतिष्ठा ऐसी ही महत् पुरुषों का चरण-चुम्बन करती है। शीघ्र-निर्णय न कर सकने वाला

कभी भी उत्तरदायित्व नहीं सँभाल सकता और न भली भाँति किसी कार्य का सञ्चालन ही कर सकता है। इससे कभी भी वह प्रधान और सर्वोच्च पद पर आसीन नहीं हो सकता। वह सर्वदा सहायक (*Subordinate*) ही बना रहेगा। वह सेवक होगा, श्रमिक होगा। वह सदा अनुचर, आज्ञाकारी और अनुगामी ही रहेगा। उसमें स्वयं आज्ञा और आदेश देने की योग्यता न होगी और न अनुशासन करने की क्षमता ही।

जो लोग साधारण बातों के निर्णय में भी बहुत समय लगाते हैं और फिर भी किसी एक विचार पर स्थिर नहीं हो पाते वे प्रयास द्वारा शीघ्र-निर्णायी बन सकते हैं और फिर कभी द्विविधामय न रहेंगे। किन्तु इसके लिये कष्ट सह कर परिश्रम के लिये बद्ध परिकर होना पड़ेगा और विरोध, बाधा, पड़ने पर भी अपने निश्चय से पीछे हटना नहीं होगा। निर्णय-परिपालन में स्वयं ही अपने पर कठोरता से अनुशासन और नियन्त्रण रखना होगा। इसमें जितनी ही तत्परता और सतर्कता रखी जायगी शत-प्रतिशत उतनी ही अधिक सफलता भी प्राप्त हो सकेगी।

प्रारम्भ में नित्य की छोटी-छोटी बातों पर तत्काल निर्णय का प्रयास कीजिये और उस पर स्थिर रहने का दृढ़ संकल्प करिये। यदि आप प्रातः ५ बजे उठना चाहते हैं, धूम्र-पान का परित्याग करने की सोचते हैं और रात्रि में शयन के पूर्व १० पृष्ठ पढ़ने का विचार करते हैं, तो आप उसे अक्षरशः परिपालन करने की चेष्टा कीजिये। अपने निर्णय को प्रतिज्ञा और व्रत समझ कर उसका परिपालन कीजिये। ये छोटे-छोटे निर्णय हल्के व्यायाम का काम देंगे। देखने में ये बातें अत्यन्त साधारण और हास्यास्पद प्रतीत होती हैं परन्तु मनुष्य का मनोबल बढ़ाने और उसकी सुषुप्त आत्म-निर्भरता को पुनः जाग्रत करने की इनमें आश्चर्यमयी

शक्ति अन्तर्हित है। जिस दिन से ये उपचार आरम्भ होंगे उसी दिन से आप में परिवर्तन भी होने लगेंगे। किन्तु इतने शीघ्र वे दिखायी न देंगे। इन उपचारों से आप की प्रज्ञा का काया-कल्प होगा और आपके मस्तिष्क को बल प्राप्त होगा। फलस्वरूप भविष्य में आप वर्तमान से अशान्त और उद्विग्न न रहेंगे। हाँ; उपचारों के प्रति उदासीन न होना होगा और न प्रयोगों के प्रति अवहेलना ही रखनी होगी। यदि तीन पैकेट सिगरेट की जगह ढाई ही पीये और उसी पर डटे रहे तो ठीक है; अन्यथा सफलता की आशा भी व्यर्थ है। इसी प्रकार १० पृष्ठ की अपेक्षा ६ पृष्ठ पढ़ कर ही यदि आप संतुष्ट हो रहे तो सफलता भी थोड़ी न्यून हो जायगी। जो प्रमाद आपको १० की जगह ६ पृष्ठ ही पढ़ने को बाध्य कर रहा है, आगे चल कर उसी की विजय होगी और फिर ६ से ८ घटा कर आपको कभी निर्धारित कार्य पूरा करने में समर्थ न होने देगा।

आत्मिक विकास के लिये मनोवैज्ञानिक कुछ निश्चित समय तक निश्चित कार्य-क्रम के परिपालन का परामर्श देते हैं। आरम्भ में यदि एक घण्टा भी निश्चत समय पर निर्धारित कार्य करने का अभ्यास डाला जाय तो ५-६ महीनों की अवधि तक रोगी की कार्य-शक्ति और उसके विचारों में विद्युत्-शक्ति की भाँति एक लहर उत्पन्न होगी, जो उसे ऊपर ले जायगी—उत्थान के लिये उसका हाथ पकड़ेगी। इस अवधि तक रोगी में आत्मिक-बल का सञ्चार हो चुका रहेगा। उसकी निर्णय-क्षमता जागरूक हुई रहेगी और अब वह पहले सा द्विविधामय न रहेगा। साधारण बातों को तो वह तत्काल निश्चित कर लेगा और उस पर दृढ़ रहेगा।

अब थोड़ी बड़ी-बड़ी बातों पर विचार विमर्श कीजिये। प्रश्न जितना ही महत्व का होगा उसे हल करने में उतना ही अधिक

समय लगेगा। प्रश्न के लाभ और हानि, उज्ज्वल और तिमिराच्छन्न दोनों भागों को सोचिये; खूब सोचिये; जल्दी न कीजिये; और फिर आप को पूर्व की भाँति इस निर्णय पर स्थिर रहना होगा। विघ्न के प्रचण्ड तूफान से भी आपको हिलना न होगा। आप दृढ़ रहिये। ध्रुव तारे की भाँति अटल रहिये और हिमगिरि के सदृश सुदृढ़ रहिये। आँधी और तूफ़ान आयेंगे और सर्राटे से निकल जायेंगे। विघ्न और विरोध की मेघ-माला उमड़ घुमड़ कर आयेगी और आप से टकरा कर बरबस बरस जायगी।

महत्वपूर्ण निर्णय करने में आप कभी उतावलेपन से काम न लीजिये। जल्दी बाजी में आप अपनी हानि कर बैठेंगे। उसे सोचिये, भली भाँति सोचिये। कभी एकाएक निर्णय न कीजिये। जल्दी बाजी में प्रश्न के अच्छे और बुरे दोनों पहलुओं पर उत्तमता से प्रकाश नहीं पड़ सकेगा। उसके उज्ज्वल और अन्धेरे भाग पर दृष्टि नहीं जायगी। फलस्वरूप उसका परिणाम दूर तक मनुष्य सोच नहीं पाता और अदूरदर्शी होने से उससे उत्पन्न होने वाले बहुत से लाभों से वञ्चित तो रहता ही है; प्रायः अपनी हानि भी कर बैठता है।

एक उदाहरण लीजिये। आप देर से सोकर उठते हैं। घर वाले चाहते हैं आप प्रातः उठें, गृहिणी भी व्यंग बोलती है, मित्र आप का हास्य करते हैं; तो आप प्रातः उठने का निश्चय कर लीजिये; पर एकाएक नहीं;—बिना विचारे कदापि नहीं। उसे पहले सोचिये—२-३ दिन तक गम्भीरता से सोचिये। प्रातः उठने के लाभ सोचिये और कितने हैं उन्हें स्मरण रखिये। स्मरण रखने में कठिनाई पड़ती हो तो उन्हें कागज पर अङ्कित करते जाइये। इतना ही नहीं प्रातः जागरण से आप की क्या हानि होगी; यह भी सोचिये। आप प्रातः क्यों उठना चाहते हैं? मित्रों के हास्य

से, पत्नी की फटकार से, या स्वेच्छा से ? क्या देर तक शयन करने से आपके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है ? क्या इससे आपके दैनिक कार्य-क्रम में बाधा पड़ती है ? क्या आप को पर्याप्त समय नहीं मिलता; क्या आप के कार्य अधूरे रह जाते हैं और कुछ छूट भी जाते हैं और समय निकल जाता है ? आप पुनः सोचिये— प्रातः उठने से आपको जुकाम या शिर-दर्द तो नहीं होगा ? ऐसा तो नहीं दिन भर आपको आलस्य घेरे रहे और कार्य में बाधा पड़े। आपकी लाल और निद्रालु आँखें दिन में सोने को तो बाध्य नहीं करेंगी ! आप रात्रि में १२-१ बजे तो नहीं सोते ? और आपका कार्य ऐसा है कि शयन का समय बदला नहीं जा सकता ? इस प्रकार आप प्रातः जागरण से लाभ और हानि दोनों विस्तार से पृथक-पृथक अङ्कित कर लीजिये। इस विस्तृत विश्लेषण को लेकर निर्णय कीजिये। अब यदि आपने प्रातः जागरण का निश्चय कर लिया तो आपके निर्णय की सफलता की अधिक से अधिक आशा की जा सकती है। अब तक आपकी अनुशासन शक्ति बलवती हो चुकी होगी और विश्वास किया जाता है कि आप अपना निर्णय निःसन्देह शीघ्रातिशीघ्र कार्य रूप में अवश्य परिणत करेंगे।

"तुम सिगरेट छोड़ते क्यों नहीं ?—विजय ! देखो, तुम्हारी दशा कैसी होती जा रही है ?"—विनोद ने कहा।

"क्या करूँ, भाई ! चाहता तो बहुत हूँ, पर छूटता ही नहीं !"—विजय बोला।

"तुम सच्चे दिल से चाहते ही नहीं; ऐसी क्या बात कि मनुष्य चाहे—सच्चे दिल से चाहे; और वह न हो ?"

"विनोद ! मैने लाखों कोशिश की, पर कम्बख्त सिगरेट न छूटा—न छूटा !"—विजय ने शीघ्र ही सुलगाये हुए सिगरेट का धूआँ उड़ाते हुए कहा।

"ऐसे बुज़दिल हो। जो सिगरेट पीना—एक साधारण सी कुटेव—तुम छोड़ न सके; लाखों प्रयत्न करके भी!! तो तुम उन्नति कैसे कर सकोगे? कोई बड़ा काम कैसे कर सकोगे?"

विजय को बात लग गयी। उसने सुलगता हुआ सिगरेट नाली में फेंक दिया, साथ ही जेब से पैकेट निकाल कर सिगरेटों को हाथ से मसल कर तोड़ मरोड़ डाला। फिर उन सभी टुकड़ों को एकत्र करके उसने उनमें सलाई लगा दी और सिगरेट केस को पैरों से खूब कुचल डाला।

"लो, मैंने इसकी जड़ ही मिटा दी। मैं भी तुल ही गया हूँ। देख लो; सिगरेट की धधकती चिता देख लो। हाँ···। तुम भी क्या कहोगे ······।"—विजय ने आवेश में आकर कहा।

इस पर दोनों खिल खिला कर हँस पड़े।

विनोद ने कहा—"शाबाश। अब इस पर दृढ़ रहना!!"

"दृढ़! अजी लो; सौगन्ध खाता हूँ—फिर न पीऊँगा—न पीऊँगा!!"—विजय ने निश्चयात्मक शब्दों में कहा।

आखिर विजय ने सिगरेट छोड़ने का निश्चय कर ही लिया। जब वह घर लौटा तो पत्नी को उसने अपनी प्रतिज्ञा कह सुनायी। वह भी प्रसन्न हो उठी और उसने इसके लिये उसकी सराहना की।

धीरे-धीरे सूर्य्य अस्त होने लगे। पश्चिम की लालिमा मिटने लगी। सन्ध्या हुई। अन्धकार फैला। तारे निकले। अब तक बेचैन होकर भी विजय धैर्य्य रखे रहा। भोजनोपरान्त शयनकक्ष में जाने पर उसने पत्नी से कहा:—

"अजी, सुनती हो?"

"कहो, क्या कहते हो?"

"बोलो, मानोगी?"

"अजी, कहो भी?"

"आवश्यक बात कहूँगा। लेकिन मानोगी तब!—बोलो, वचन देती हो?"

"मैं बिना जाने दशरथ-की भाँति वचन न दूँगी। बोलो, क्या कहते हो?"

"अच्छा......! लेकिन यह तो मुझे सोचना चाहिये। इससे पुरुष को धोखा हुआ, स्त्री को नहीं!!"

"बाबा कहो भी!"—उसने झिझकते हुए कहा।

"यही कि एक सिगरेट-पिला दो!"

"हूँ......! क्यों नहीं!! ना, मैं न दूँगी!"

"देखो, बेचैन हो रहा हूँ। शिर चक्कर कर रहा है!! क्या तुम्हें दया भी नहीं आती?"

"तो तुमने छोड़ा ही क्यों? तुमसे कोई कहने गया था?"

"अरे,......वह विनोद नहीं माना। पीछे पड़ गया राम का पूत! बोला—'थोड़ा ही दो!"

"चुप चाप सो जाओ। निद्रा आवेगी तो सारी पीड़ा मिट जायगी!"

"तंग न करो; नींद न आयेगी। सारी रात बेचैन रहूँगा। सुबह काम पर भी न जा सकूँगा, और कहीं तबीयत ज्याद खराब हो गयी तो......!"

"जिद्दी हो! मानोगे नहीं!!"

"नहीं, नहीं, छोड़ दूँगा; जब कह दिया तो! इस वक्त पिल दो एक!"

विजय सिगरेट पीकर ही रहा। सारी प्रतिज्ञा, सारे व्रत ताक पर रखे ही रह गये। अन्त तक वह अपने निश्चय टिक न सका।

अपने निश्चय पर स्थिर रह कर उसे कार्य रूप में परिण

करने पर ही मनुष्य कुछ कर सकता है, अन्यथा उसके विचार, उसके निर्णय और उसकी समस्त योजनाएँ अच्छी और सर्वाङ्ग सुन्दर होने पर भी धूल में ही मिल कर रहेंगी और तब उसका जीवन भी धूल में मिलने के अतिरिक्त कुछ न बन सकेगा। अपने निर्णय को जैसे भी हो दृढ़ता पूर्वक कार्य का स्वरूप देना चाहिये। इसमें आलस्य एवं प्रमाद होने पर अनुशासन पूर्वक उसे कार्यान्वित करना चाहिये। दृढ़ता और आत्म-नियन्त्रण से उसे पूरा करना चाहिये और उसमें अपनी सारी शक्ति लगा देनी चाहिये।

न्यायाधीश ने कोई निर्णय किया। उसे कार्य रूप में परिणत करना स्वयं विचारपति का कार्य नहीं। राज-सत्ता का आतंक स्वयमेव उसे कार्यान्वित करा देगा। बाधा होने पर पुलिस उसे पूर्ण करायेगी—बल-प्रयोग द्वारा—पूर्ण करायेगी। विचारपति का आदेश—उसका निर्णय—कार्यान्वित होकर ही रहेगा। इसी भाँति आपके मस्तिष्क के निर्णय को प्रयोग में लाना इन्द्रियों का कार्य है। इसमें विलम्ब, आलस्य और प्रमाद होने पर दृढ़ता—बलवती दृढ़ता—अनुशासन पूर्वक उसे पूर्ण करायेगी। तभी आपकी सफलता भी संभव है। कार्य-शक्ति दृढ़ता की चेरी है।

यह आप पर निर्भर है कि अपना सुधार शनैः-शनैः करें या एक ही बार में। धीरे-धीरे सुधार के पक्षपाती भी प्रचुर व्यक्ति हैं और एक बार में ही जीवन-सुधार के भी पर्याप्त उदाहरण हैं। जो कुछ भी हो, आपने जो निर्णय किया उसे कार्यान्वित करने पर तुल जाइये—डट जाइये। सारी शक्ति लगा कर—'जीवन-मरण' सा महत्त्व देकर—उसे पूर्ण कीजिये। अपनी शक्ति और क्षमता के अनुसार ही निर्णय कीजिये और इसे पहले ही शक्ति और स्थिरता से सोच लीजिये। परन्तु जो निश्चित हो जाय उसे प्रयोग में लाइये ही और सदैव सोचते ही न रहिये। निर्णय-

परिपालन में असावधानी और अवहेलना न कीजिये—कदापि न कीजिये।

मनुष्य बचपन के बाद और युवावस्था के पूर्व जिस साँचे में ढलता है प्रायः वह आजन्म वैसी ही प्रतिमा रहता है। उसकी बुद्धि, शक्ति और उसके स्वभाव सब के परिपक्व होने का यही स्वर्ण-सुअवसर है। इस साँचे से यदि वह दानव निकला तो पुनः उसका मानव होना दुष्कर हो जाता है। किन्तु प्रकृति कुम्भकार की भाँति निष्प्राण और जड़ प्रतिमा नहीं बनाती। वह उनमें जीवन और चैतन्यता भी भरती है। अतएव कभी-कभी सत्संगति से दानव-मानव और मानव-देवता बन जाते हैं, पर बड़े भाग्य से।

मैंने ऐसे बहुत से आदमी देखे हैं, जिन्होंने—युवावस्था के पूर्व धारण किये हुए धूम्र-पान एवं मादक सेवन का व्यसन वृद्ध होने पर भी, जब कि उनका छोड़ना कठिन ही नहीं, असम्भव सा हो जाता है और वे प्रायः शरीर के साथ ही जाती हैं, एक महात्मा के सदुपदेश से छोड़ दिया और एकदम छोड़ दिया। ऐसा करने में उनके शिर में पीड़ा हुई, वे दुर्बल हुए, किसी को ज्वर हुआ और किसी को और कुछ; पर वे अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहे, अमिट रहे।

एक जुआड़ी था, 'द्यूत-क्रीड़ा' जिसका जीवन-प्राण सी हो रही थी। वह बिना भोजन-शयन के रह सकता था पर बिना धूर्त-कर्म के नहीं। वह अहर्निश इसी का चिन्तन किया करता था और रात्रि में वैसे ही स्वप्न भी देखा करता था। वह घर-बार, स्त्री-बच्चों का परित्याग कर सकता था, पर द्यूत् का नहीं उसकी यह लत ६०-६५ वर्षों से थी—इतनी परिपक्व। गया जी मे पितृ-श्राद्ध के पश्चात् सुफल के समय उसने अक्षयवट से य. वर माँगा—"हे पुंडीरकाक्ष। चाहे कोई भी कष्ट देना, चाहे सम

सुखों से विलग करना, परन्तु हे नारायण ! हे विष्णु !! मुझे द्यूत् से पृथक कभी न करना !! 'द्यूत्' उसके दिल, दिमाग में भर गया था, उसने अपनी मृत्यु पर घर वालों को अर्थी और चिता पर भी कौड़ियाँ रखने का निर्देश कर दिया था—ऐसा था वह जन्मजात जुआड़ी ! बचपन से अब तक के जीवन साथी को त्यागते उसे मोह हो रहा था और हो रही थी शरीर-त्याग सी वेदना ! परन्तु सत्संगति से उसने भी द्यूत्-त्याग की शपथ ले ली !

आपका निर्णय सही है अथवा नहीं, यह विषय नहीं है, बल्कि जो कुछ भी आपने निश्चित किया उस पर आप पर्याप्त समय तक स्थिर रह सकेंगे। उसे कार्यान्वित करेंगे और अब आपकी चित्त-वृत्ति पूर्ववत् संशायात्मक नहीं होगी। आपको खोया हुआ निश्चय-बल पुनः प्राप्त हो गया। अब आप पर संशय का स्वत्व नहीं रहा। आप अब स्वयं अपने विचारों के अधिपति हो गये। ये बातें आपके उत्थान में सहायक होंगी। आपका निर्णय बच्चों का घरौंदा नहीं जो इतना शीघ्र बनाया बिगाड़ा जा सके।

अनुमोदन

निगाहें कामिलों पर पड़ ही जाती हैं ज़माने की।
कहीं छिपता है 'अकबर' फूल पत्तों में निहाँ होकर॥

"यदि कोई व्यक्ति अपने पड़ोसी की अपेक्षा अधिक अच्छी पुस्तक लिख सकता है, उत्तम भाषण दे सकता है अथवा सुन्दर वस्तु बना सकता है, और यदि वह जंगल में भी अपना गृह बनायेगा—अज्ञात भी रहेगा—तो भी संसार उसके द्वार तक मार्ग बना लेगा—उसे ढूँढ़ लेगा।"

—इमर्सन

योग्य होने का उद्योग करना चाहिये और योग्य होना चाहिये। योग्य व्यक्तियों की पूछ, उनका आदर और सत्कार हुए बिना नहीं रह सकता। योग्यता सर्वोत्तम विज्ञापन है। योग्य व्यक्तियों का अनुमोदन वह स्वयं करती है और संसार को उसका सम्मान करने के लिये बाध्य करती है। यथार्थता स्वयमेव कह देगी, वह मनुष्य कैसा है; उस वस्तु में कौन सी विशेषता है। उत्तमता ही उन्नति का सर्वोपरि साधन है। योग्य व्यक्तियों के पीछे सम्मान दौड़ता फिरता है। मनुष्यों द्वारा किये गये अनुमोदन की अपेक्षा उत्तम कार्य्यों और श्रेष्ठ गुणों का समर्थन सर्वोत्कृष्ट है।

मनुष्य संसार में अपने गुणों से पूजित होता है, बाह्याडम्बरों से नहीं। कृत्रिमता से किसी को भ्रम में डालकर कोई कुछ समय तक भले ही सम्मान प्राप्त करले परन्तु उसकी प्रतिष्ठा स्थायी नहीं होगी और वह किसी के हृदय पर अधिकार नहीं जमा सकता। जब उसकी पोल खुल जायगी, जब उसका अज्ञान प्रकट हो जायगा;

लोग उस पर हँसेंगे और संसार उसे घृणा की दृष्टि से देखेगा। यदि कोई वास्तव में आदर के योग्य है तो प्रत्येक मनुष्य के हृदय में उसके प्रति सम्मान और श्रद्धा होगी। सच्चा और स्थायी सम्मान योग्य व्यक्ति ही पा सकता है। वह चाहे किसी भी वेश और चाहे किसी भी देश में क्यों न हो किन्तु पारखी बुद्धिमान् और गुणज्ञ व्यक्ति अवश्य उसे पहचान लेंगे और धूल-मिश्रित हीरे की भाँति उसकी कदर करेंगे। नकली और असली का, अयोग्य और योग्य का यही तो अन्तर है कि पहला बिना पहचान में आये—बिना खराद पर चढ़े मूल्यवान् जँचता है और अपनी आभा के आगे असली को भी मात कर देता है। परन्तु नकली, परीक्षा के नाम से ही थर्रा उठता है और परीक्षा होने पर निष्प्रभ हो जाता है। जब कि असली प्रसन्न होकर परीक्षा का स्वागत करता है और अग्नि में पड़ते ही चमक उठता है, खराद पर चढ़ते ही जगमगाने लगता है।

मणिर्लुंठति पादाग्रे काचः शिरसि धार्यते।
क्रय-विक्रय वेलायां काचः काचो मणिर्मणिः ॥

भले ही मणि पद-दलित होकर तिरस्कृत होता रहे, काँच मुकुट में जटित होकर गौरवान्वित हो; परन्तु क्रय-विक्रय के समय—परीक्षा के विकट अवसर पर—काँच-काँच ही रहेगा और मणि-मणि ही।

दो व्यक्ति एक ही अवस्था, स्वरूप तथा समान कुल के हैं। फिर भी पहला व्यक्ति दूसरे से डरता है, उसका सम्मान करता है, और उस पर श्रद्धा रखता है क्यों? बहुत से धनी तथा प्रतिष्ठित लोग एक साधारण व्यक्ति की कृपा चाहते हैं और उसे प्रसन्न रखना चाहते हैं क्यों? इसलिये कि उसमें कोई ऐसी विशेषता है, कोई ऐसा गुण है जो उनके पास नहीं है और जिसकी उन्हें आवश्यकता

पड़ा करती है। अब उसकी विशेषता विद्या में हो, बुद्धि में हो, अनुभव में हो अथवा वह कोइ परोपकारी व्यक्ति हो जो उनके काम आता हो। जैसे-झाड़ने-फूँकने वाला, विवाह-शादी तथा लोक-प्रथा का ज्ञाता, घरेलू दवाइयों का जानकार, अदालती दाँव, पेंच का विशेषज्ञ अथवा वह हाकिम-हुक्कामों तथा प्रख्यात व्यक्तियों का मुलाकाती और प्रभावशाली मनुष्य हो, जो उनकी उलझी हुई गुत्थियाँ सुलझा सकता हो। श्रद्धा और सम्मान प्राप्त करने के हेतु किसी गुण अथवा कार्य की कुशलता है सिफारिश नहीं।

'तुलसी साँचे शूर को वैरिहु करत बखान।'

यदि किसी में कोई गुण है या वह कोई अच्छा कार्य करने जा रहा है, तो उसे अपने गुण या अपने सोचे हुए कार्य का ढिंढोरा नहीं पीटना पड़ेगा। समय पर उसका गुण स्वयं प्रकट हो जायगा और उसका कार्य स्वयं कह देगा कि वह क्या करना चाहता था।

योग्यता छिपी नहीं रहती। गुण की क़दर हुए बिना नहीं रह सकती। फूल खिलता है, जब उसकी सुगन्ध फैलती है तो लोग स्वयं उसे खोजते हुए खिच आते हैं। गुलाब किसी से सूँघने का आग्रह नहीं करता किन्तु उसकी सुगन्ध और उसका सौन्दर्य लोगों को आकर्षित कर लेते हैं और वे मुग्ध हो जाते हैं। परन्तु बहुत से पुष्प वन में विकसित होकर कुम्हला जाते हैं और लोगों को उनका पता भी नहीं लगता। अतएव योग्य व्यक्तियों को समय पर अपनी योग्यता का परिचय भी अवश्य देना चाहिये और अपने गुणों से दूसरों को लाभान्वित करना चाहिये।

श्रेष्ठ व्यक्ति कभी इस बात के भूखे नहीं रहते कि कोई उनका सम्मान करे, उनकी प्रशंसा करे या किसी भाँति उनकी प्रसिद्धि हो। उन्हें इस बात की कभी ग्लानि नहीं होती कि वे न्यून-परिस्थिति में हैं अथवा वे कोई साधारण या छोटा कार्य कर रहे हैं। हाँ,

उन्नति करने की—आगे बढ़ने की उनमें एक उत्कट लालसा होती है और कुछ कर दिखाने की एक तीव्र लगन। वे प्रत्येक प्रलोभन से मुँह मोड़कर शिर झुकाये हुए अपने कार्य में संलग्न रहते हैं। उसे अपनी पूरी शक्ति और अनवरत परिश्रम से पूर्ण करते हैं। उन्हें यह विश्वास होता है कि—"एक दिन खुद ढूँढ़ लेगी शोहरत मुझको!"

× × × ×

सैकड़ों वर्ष पूर्व लायोन्स नगर में एक प्रति-भोज में कुछ प्रसिद्ध पुरुष एकत्र हुए। अकस्मात् ग्रीस की पौराणिक कथाओं के चित्रों के विषय में विवाद चल पड़ा। विवाद अधिक बढ़ते देखकर गृह-स्वामी ने अपने एक सेवक को बुला कर उन चित्रों के विषय में समझाने को कहा। उसने संक्षेप में ही स्पष्टता पूर्वक उन पर अच्छा प्रकाश डाला। शीघ्र ही सारा विवाद समाप्त हो गया।

उसकी विद्वत्ता से चकित होकर एक मेहमान ने पूछा—"महानुभाव! आपने किस पाठशाला में अध्ययन किया है?"

उस व्यक्ति ने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया—"मान्यवर! मैंने कई पाठशालाओं में अध्ययन किया है, परन्तु 'विपत्ति' के शिक्षालय मे मैंने चिरकाल तक शिक्षा प्राप्त की है।" निर्धनता अभागे युवक के उन्नति-पथ को रोक कर खड़ी थी। समय ने उसे नौकर बना रखा था। परन्तु शीघ्र ही अपने प्रतिभा से उसने संसार में चकाचौंध उत्पन्न कर दी। अल्प समय में ही उसकी लेखनी की कीर्ति समस्त यूरोप मैं फैल गयी। आज सारा सभ्य संसार क्रान्तिकारी 'जीन जे रूसो' के ग्रन्थों से परिचित है। 'विपत्ति' की पाठशाला में पढ़ने वाले और नौकरी से निर्वाह करने वाले इसी—'रूसो'—की उत्साह-वर्द्धक पुस्तकें पढ़ कर ही नेपोलियन—नेपोलियन हुआ था!

एक योग्य और होनहार व्यक्ति को उसके फटे और मैले कपड़े छिपा नहीं सकते। मैली चादर से, फटी कमीज से प्रतिभा बाहर निकले बिना नहीं रहेगी और उसके गुण का प्रकाश कर देगी। तड़क भड़क वाले बहु-मूल्य वस्त्र अयोग्य व्यक्ति को गुणी और योग्य नहीं बना सकते। भले ही उन वस्त्रों से उसके अज्ञान पर पर्दा पड़ गया हो परन्तु योग्यता और गुण की परख के समय उसकी भड़कीली पोशाक के भीतर से भी उसकी मूर्खता झाँकती दिखाई देगी जो संकेत से कह देगी—स्वर्ण नकली है! मूर्खराज जी वस्त्रा-भूषणों से सुसज्जित हैं!! गर्दभराज जी सिंह-चर्म ओढ़े घूम रहे हैं!!!"

× × × ×

कविवर मलिक मुहम्मद जायसी काले और कुरूप थे। परन्तु अपने गुणों के कारण वे बड़े-बड़े लोगों से भी सम्मानित होते थे। भूपाल भी उनकी प्रतिष्ठा करते थे। एक बार एक राजा उनकी भद्दी आकृति देख कर हँस पड़ा। इस पर मन में बिना कुछ क्रोध किये ही जायसी ने शान्त भाव से कहा—"मोहिका हँससि कि कोंहरहि?" अर्थात् "हे राजन्! तू मेरे मिट्टी के इस कुरुप बर्त्तन (शरीर) पर हँसता है या इसे बनाने वाले कुम्हार—ईश्वर-पर?" राजा अत्यन्त लज्जित हो गया और उसने जायसी से क्षमा-याचना की। जायसी अपने पांडित्य और अपनी कवित्व-शक्ति के बल पर ही सम्मानित होते थे। उनका गुण ही सुन्दर स्वरूप और देदीप्यमान शरीर था। सुन्दरता सुन्दर कार्य करने में है, स्वरूप में नहीं। '*Handsome is he who handsome does*' अर्थात् सुन्दर वही है जो सुन्दर कार्य करता है।

एक अच्छे व्यापारी से एक ग्राहक ने कहा—"महोदय, आपकी वस्तुओं का मूल्य दूसरों से अधिक है!"

"हाँ, मेरा दावा अच्छा सामान देने का है। सस्ती और ख़राब वस्तुएँ बेचना मेरा उद्देश्य नहीं। यहाँ सर्वोत्तम वस्तुएँ मिलती हैं। आप उनकी उत्तमता में कोई त्रुटि नहीं पा सकते!"

उस व्यापारी की दूकान का नाम ही पर्याप्त था। उसकी वस्तुओं की उत्तमता के लिये किसी के अनुमोदन की आवश्यकता न थी। इसी से अधिक मूल्य होने पर भी ग्राहक उसका सामान लेना अधिक पसन्द करते थे।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर न तो बहुत सम्मानित कुल में ही उत्पन्न हुए थे और न धनवान् ही थे परन्तु अपनी योग्यता और अपने गुणों के कारण वे बड़े-बड़े लोगों द्वारा भी पूजे जाते थे। उनके साधारण वस्त्र पहने रहने और सड़क पर पैदल चलने पर भी कितने ही प्रतिष्ठित और बड़े-बड़े लोग अपनी गाड़ियाँ रोक कर उन्हें प्रणाम किये बिना आगे नहीं बढ़ते थे। अपनी विद्वत्ता के कारण ही वे लार्ड रिपन से मिलने जाया करते थे। विद्यासागर आरम्भ से ही सादगी के अवतार थे। धोती, चद्दर और चट्टी यही उनके सर्वदा की प्रियतर पोशाक थी। लार्ड रिपन से मिलने जाते समय भी वे साधारण वस्त्र पहन कर ही जाया करते थे।

एक बार भारत सरकार ने वायसराय से मिलने वालों के लिये सूट पहन कर जाने का नियम बनाया। लार्ड रिपन से कार्य-विषयक वार्त्तालाप कर चुकने के पश्चात् ईश्वरचंद्र ने कहा—"अच्छा, आप से आज यह मेरी अन्तिम भेंट है!" वायसराय यह सुन कर चकित हो गये और उन्होंने इसका कारण पूछा। तब विद्यासागर ने उन्हें सादी पोशाक पहनने के अतिरिक्त अन्य पोशाकों से अपनी अरुचि बतायी। इस पर लार्ड महोदय ने उन्हें इच्छानुसार वस्त्र पहन कर आने की अनुमति दे दी। महात्मा जी खादी की लंगोटी लपेटे ही वायसराय से, सम्राट् से और संसार के बड़े-से-बड़े व्यक्ति

से मिलते हैं। संसार की समस्त राज-शक्तियाँ दीनों के इस आराध्य देव की आरती उतारती हैं और विश्व की बड़ी से-बड़ी शक्तियाँ इस लंगोट धारी के आत्म-बल का लोहा मानती हैं।

× × × ×

योग्यता और गुण बड़े-बड़े लोगों के हृदय में भी स्थान प्राप्त कर लेते हैं। उनके हृदयों पर भी अपनी प्रतिभा और व्यक्तित्व की अमिट छाप लगा देते हैं। जिसे केवल अनुमोदन कदापि प्राप्त नहीं कर सकता। अयोग्यता ही सम्मान के सर्वोच्च शिखर पर चढ़ सकती है। गुणरहित अनुमोदन वहाँ कभी नहीं पहुँच सकता। यदि उसे वहाँ पहुँचा भी दिया जाय तो वह वहाँ स्थायी रूप से नहीं रह सकता। यदि वह वहाँ स्थायी रूप से रह भी गया तो लज्जा से सदैव शिर नीचा किये रहेगा। योग्यता और गुण की परीक्षा होते समय वह भय से काँपा करेगा और परीक्षक की आँखों से बचने का अवसर ढूँढा करेगा, तथा पकड़े जाने पर गिड़-गिड़ा कर दया और कृपा की भीख माँगता फिरेगा।

गुण विहीन अनुमोदन एक पैर से पंगु है। वह उन्नति की दुर्गम पहाड़ियों पर वेग से चढ़ नहीं सकता। किसी तरह गिरते पड़ते वह कुछ दूर जाता है और फिर थक कर बैठ जाता है और आगे नहीं बढ़ सकता। परन्तु योग्यता के बलिष्ठ पैरों में अपार शक्ति भरी पड़ी है। वह सफलता की कंकरीली भूमि में तेजी से दौड़ती है और उन्नति के दुर्गम पर्वत पर प्रबल वेग से आगे बढ़ती है। मार्ग में पड़ने वाली अड़चनों की वह कुछ भी परवाह नहीं करती। अयोग्य व्यक्तियों द्वारा उत्तम स्थान खचाखच भरे रहने पर भी वह उनके बीच से अपना मार्ग इसी भाँति बना लेती है जैसे अत्यन्त भीड़ रहने पर भी बलिष्ठ व्यक्ति अपनी बलवान बाहुओं से भीड़ को चीरता हुआ अपने लिये स्थान बना लेता है,

और श्रेष्ठ स्थान पर जाकर बैठ जाता है। योग्यता कभी छिपी नहीं रह सकती। अयोग्यता को कोई ढँक नहीं सकता।

पं० श्री शिवकुमार शास्त्री षट्-शास्त्र के पण्डित थे। वे अपने समय के अद्वितीय विद्वान् थे। उनके अध्ययन-काल में विद्या का विक्रय नहीं होता था और न आधुनिक परीक्षाओं का प्रचलन ही था। शास्त्री जी के पाण्डित्य का धवल यश फैल रहा था, परन्तु उसका अभी उषा-काल ही था। उनके पास पण्डित-परिषदों और राजदरबारों से शास्त्रार्थ के निमित्त निमन्त्रण आया करते थे। एक बार वे बंगाल के अन्तर्गत किसी राजधानी में गये। वहाँ का राजकीय पण्डित-परिषद् आगन्तुक विद्वानों से प्रश्न करता था। उन जटिल प्रश्नों का उत्तर देने वाले विद्वान् श्रद्धा से देखे जाते थे। उनका समुचित सत्कार होता था और वे पुरस्कृत भी होते थे।

राज-पण्डितों ने शास्त्री जी से पूछा—"विप्रवर! आपने कहाँ तक शिक्षा पायी है? आपने कौन कौन सी परीक्षाएँ उत्तीर्ण की है?"

शास्त्रीजी बोले—"पण्डित प्रवर! मैंने षट्-शास्त्रों का अध्ययन किया है। परीक्षा तो कोई भी नहीं दी।"

"तो फिर आपके पांडित्य का प्रमाण क्या है? आपने तो कोई भी परीक्षा नहीं दी! आपकी योग्यता कहाँ तक है? ऐसे प्रश्न भी क्या किया जाय? आपके पास तो कोई भी उपाधि या प्रमाण-पत्र नहीं है?"—राज पण्डित बोले।

"मेरी योग्यता ही मेरा प्रमाण-पत्र है। आप कहीं का और कोई भी प्रश्न करके देखें—मेरा अध्ययन कितना विस्तृत है। बृहस्पति और शुक्राचार्य कौन सी परीक्षा पास थे? मैं भी वही परीक्षा पास हूँ"—स्वाभिमानी शास्त्रीजी ने कहा।

राजकीय पंडितों पर शास्त्री जी का पांडित्य छा गया एवं उनके स्वाभिमानी मस्तक श्रद्धा से इनके चरणों पर नत हो गये !

सनद कैसी! जमाल इनमें अगर है,
सो होगा खुद ज़ाहिर।
कोई सार्टिफिकेट से,
खूब सूरत हो नहीं सकता ॥

धन उत्तम वस्तु है। धनियों का आदर भी होता है। परन्तु विद्वत्ता और सद्‌गुण धन से भी श्रेष्ठ पदार्थ हैं निर्धन विद्वान् और गुणियों की धनवानों से भी अधिक पूछ होती है और उन्हें उनसे भी अधिक सम्मान मिलता है। फिर धन प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है परन्तु श्रद्धा नहीं। जन-वर्ग का प्रेम और उनकी सच्ची सहानुभूति नहीं। एक निर्धन लेखक, चित्रकार अथवा गायक का सम्मान करोड़पतियों से भी अधिक होता है। योग्य व्यक्ति ही लोगों के श्रद्धास्पद और प्रीति-भाजन बन सकते हैं। परन्तु इससे धनिकों को आप अयोग्य और अशिक्षित न समझ बैठें। धनवान् की योग्यता तो उसका धन ही है, नहीं; नहीं उसकी धनोत्पादक शक्ति; उसकी व्यापार-कला, उसकी कार्य दक्षता और उसका द्रव्योत्पादक विशाल मस्तिष्क है। धनी भले ही साहित्यिक और शब्द-शास्त्र का पंडित न हो परन्तु वह अर्थ-शास्त्र का आचार्य है—पुस्तकों का कीट नहीं—व्यवहारिक आचार्य। शिक्षित और अर्थ शास्त्र के उपाधि प्राप्त पंडित, उसकी प्रतियोगितामें नहीं ठहर सकते ! कदापि नहीं ठहर सकते !! जिस कार्य में दूसरों को हानि दीखती होगी उसमें भी वह लाभ की धारणा रखता है और जिस कार्य में प्रत्यक्ष लाभ होगा अनाड़ी व्यक्ति उसमें भी हानि कर बैठेगा !

हाँ, बहुत से धनिकों की योग्यता (सम्पत्ति सम्बन्धी योग्यता)

पैतृक भी हो सकती है और वस्तुतः स्वयं उन्हें इसका श्रेय नहीं दिया जा सकता। परन्तु कलाकारों और विद्वानों की योग्यता शत-प्रतिशत उनके अध्यवसाय और परिश्रम का ही प्रतिफल है। किसी भी क्षेत्र में गुण और योग्यता से प्राप्त प्रतिष्ठा स्थायी और सुरक्षित होती है। परोपकार और मानव-सेवा से उत्पन्न होने वाली श्रद्धा टिकाऊ होती है। सत्पथ पर मरने वालों का नाम अमर होता है। देश, समाज और राष्ट्र पर बलि होने वाले अमर शहीद होते हैं, पैगम्बर होते हैं, दीर्घ तपस्वी होते हैं और देवता स्वरूप होते हैं। उनके रक्त की प्रत्येक बूँद बहुत से देश-भक्त, अगणित राष्ट्रसेवी और अनेक महान् आत्माओं को जन्म देती है।

फिर किसी को अपनी निर्धनता खलती क्यों है? क्यों नहीं मनुष्य अपने गुण, अपनी विद्वत्ता तथा अपने सद्व्यवहारों से विश्व को आगे बढ़ाता? क्यों नहीं अपने अध्यवसाय से उसकी आवश्यकता पूर्ण करता? अपने अनुभव से उसे लाभान्वित करता और भावी-सन्तानों के लिये सुविधा और सरलता का द्वार खोल देता? मनुष्य क्यों नहीं उठता और अपने को योग्य और श्रेष्ठ बनाने का प्रयत्न करता? संसार को उसकी सहायता की अत्यन्त आवश्यकता है। वह उसके विचारों, कार्यों और उसकी योजनाओं का हार्दिक स्वागत करता है। उसके पथ-प्रदर्शन और नेतृत्व की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा है। समस्त सफलताएँ उसका अभिवादन करने को तैयार हैं। विजय उसकी बाट जोह रही है, और मातृ-भूमि उसकी ओर सतृष्ण नेत्रों से देख रही है। ऐसे समय वह कर्त्तव्य-च्युत होकर क्यों रुदन कर रहा है? क्यों वह अपनी शक्तियों को बिखेर कर और अपना गौरव भूल कर मारा-मारा फिर रहा है? क्या वह प्रातः स्मरणीय ऋषि-मुनियों की सन्तान नहीं है? क्या उसकी धमनियों में राणा प्रताप और

शिवाजी का रक्त प्रवाहित नहीं होता ? फिर क्यों वह दुःखी और असहाय बन कर भटकता फिरता है ? संसार में उसके लिये विस्तृत क्षेत्र है, प्रत्येक मार्ग खुला है। योग्य व्यक्तियों की सर्वत्र और सभी क्षेत्रों में पूछ और आवश्यकता है।

× × × ×

लन्दन के एक बाजार में जार्ज पी० बोड़ी की मूर्ति का उद्घाटन किया गया। उद्घाटन के समय लोगों ने उसके निर्माता—'शिल्पकार स्पेरी'—से कुछ वक्तृता देने का आग्रह किया। स्पेरी ने दो बार मूर्ति को स्पर्श करके कहा—"मेरा व्याख्यान, मेरे विचार और मेरे भाव सब कुछ यह मूर्ति ही है।" और चुप चाप जाकर अपने स्थान पर बैठ गया। ठीक है, 'Actions speak louder than words.'—"शब्दों की अपेक्षा कार्य अधिक उच्च स्वर से अपना वर्णन करता है।" शिल्पकार ने मूर्ति-निर्माण में अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दी थी। अपने मानसिक भावों और अपनी कल्पनाओं को मूर्ति में अङ्कित करके उसे सजीव बना दिया था! अपने सुन्दर हाथों से उसे सँवारने में उसने कोई बात उठा नहीं रखी थी और एक ललित कलामय मूर्त्ति बना कर जन-वर्ग को उपहार में दे दिया था। अब उसे कुछ कहने की कोई आवश्यकता नहीं थी। मूर्ति स्वयं ही कारीगर के मनोभावों का प्रतिबिम्ब थी। प्रवीणता सर्वोत्तम विज्ञापन है। योग्यता स्वयं एक अनुमोदन है—सर्वश्रेष्ठ अनुमोदन है। यथार्थता स्वयं ही कह देगी-कौन कितने सम्मानका पात्र है।

मनुष्य यह क्यों सोचता है कि वह साधारण परिस्थिति का है? वह ऐसा क्यों विचारता है कि उसका जन्म सम्पन्न कुल में नहीं हुआ है और वह व्यर्थ ही क्यों निराश होता है? आलसी मनुष्य शुभ अवसर से भी लाभ नहीं उठा सकते। गुण-हीन व्यक्ति उत्तम वंश में जन्म लेकर भी उत्कृष्ट पद पर नहीं पहुँच

सकते। कर्मवीर विपरीत वातावरण और घोर विरोध में भी आगे बढ़ जाते हैं। मनस्वी पैतृक सम्पत्ति अथवा सम्मान के भरोसे नहीं रहते। वे कँटीले पौदे से भी गुलाब की तरह, कीचड़ से भी कमल के सदृश निकल पड़ते हैं। अन्धकार में भी विद्युत् की भाँति चमक उठते हैं। होनहार को असुविधाएँ रोक नहीं सकतीं। वे अवश्य अपनी योग्यता से मुकुट-मणि होकर रहेंगे और अपने कुल-कमल के दिवाकर बनेंगे।

कौशेयं कृमिजं सुवर्ण मुपलाद् दूर्वापि गोरोमतः।
पङ्कात्तामरसं शशाङ्कउदधेरिन्दीवरं गोमयात्॥
काष्ठादग्नि रहेःफणादपि मणिर्गोपित्ततो रोचना।
प्राकाश्यं स्वगुणोदयेन गुणिनो गच्छन्ति किं जन्मना॥

कीड़ों से रेशम, प्रस्तर से स्वर्ण, गोरोम से दूर्वा, कीचड़ से तामरस (लाल कमल), समुद्र से द्विजराज (चंद्रमा) गोबर से इन्दीवर (नील कमल), काठ से अग्नि, सर्प फण से मणि, गो पित्त से गोरोचन उत्पन्न होता है। गुणी लोग अपने गुणों के कारण प्रख्यात, यशस्वी और सम्मानित होते हैं; श्रेष्ठ कुल में जन्म लेने—सुविधाएँ प्राप्त होने से ही नहीं।

प्रतिभावानों के विषय में नीति-विशारद कहते हैं—

"गुणाः पूजा स्थानं गुणिषु न च लिङ्गं न च वयः।"

गुणियों के गुण का ही सम्मान होता है, उनका लिङ्ग, और उनकी आयु नहीं देखी जाती—अर्थात वह स्त्री है अथवा पुरुष, अल्पायु है या वृद्ध इस पर विचार नहीं किया जाता। केवल गुण ही उनका भूषण है, वही उनकी सम्पत्ति है और वही उनका सर्वस्व है। उसी के कारण वे सर्वत्र पूजित होते हैं।

लूथर २५ वर्ष की आयु में ही सुधारक बन गया था। नेपो-लियन २५ वर्ष की अवस्था में ही इटली पर अधिकार प्राप्त कर

चुका था। न्यूटन २१ वर्ष की उम्र के पहलेही बड़े-बड़े आविष्कार कर चुका था। रोम की स्थापना करते समय रोम्यूलस केवल २० वर्षों का ही था।

सोलह वर्ष के अभिमन्यु ने दुर्योधन, कर्ण और द्रोणाचार्य ऐसे महारथियों के भी छक्के छुड़ा दिये थे। अर्जुन छात्रावस्था में ही अपने गाण्डीव के लिये प्रख्यात थे। एकलव्य नीच कुल का होकर भी धनुर्विद्या में राजकुमारों से बढ़-चढ़ कर था। राणा-प्रताप ने भीलों की सहायता से ही मुग़ल-साम्राज्य का विरोध किया था। शिवाजी किशोरावस्था में ही मरहटों के नायक हो गये थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र बचपन में ही कविता करने लगे थे और कुमारावस्था में ही इनकी रचनाएँ अच्छे-अच्छे पत्रों में प्रकाशित होने लगी थीं। मास्टर मोहन पाँच वर्ष की बाल अवस्था में ही संगीताचार्य हो गये थे।

मनुष्य दूसरों की चाटुकारी क्यों करता है? क्यों वह अभि-मानियों के आगे शिर झुकाये फिरता है और अपना स्वाभिमान खोता है? उसे केवल अपने कार्य की ही ख़ुशामद करनी चाहिये, केवल उसे ही प्रसन्न रखने का प्रयत्न करना चाहिये। उसे अपने कार्य को उतना ही सुन्दर और सलोना बना देना चाहिये जितना सुन्दर वह अपने मुख को देखने का इच्छुक है। उसे अपने उद्देश्य से उतना ही प्रेम रखना चाहिये जितना वह अपने जीवन से रखता है। अपने लक्ष्य का उसे उतना ही चिन्तन करना चाहिये जितना वह अपनी प्रेयसी का करता है। अपने अभीष्ट के पीछे सब कुछ भूल जाना चाहिये। केवल उसे ही सोचना विचारना चाहिये और उसी का स्मरण रखना चाहिये। लक्ष्य के लिये कष्ट सहने वालों को सफलता हृदय से प्यार करती है।

× × × ×

प्रसिद्ध चित्रकार 'माइकेल ऐंजिलों' से किसी ने पूछा— "महोदय ! आप अपना विवाह क्यों नहीं करते ?" एंजिलो ने उत्तर दिया—"महाशय ! मैं अपनी शादी पुनः कैसे कर सकता हूँ ? जब कि चित्रकारी मेरी हृदयेश्वरी है और जो सौत का रहना पसन्द नहीं कर सकती ?" वह चित्रकारी से उतना ही प्रेम करता था जितना साधारण जन अपनी प्रेमिका से करते हैं। इसी से एंजिलो अपनी चित्रकारी के लिये अमर भी है।

श्रेष्ठ व्यक्ति केवल श्रेष्ठ कार्य करते हैं और अपनी प्रशंसा करना अपने कार्य तथा गुण ग्राहक पारखी मनुष्यों के लिये छोड़ देते हैं।

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़े न बोलैं बोल।
हीरा मुख से ना कहे, लाख हमारा मोल ॥

एकाग्रता

एकाग्रता एक हाथ में तलवार और दूसरे में सफलता का मुकुट लिये खड़ी रहती है। पहले हाथ से वह विफलता का शिरश्छेद करती है और दूसरे से एकाग्र व्यक्ति के शिर पर सफलता का मुकुट रखती है।

× × ×

जहाँ एक राष्ट्र के बनने बिगड़ने की बात हो, जहाँ करोड़ों प्राणियों के जीवन-मरण का प्रश्न हो और जहाँ एक देश के उत्थान-पतन का सवाल हो; वहाँ राष्ट्र-निर्माताओं के एकाग्र मस्तिष्क ही महत्वपूर्ण निर्णय कर सकते हैं और देश का भाग्य-विधान बना सकते हैं।

× × ×

अपने मन को सुस्थिर करके अपनी शक्तियों को केन्द्रित करने का नाम एकाग्रता है। उन्नतिशील बनने के लिये एकाग्रता बड़ी आवश्यक वस्तु है। तीव्र और प्रतिभाशाली होने के लिये एकाग्र होना अनिवार्य है। सूर्य्य की प्रखर किरणें उष्ण होने पर भी आग नहीं लगा सकतीं, किन्तु वे ही रवि-रश्मियाँ आतशी शीशे में केन्द्रित होकर भस्मीभूत कर सकती हैं। एक ही स्थान पर अनवरत गिरने वाला जल-बिन्दु भी कठोर पाषाण में छिद्र कर देता है, परन्तु वेग के साथ बह जाने वाला जल-प्रवाह पत्थर पर लगी मिट्टी धोने के अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकता।

सुनहली विजय का कारण परिश्रम नहीं एकाग्रता है। एकाग्रता बिना किया गया परिश्रम बोझ ढोने और शिर की बला टालने के सिवा और कुछ नहीं है। मनुष्य को कार्य करते समय सब कुछ

भूल जाना चाहिये, उसी में तन्मय हो जाना चाहिये, ऐसा कि वह और कार्य दोनों एक हो जायँ। फिर विफलता होगी ही नहीं और कठिनाई के स्थान में आनन्द आयेगा।

वैज्ञानिकों की धारणा है कि हरी-हरी घास में इतनी शक्ति छिपी पड़ी है कि उससे संसार की समस्त मोटरों और चक्कियों का सञ्चालन हो सकता है। केवल उसे वाष्प एञ्जिन के पिस्टन रॉड पर केन्द्रित करने की आवश्यकता है। ऐसी अमूल्य शक्ति पृथ्वी के गर्भ में अन्तर्हित है और इधर-उधर बिखरी पड़ी है। इसी भाँति ऐसे अनेक व्यक्ति हैं जिनमें अद्भुत और असाधारण शक्ति भरी हुई है, परन्तु ये विलक्षण शक्तियाँ भी इसी प्रकार बिखरी पड़ी हैं और अस्त-व्यस्त हैं। इन्हें व्यवस्थित और एकाग्र करके बड़े-बड़े कार्य किये जा सकते हैं। मनुष्य यदि एकाग्र हो सके तो वह अपने जीवन में महान् परिवर्तन कर सकता है और अपने शक्ति-भण्डार से विश्व को लाभान्वित कर सकता है। कुछ कर दिखाने के लिये एकाग्र होना परमावश्यक है। एकाग्रता में अपूर्व चमत्कार भरा पड़ा है। विफलता इसके नाम से घबराती है और सफलता सम्मान और विजय लेकर इसके चरणों में नत होती है।

यदि कोई श्रेयस्कर कार्य करना चाहता है, अपनी शक्तियों, विचारों और अपने प्रयत्नों से मानव-समाज की सेवा करने का इच्छुक है, तो उसे एकाग्र बनने का अभ्यास डालना चाहिये। उसे चाहिये कि वह अपनी शक्तियों, विचारों और अपने परिश्रम को एकाग्रता द्वारा उन्हें बिखरने न दे। अपने सामर्थ्य को किसी एक ही प्रधान विषय की ओर तथा किसी एक ही प्रमुख क्षेत्र की तरफ़ लगा दे। जो भी उसका उत्तम उद्देश्य हो, और जो कुछ भी उसका पवित्र ध्येय हो उसी की पूर्ति में उसे अपनी समस्त शक्तियाँ लगा देनी चाहिये।

अपने उद्देश्य को साधारण मत समझिये। कार्य करते समय आप उसी में लीन हो जाइये और आनन्द का अनुभव कीजिये। उस समय बाहर की कोई बात, कोई अन्य विचार मन में भी न आने दीजिये। आप इतने तन्मय हो जायँ कि समय, स्थान और अपना अस्तित्व सब कुछ भूल जायें—आप और कार्य दोनों एक हो जायें। फिर देखिये, एकाग्रता आपको किस महत्ता तक पहुँचा देती है।

अस्थिर प्रकृति के पुरुष जो कार्य वर्षों में भी समाप्त नहीं कर सकते एकाग्र व्यक्ति उसे महीनों में पूर्ण कर सकते हैं। चंचल चित्त वाले जो कार्य महीनों में भी नहीं कर सकते उसी को एकाग्र पुरुष हफ्तों में, बल्कि चन्द दिनों में ही पूर्ण कर सकते हैं। डँवा-डोल विचार वाले जिस कार्य को करने में सारा दिन लगा देते हैं उसे स्थिर बुद्धि के मनुष्य कुछ घण्टों में ही पूर्ण कर सकते हैं।

अस्थिरता जहाँ मारी-मारी फिरती है और चञ्चलता जहाँ से पराजित होकर भागती है, वहीं और उसी स्थान पर एकाग्रता शानदार विजय लेकर लौटती है। जहाँ बहुचित्तता डरती हुई धीरे-धीरे चलती है और जिस जगह चञ्चलता काँपती हुई गिन-गिनकर पैर रखती है, वहाँ एकाग्रता सिंहनी की भाँति निर्भीक और निडर रहती है तथा अपने लक्ष्य पर प्रबल वेग से टूट पड़ती है। एकाग्रता आँधी की तरह उठती है, मेघ की भाँति छा जाती है, बिजली के सदृश चमकती है और अल्पकाल में ही अपनी विजय यात्रा पूर्ण कर लेती है। भविष्य में बड़े होने वाले पुरुषों ने एकाग्रता के रहस्य को समझा है। एकाग्रता जीवन में महान् होने वाले महारथियों का प्रिय अस्त्र रही है क्योंकि इसका निशाना अचूक होता है।

महारथी अर्जुन की सफलता का कारण उनकी एकाग्रता ही

थी। इसी ने उन्हें सफल धनुर्धर बनाया था। आचार्य द्रोण की परीक्षा में पार्थ ही प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुए थे। द्रौपदी-स्वयंवर के समय मत्स्य-वेध की प्रतियोगिता में कौन्तेय ने ही कुन्ती का मुख उज्ज्वल किया था। समस्त राजकुमारों की अवहेलना करके भिक्षु-वेषधारी सव्य साची को ही जयमाल पहना कर पाञ्चाली ने वरण किया था। एकलव्य एकाग्रता में अर्जुन से भी बढ़ा-चढ़ा था और इसी से वह पार्थ से श्रेष्ठ धनुर्धर भी था। दाहिने हाथ का अँगूठा गुरु-दक्षिणा में गुरु द्रोणाचार्य को अर्पित करके भी वह पैर के अँगूठे से बाण छोड़ता था—एक दम अचूक और अव्यर्थ! महाराज पृथ्वीराज के शब्द-वेधी बाण में एकाग्रता की ही शक्ति काम कर रही थी।

× × ×

महर्षि दत्तात्रेय एकाग्रता के अनन्य पुजारी थे। उनके चौबीस गुरुओं में से शर-कार (बाण बनाने वाला) भी एक गुरु था। बात यह हुई कि एक बार महाराज की सवारी निकली किसी विशेष अवसर पर, खूब सज धजकर और धूम-धाम से। सम्राट् के स्वागत में सारा नगर सजाया गया था। सम्राट् के दर्शनार्थ और मनोहर जलूस देखने को जन-वर्ग उमड़ पड़ा था। सड़कों पर दर्शकों की अपार भीड़ थी। स्त्री-पुरुष और बाल-वृद्ध सब इस नयनाभिराम दृश्य को देखने को उत्कण्ठित हो रहे थे। किसी को काम धन्धे और घर-बार की सुध-बुध न थी। ऐसे समय एक शर-कार अपनी दूकान में बैठा बाण बना रहा था—एकदम एकाग्र और तन्मय होकर!

महर्षि दत्तात्रेय उसकी कार्य-तल्लीनता और एकाग्रता, चकित होकर देखते रहे। भीड़ समाप्त होने के पश्चात् उन्होंने उससे पूछा:—

"क्योंजी, महाराज की सवारी का दृश्य कैसा मनोरम था? कितना आकर्षक और नेत्र-रञ्जक!"

शर-कार अनभिज्ञ की भाँति चौंक कर बोला—"ऐं......! सवारी!!—महाराज की सवारी!! इधर से गयी!! नहीं, नहीं; इधर से तो कोई भी राजकीय सवारी नहीं निकली! मैं तो घण्टों से यहीं बैठा कार्य कर रहा हूँ। इधर से जाती तो क्या मुझे ज्ञात न होता?"

"अजी, अभी-अभी ही तो गयी है। सैकड़ों, हजारों लोगों ने उसे देखा है!"

माथा ठोंकते हुए शरकार बोला—"हरे! हरे!! आप भी क्या कमाल कर रहे हैं! किस स्वप्न-लोक की बात कह रहे हैं आप? क्या यह भी छिप सकने की बात है?"

महाराज की सवारी का जलूस शर-कार की दूकान के सामने से होता हुआ ही गया था। परन्तु शर-कार अपने कार्य में इतना तल्लीन था कि उसे वाह्य संसार का कुछ भी पता न था। सम्राट् का सुसज्जित रथ, हाथी, घोड़े, ऊँट और असीम जन-समूह से बना लम्बा जलूस भी वह न देख सका! उसकी छाया भी उसके दृष्टि पटल पर अंकित न हो सकी!! दूकान के सामने बजने वाले ढोल नगारों का गगनभेदी शब्द, जनता का जय-घोष और कोलाहल पूर्ण जन-रव भी उसका ध्यान भंग न कर सका!!

महर्षि शर-कार की बातें सुन कर एक दम अवाक् रह गये और उसकी ऐसी एकाग्रता पर उनकी अटूट श्रद्धा हो गयी उन्होंने उसे प्रणाम किया और उसे अपना गुरु मान लिया!

× × ×

सूक्ष्म कार्यों को एकाग्रता ही सम्पादित करती है। महत्वपूर्ण समस्याओं को एकाग्रता ही हल कर सकती है, आविष्कारों और

नवीन रचनात्मक कार्यों को एकाग्रता ही जन्म देती है। परिश्रम कार्य रूपी समुद्र में डुबकी लगाता है और अपने साथ सीप, शम्बूक और समुद्र के कंकड़-पत्थर लेकर बाहर आता है। एकाग्रता कार्य की गहराई तक गोता लगाती है और अपने साथ मोती, माणिक्य, विद्रुम और रत्न-राशियाँ सिन्धु से उपहार लेकर आती है। परिश्रम केवल बोझ ढोता है किन्तु एकाग्रता किसी विषय की गम्भीर विवेचना करती है।

× × ×

"महाशय! आप इन पुस्तकों को लिखने का अवकाश कब पाते हैं? आखिर इतना अधिक कार्य आप कैसे कर डालते हैं?" एडवर्ड बुलवर लिटन से लोग पूछा करते थे।—"मैं कोई कार्य बहुत अधिक नहीं करता। इसी से इतना अधिक कार्य कर पाता हूँ। यदि आज कोई बहुत अधिक काम करेगा तो कल वह बहुत कम काम कर सकेगा। काम करने वाले को थकावट से सर्वदा बचना चाहिये। कालेज छोड़ने के बाद मैंने अनेक ग्रन्थों का अध्ययन किया और बहुत भ्रमण भी किया है। मैंने राजनीतिक विषयों में भी भाग लिया और जीवन की अन्य पारिवारिक आवश्यकताओं को भी पूर्ण किया है। इसके अतिरिक्त मैंने ६० ग्रन्थों की रचना भी की है। जिनमें कुछ के लिये विशेषरूप से अध्ययन करना भी अनिवार्य था। क्या आप अनुमान कर सकते हैं कि मुझे अपने अध्ययन के लिये कितना समय मिला होगा? मैंने तीन घण्टे से अधिक इसमें कभी नहीं लगाये। पार्लियामेण्ट के अधिवेशन काल में तो ये तीन घण्टे भी मुझे नहीं मिल पाते थे। परन्तु अपने ये तीन घण्टे मैं बड़ी सावधानी और एकाग्रता से व्यय करता था। उस समय अध्ययन अथवा पुस्तक लिखने के अतिरिक्त मेरे मस्तिष्क में अन्य बातों का विचार भी नहीं रहता था।" मिस्टर

एडवर्ड बुलवर लिटन की सुनहली प्रतिभा और उनकी सफलता का एक मात्र रहस्य उनकी एकाग्रता ही थी।

"किसी प्रधान विषय पर वार्तालाप करते समय मुझे बाहरी संसारका स्मरण तक नहीं रहता। अपने विषय की तल्लीनता में मुझे समय और स्थान का भी ज्ञान नहीं रहता।"

—हेनरी

× × ×

"किसी कार्य को करते समय उस कार्य के अतिरिक्त संसार की अन्य कोई भी बात मेरे सामने नहीं रहती।"

—चार्ल्स किंगस्ले

× × ×

एस० डी० कालरिज का मस्तिष्क बहुत सी विचित्रताओं का भण्डार था। परन्तु वह बहुचित्तता से सदैव पीड़ित रहा करता था। उसका कोई उद्देश्य निश्चित नहीं था। 'कभी कुछ' और 'कभी कुछ' ने उसका जीवन नष्ट कर डाला था। चित्त की अस्थिरता ने उसे जीवन पर्यन्त असफल ही रखा। प्रतिदिन अनवरत परिश्रम करने पर भी अन्त में असफलता का कफ़न लपेटे ही वह संसार से विदा हुआ था!! नित्य वह नये नये निश्चय करता था और कभी भी एक विचार पर दृढ़ नहीं रहता था। उसका जीवन कल्पना में ही व्यतीत हो गया।

उसकी मृत्यु के उपरान्त उसके कमरे में दर्शन और मनोविज्ञान पर उसके लिखे हुए ४० हजार निबन्ध मिले, परन्तु वे सब के सब अपूर्ण और अधूरे थे। वह कभी किसी विषय पर लिखना आरम्भ करता था और फिर उसे छोड़ कर किसी दूसरे विषय पर। चित्त की इसी चञ्चलता और मन की अस्थिरता ने उसे सदैव असफल और अपूर्ण रखा। अभागा कालरिज कभी एकाग्रता और चित्त की

स्थिरता का मूल्य नहीं समझ सका और इन दिव्य-शक्तियों से होने वाले चमत्कार से सदैव अनभिज्ञ ही रहा। सोच विचार में ही उसने सारा समय—सारा जीवन खो दिया। संसार उसके ज्ञान, विवेक, परिश्रम और पाण्डित्य से लाभ उठाने से सर्वथा वञ्चित ही रह गया!

लार्ड ब्रोम ने बैरिस्टरी में चान्सलरशिप प्राप्त कर ली थी। वैज्ञानिक आविष्कारों के लिये भी वे प्रसिद्ध थे। एडम्स कहा करते थे कि वे केनिंग के समान ही प्रतिभाशाली थे। परन्तु उनमें एकाग्रता न होने के कारण वे जीवन-पर्य्यन्त असफल ही रहे और इतिहास अथवा साहित्य में कुछ भी स्थान प्राप्त न कर सके।

एक दिन एक चित्रकार मि० ब्रोम के साथ उनके महल का चित्र लेने गया। उसने लार्ड महोदय से केवल पाँच सेकेण्ड तक स्थिर बैठे रहने का निवेदन किया था। उन्होंने इसे स्वीकार तो कर लिया, परन्तु वे हिले बिना नहीं रह सके। फलस्वरूप चित्र में धब्बा पड़ ही गया। यद्यपि यह एक साधारण बात है परन्तु जीवन पर इसका अधिक प्रभाव पड़ता है। लार्ड ब्रोम अपनी शताब्दी के प्रसिद्ध पुरुष हुए होते परन्तु उनमें स्थिरता नहीं थी। इसी से वे जहाँ जाते वहाँ धब्बा पड़ा ही करता था। इसी भाँति ऐसे कितने ही व्यक्ति हैं जो उच्च और महान् हो सकते हैं परन्तु केवल एकाग्रता के अभाव में उनके कामों में पग-पग पर धब्बे लगा करते हैं और वे बार-बार विफल होते रहते हैं।

एकाग्र व्यक्ति ही जीवन में कुछ करके दिखा सकते हैं। जो जितने ही महान् होते हैं वे उतने ही एकाग्र भी। विश्व के समस्त विवेक पूर्ण विषय, संसार की सारी जटिल समस्याएँ एकाग्रता द्वारा ही हल हो सकती हैं। जहाँ एक राष्ट्र के बनने बिगड़ने की बात हो, जहाँ करोड़ों प्राणियों के जीवन मरण का प्रश्न हो और जहाँ

एक देश के उत्थान पतन का सवाल हो वहाँ राष्ट्र-निर्माताओं के एकाग्र मस्तिष्क ही उचित निर्णय कर सकते हैं और एक देश का भाग्य-विधान बना सकते हैं। एकाग्रता योग्यता का प्राण है। एकाग्रता रहित योग्यता अपरिपूर्ण और निरर्थक है।

विषय जितने ही महत्व का होगा, उसे विचारने में उतने ही अधिक एकाग्र मस्तिष्क की भी आवश्यकता पड़ेगी।

विश्व-बन्धु महात्मा गाँधी, प्रेसिडेन्ट ट्रूमन, मार्शलच्यांगकाईशेक और श्री चर्चिल ऐसे डिक्टेटर, राष्ट्र-नायक और राजनीतिज्ञ पेचीदा कठिनाइयों और व्यग्र कर देने वाली परिस्थितियों में घिरे रहकर भी अपने विचार एकाग्र मस्तिष्क से ही निश्चित करके-संसार के समक्ष रखते हैं। उनके विवेकपूर्ण वक्तव्य के प्रत्येक शब्द परिष्कृत और परिमार्जित होते हैं। रूस के भाग्य विधाता—"श्री स्टालिन"—मौत को नंगी नाचते देख कर भी एकाग्र मस्तिष्क से ही निर्णय करके अपना सन्देश सेना को और देश को देते हैं एवं राष्ट्र का सञ्चालन करते हैं। उनके प्रत्येक शब्द में उत्साह, ओज, स्वातन्त्र्य-प्रेम और स्वदेश पर सर्वस्व न्योछावर कर देने की प्राण-प्रदायिनी शक्ति भरी रहती है; जिससे "रूसी" घर बार, बाल-बच्चों और जीवन की प्रत्येक बहुमूल्य और प्यारी से प्यारी चीजों को भी स्वदेश की भेंट करने को उत्सुक रहते हैं और प्राणों को हथेली पर लिये ही वे मौत से लड़ते हैं और बर्बर शत्रुओं की छाती पर सवार हो जाते हैं!

समय-परिपालन

चाहे कोई कितना ही कार्य कुशल और समय का सदुपयोग करने वाला क्यों न हो परन्तु यदि वह समय पालक (*Punctual*) नहीं है तो उसकी सारी योजना, उसके सम्पूर्ण-कार्य-क्रम निष्फल और निरर्थक ही होंगे। समय टाल कर कार्य करने वाले व्यक्ति के अधिक परिश्रम करने पर भी उसके कार्य का कुछ भी मूल्य नहीं होता। प्रत्येक कार्य के लिये उचित और उपयुक्त समय होता है। यदि इस शुभ अवसर को खो दिया जाय तो यह तो निश्चित ही है कि फिर ऐसा स्वर्ण-सुयोग नहीं मिल सकता और यह भी स्पष्ट है कि फिर कार्य करने पर उसका वह महत्व नहीं रह जाता जो उसे ठीक समय पर करने से हो सकता था।

संसार के जितने भी प्रतिभा सम्पन्न और गौरवशाली व्यक्ति हुए हैं वे सब समय-परिपालन (*Punctuality*) के प्रबल समर्थक थे। वे समय का मूल्य समझते थे और अनुशासन से दृढ़ता पूर्वक बल्कि कठोरता से समय-पालन करते थे। महान् होने वालों को समय-परिपालन करना ही होगा। आज तक कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ जो समय-पालन न करके महापुरुष हुआ हो अथवा उन्नति के शिखर पर पहुँचा हो। सूक्ष्मता से विचार करने पर ज्ञात होता है कि समय-परिपालन ही सारे कार्यों की सफलता की कुञ्जी है। "*Be in time and do every thing in time.*" अर्थात् समय पर तैयार हो जाओ और प्रत्येक कार्य समय पर करो। समय-परिपालन के दिव्य-आदर्श पर चल कर कितने ही भाग्य हीन, निराश्रय और

अभागे बालकों ने भी संसार में चकाचौंध उत्पन्न कर दी। कितने ही निर्धन लक्ष्मीवान् हो गये। अनेक अशिक्षित और निरक्षर व्यक्ति अपनी विद्वता और बुद्धिमानी के लिये विश्व में विख्यात हो गये।

किसे पता था कि परतन्त्र देश में उत्पन्न होने वाला, एक निर्धन विधवा का अभागा पुत्र संसार में अपनी धाक जमा सकेगा? परन्तु आज नेपोलियन के नाम से विश्व का कौन-सा शिक्षित व्यक्ति अपरिचित है? नेपोलियन, जिसने अपने देश के विदेशी शासकों के विरुद्ध आवाज़ उठायी थी, जिसने यूरोप के राष्ट्रों में तहलका मचा दिया था; जिसने विशाल आल्प्स को अपनी सेना के जाने का राज-मार्ग बना लिया था; वह साहसी नेपोलियन पक्का समय परिपालक था! वह ठीक और उपयुक्त समय को कभी नहीं खोता था। इसी अनुकूल अवसर को न खोने के कारण ही वह बड़ी-बड़ी लड़ाइयों में भी विजयी होता था। "*Napoleon studied his watch as carefully as he studied the map of the scene of war.*" नेपोलियन ठीक समय का उतने ही सतर्कता से ध्यान रखता था जितनी सावधानी से युद्ध-स्थल के चित्र का।"

एक बार नेपोलियन ने अपने सेनानायक को भोजन के लिये निमन्त्रित किया। सेनानायक के आने में विलम्ब हुआ और नेपोलियन निश्चित समय पर भोजन करने बैठ गया। वह भोजन करके उठ ही रहा था कि सेना नायक आ पहुँचे। उन्हें देख कर नेपोलियन ने कहा—"महाशय, भोजन का समय तो व्यतीत हो चुका! हाँ; अब कार्य का समय है। चलिये, कार्य आरम्भ करें।"

जान क्विन्स एडम्स (*John Quincey Adams*) समय-परिपालन के लिये प्रख्यात थे। उनका समय इतना निश्चित और ठीक समझा जाता था कि लोग कहते हैं—"*Men took their time from him*

as from an electric clock." जिस प्रकार विद्युत् घड़ी द्वारा ठीक-ठीक समय जाना जाता है उसी भाँति एडम्स के कार्यों को देख कर लोगों को ठीक समय ज्ञात होता था—यहाँ तक कि मि० एडम्स के कार्य-क्रम के आधार पर लोग अपनी घड़ी तक मिला लिया करते थे ! मि० एडम्स अपना प्रत्येक कार्य ठीक समय पर करते थे। घड़ी की चाल के सदृश वे अपने कार्य में व्यस्त रहते थे और घड़ी की सूइयों की भाँति उनके कार्यों का अवलोकन करने से एक दम ठीक समय जाना जा सकता था !

एक बार एक सभा में पर्याप्त संख्या में सदस्य गण आ गये थे। कार्य का समय भी हो गया था। लोगों को विलम्ब असह्य हो रहा था। सदस्यों को उतावली थी। कुछ सदस्यों ने—"समय हो चुका है।" कह कर कार्य आरम्भ करने का प्रस्ताव किया। इस पर एक दूसरे सदस्य ने कहा—"मित्रो ! ठहरो, थोड़ा सा और ठहरो !! अभी मि० एडम्स नहीं आये हैं, और वे एक प्रमुख सभासद हैं, ऐसे सभा की कार्यवाही भी फीकी ही होगी !" लोगों में इस विषय पर वाद-विवाद हो ही रहा था कि मि० एडम्स आ पहुँचे। लोगों में उनके देर से आने पर कानाफूसी हो रही थी; परन्तु घड़ी मिलाने से ज्ञात हुआ कि मि० एडम्स निर्धारित समय पर ही आये थे। वहाँ की घड़ी ही तीन मिनट तेज़ चल रही थी !

यदि कोई किसी सभा का सभापति निर्वाचित हुआ हो और वह देर से आये तो उसके स्थान पर दूसरा सभापति चुन कर कार्य आरम्भ होगा जो उसके लिये गौरव और शोभा की बात नहीं है; परन्तु फिर भी उसे ऐसा होने पर अप्रसन्न नहीं होना चाहिये क्योंकि सभा का कार्य देर से आरम्भ होने से निश्चित समय से आये हुए व्यक्तियों का बहुमूल्य समय व्यर्थ नष्ट होगा। अतः दूसरी बार वे स्वयं देर से आयेंगे। देर से सभा का कार्य आरम्भ होने से

कार्यवाही के लिये थोड़ा सा ही समय बच रहेगा। फलस्वरूप कितने ही वक्ताओं को बोलने का अवसर नहीं मिलेगा। प्रमुख वक्ता अत्यन्त संक्षिप्तता के कारण अपनी महत्व पूर्ण बातें कहने से वञ्चित ही रह जायेंगे तथा उपयोगी विषयों पर भी पर्याप्त प्रकाश नहीं पड़ सकेगा। एक व्यक्ति की असावधानी तथा लापरवाही का दुष्परिणाम निर्दोष जन-समाज का भोगना सर्वथा अनुचित है।

समय पर कार्य आरम्भ हो सके इसका सुनहला नियम यही है कि बिना किसी की प्रतीक्षा किये उसे समय पर—ठीक समय पर-प्रारम्भ कर दिया जाय। पहले कुछ कठिनाई पड़ेगी; परन्तु जब लोग अभ्यस्त हो जायेंगे तो स्वयं समय पर पहुँचे रहेंगे। जल्दी या देर से आरम्भ करने से कभी-कभी बहुत सी हानियाँ उठानी पड़ती हैं। समय से पूर्व आरम्भ किये जाने वाले कार्य अपरिपक्व तथा त्रुटिपूर्ण होते हैं। देर से प्रारम्भ होने वाले कार्य अधूरे और अव्यवस्थित होते हैं तथा उपयुक्त समय के पश्चात् समाप्त होते हैं। सार्वजनिक कार्यों में ठीक समय का ध्यान रखना तो अत्यन्त अनिवार्य है ही, क्योंकि उसकी शीघ्रता या बिलम्ब से जन-समुदाय की लाभ-हानि सम्बद्ध है; परन्तु दैनिक जीवन में भी समय-परिपालन बड़ा ही लाभप्रद और अनिवार्य है। महत्वपूर्ण सभाओं के प्रतिनिधि अपनी सभा ठीक समय से आरम्भ करते हैं। बड़ी-बड़ी नाटक या सिनेमा कम्पनियों के मैनेजर निश्चित समय पर अपना अभिनय अथवा खेल आरम्भ कर देते हैं। वे किसी विशिष्ट दर्शक के आगमन की भी प्रतीक्षा नहीं करना चाहते। वे अपने अतिथियों अथवा सम्मानित दर्शकोंके आगमन की भी प्रतीक्षा नहीं करना चाहते। वे अपने अतिथियों अथवा सम्मानित दर्शकों को फर्स्ट अथवा स्पेशल क्लास का निःशुल्क टिकट (फ्री पास) दे देंगे। अभिनय शाला में भी उनके स्वागत सत्कार का आयोजन करते रहेंगे, किंतु

इतने पर भी उनकी प्रतीक्षा करके खेल को विलम्ब से आरम्भ नहीं करेंगे। खेल विलम्ब से आरम्भ करने से समय से आये हुए दर्शकों का समय नष्ट होता है। इससे दूसरे दिन वे स्वयं देर से आते हैं जिससे वे ठीक खेल आरम्भ होने के समय ही पहुँचे। ऐसी दशा में उस दिन यदि खेल निश्चित समय पर आरम्भ हो गया तो वे पिछड़ जायेंगे तथा अपने आनन्द और मनोरञ्जन का आरम्भिक भाग व्यर्थ खो बैठेंगे। दर्शकों को असुविधा अथवा अरुचि होने से कम्पनी के व्यापार को भारी धक्का लगता है। इतना ही नहीं दर्शकों में आफ़िसर, बैरिष्टर, सेठ तथा विशिष्ट व्यक्ति भी होते हैं जो समय व्यर्थ नहीं खो सकते और टिकट खरीदा हुआ होने पर भी विलम्ब के कारण वे रंगशाला से उठकर बाहर चले जाते हैं— अप्रसन्न से होकर! और दर्शकों की असुविधा के लिये कम्पनी को उत्तरदायी होना पड़ता है। सिनेमा कम्पनियों के बुद्धिमान् कर्मचारी विलम्ब से आये हुए अपने प्रियजनों को खेल का अदृष्ट भाग दृश्य समाप्त होने पर तथा अन्य दर्शकों के चले जाने के पश्चात् पुनः दिखला देते हैं, परन्तु देर से आरम्भ करके जन-वर्ग का समय कदापि नष्ट नहीं करते।

× × × ×

नेलसन ने एक समय कहा—"मेरी सफलता का मुख्य कारण यह है कि मैं निश्चित समय से पन्द्रह मिनट पूर्व ही तैयार हो जाता हूँ।" इस पर चौदहवें लुइस ने कहा—"नहीं, नहीं, समय-परिपालन ही सम्राटों का शिष्टाचार है।"

राष्ट्रपति वाशिंगटन समय-परिपालन का बड़ा ध्यान रखते थे। उनके भोजन का समय चार बजे था। एक बार उन्होंने कांग्रेस के नवीन सदस्यों को अपने यहाँ भोजन के लिये निमन्त्रित किया। सदस्यगण थोड़ी देर बाद आये। आने पर उन्होंने राष्ट्रपति को

भोजन करते पाया। उनको राष्ट्रपति का यह अशिष्ट-व्यवहार बुरा लगा। सदस्यों का कुभाव राष्ट्रपति ताड़ गये। उनको सान्त्वना देते हुए राष्ट्रपति ने कहा—"बन्धुओ, समय अमूल्य है। निर्धारित समय पर निर्धारित कार्य करना ही समय का सद्व्यय है। समय-परिपालन में ही सफलता का सार सञ्चित है!"

उन्होंने विनोद करते हुए पुनः कहा—"महाशय! मेरा रसोइया 'अभी मेहमान आये हैं या नहीं, कभी नहीं पूछता। वह यही पूछता है—"अभी भोजन का समय हुआ या नहीं?"

इसी प्रकार एक बार राष्ट्रपति वाशिंगटन का सेक्रेटरी कुछ देर से आया। राष्ट्रपति उस पर कुपित हो उठे और उससे देर से आने का कारण बतलाने को कहा। सेक्रेटरी भय से काँपने लगा और बहाना करते हुए उसने कहा—"श्रीमान्, मैं चला तो ठीक समय से ही था, किन्तु शोक है मेरी घड़ी ही सुस्त हो गयी!"

राष्ट्रपति ने उसे डाँटते हुए पुनः कहा—"महाशय! यदि ऐसा है तो आप दूसरी निश्चित समय बतलाने वाली घड़ी रखें अन्यथा हमें निश्चित समय पर आने वाला दूसरा सेक्रेटरी नियुक्त करना पड़ेगा।

समय पर कार्य करने वाले का सब लोग विश्वास और सम्मान करते हैं। *A man who keeps his time will keeps his words.* जो अपने समय का पक्का है वह अपनी बात का भी पक्का होगा।

समय बिता कर कार्य करने वाला अविश्वासी और झूठा समझा जाता है, और संसार उसे घृणा की दृष्टि से देखता है। यदि कोई वादा करके समय पर रुपये न दे तो लोग उसे क्या समझेंगे? यदि कोई आने का समय देकर उस समय न पहुँचे तो लोगों की उसके प्रति कैसी भावनाएँ होंगी? संसार को उसकी बात पर क्षण भर के लिये भी विश्वास नहीं होगा। वह झूठा समझा जायगा

और थोड़ी सी भूल के कारण लोगों की उस पर से श्रद्धा उठ जायगी।

समय टालकर कार्य करने वाला, समय पर होने वाले कार्य से उत्पन्न लाभ से ही वञ्चित नहीं रहता बल्कि कभी-कभी वह अपने को महान् संकट और भीषण आपत्तियों में भी डाल देता है। उसे कभी-कभी ऐसी हानियाँ उठानी पड़ती हैं जो कुछ वर्षों तक पूर्ण नहीं हो सकतीं और कुछ का तो आजन्म पूर्ण होना असम्भव सा हो जाता है। एक असाध्य रोगी को यदि ठीक समय पर दवा न दी जाय तो उसके जीवन का अन्त हो जायगा। एक बैरिस्टर समय पर नहीं पहुँचता है और एक निर्दोष व्यक्ति फाँसी पर लटका दिया जाता है। एक ड्राइवर की घड़ी कुछ सुस्त हो जाती है और दो ट्रेनें परस्पर लड़ जाती हैं। कई अमूल्य जीवन नष्ट होते हैं और भीषण क्षति होती है। एक व्यक्ति रुपये लेकर देर से आता है इतने ही में एक प्रतिष्ठित महाजन का दीवाला हो जाता है। किसी घर में आग लगने पर यदि उसे बुझाने में थोड़ी सी भी देर की गयी तो सारा घर और धीरे-धीरे पड़ोस के अन्य घर भी स्वाहा हो जायेंगे। एक सेना नायक अपनी सेना एकत्र करने में थोड़ी देर करता है। इसी अवसर पर शत्रु आक्रमण करते हैं, और उसके सैनिकों के तैयार होने के पूर्व ही शत्रु उन्हें बन्दी कर लेते हैं। हज़ारों निहत्थे और शस्त्रधारी तलवार के घाट उतार दिये जाते हैं। एक स्वतन्त्र देश परतन्त्रता की बेड़ी में जकड़ दिया जाता है।

जिसे लोग थोड़ी देर और कुछ मिनट समझते हैं वह उनका सर्वनाश करने के लिये पर्याप्त है। अग्नि की एक चिनगारी रूई के ढेर को जलाने के लिये बहुत है। मनुष्य को अपना कार्य ठीक समय पर करना चाहिये और कभी भी एक मिनट की भी देर नहीं करनी चाहिये यह कुछ मिनटों की देर उसे पतन के गर्त में ले

आयगी। कुछ मिनटों की देर ने क्या कितनी ही उज्ज्वल आशाओं को अन्धकार में विलीन नहीं कर दिया? कुछ मिनटों की देर ने क्या कितने ही व्यक्तियों को असफल और निराश नहीं कर दिया? कुछ मिनटों की देर के कारण क्या कितने ही निर्दोष सूली पर नहीं चढ़ गये? कुछ मिनटों के विलम्ब के कारण क्या कितने ही स्वतन्त्र राष्ट्र परतन्त्र नहीं हो गये? क्या अब भी मनुष्य कुछ मिनटों को तुच्छ समझेगा? क्या वह समय बिता कर उससे उत्पन्न होने वाली हानियों को पूर्ण कर सकता है? क्या वह खोये हुए समय को फिर से वापस ला सकता है? यदि नहीं, तो उसे उचित समय पर कार्य करना सीखना चाहिये और अपने उपयुक्त अवसर को हाथ से खोना नहीं चाहिये।

क्या उसे पता नहीं कि समय परिपालन के महत्व से अनभिज्ञ रहने वाले कितने ही होनहार व्यक्तियों ने अपने चमचमाते हुए भविष्य को नष्ट कर डाला? कितने ही बुद्धिमान् और कार्य-कुशल व्यक्ति समय खोकर रोते ही रह गये। जीवन की दौड़ में असफल और अनुत्तीर्ण होने वाले व्यक्तियों की आकृति पर समय परिपालन न करने का दुष्परिणाम अब तक अंकित है।

नेपोलियन का कथन है—"केवल पाँच मिनटों के महत्व को न जानने के कारण ही आस्ट्रियनों की पराजय हुई थी।"

कुछ घड़ियों के विलम्ब ने ही नेपोलियन को भी असफल और अपमानित कर दिया, और वह वाटर लू की लड़ाई में पराजित हो गया था। ग्राउच—नेपोलियन का प्रिय मित्र—समय पर नहीं आ सका। नेपोलियन उसकी प्रतीक्षा में था। इधर समय भी उसे अमूल्य अवसर खोते देखकर उसे वन्दी बनाने की चेष्टा में था। अन्त में नेपोलियन पकड़ा गया और वन्दी बना कर सेन्ट हेलेना द्वीप में निर्वासित कर दिया गया।

कर्नल राइल (Colonel Rahl) ताश खेलने में निमग्न था। इसी अवसर पर उसे वाशिंगटन का आदेश-पत्र मिला। इस पत्र में राष्ट्रपति ने उसे; सेना को प्रस्थान कराने की आज्ञा दी थी। कर्नल राइल ताश खेलने में तल्लीन था। उसने पत्र बिना पढ़े ही जेब में रख लिया और वह पुनः खेल में लग गया। खेल समाप्त होने पर उसने पत्र पढ़ा। फिर वह सैनिकों को एकत्र करने और युद्ध की तैयारी करने में लग गया। परन्तु—

"का वर्षा जब कृषि सुखाने,
समय चूकि पुनि का पछिताने।"

कर्नल राइल ने बड़ी स्फूर्ति और तत्परता की। किन्तु शोक! समय बीत चुका था! अवसर निकल चुका था!! शत्रुओं ने उन्हें बन्दी कर लिया और वे अपने प्राण खो बैठे!! केवल कुछ मिनटों की देर के कारण ही कर्नल राइल स्वतन्त्रता, सम्मान और जीवन सर्वस्व खो बैठा!!

सीजर देर से राज-सभा में एक समाचार सुनाने गया और उसे प्राणों से हाथ धोना पड़ा। मनुष्यको प्रत्येक कार्य निश्चित समय पर करने का अभ्यास डालना चाहिये। ठीक समय जानने के लिये एक ठीक समय देने वाली घड़ी रखना लाभप्रद होगा। करीब-करीब ठीक समय बतलाने वाली घड़ी समय पर धोखा दे सकती है।

आज का कार्य आज ही समाप्त कर डालना ठीक है। Tomorrow will never come कल कभी नहीं आता। Never put off till tomorrow what can be done to-day" जो कार्य आज किया जा सकता है अथवा जिसे आज ही कर देना आवश्यक हो, उसे कल के लिये नहीं छोड़ना चाहिये—कदापि नहीं छोड़ना चाहिये। इतिहास के पृष्ठों में कल की प्रतीक्षा करने वाले कितने ही बड़ी-बड़ी महत्वाकांक्षाएँ और उज्ज्वल आशाएँ रखने

वाले व्यक्ति विलखते हुए मिलेंगे। शोक! उन्होंने आलस्य और अवहेलना के भुलावे में आकर और दूसरे दिवस को अधिक चमकीला समझ कर उसे अपना सुनहला 'वर्तमान' और 'आज' कल वापस ला देने के विश्वास पर उधार दे दिया था, परन्तु वे दोनों जमामार (आलस्य और अवहेलना) उसे लेकर पुनः नहीं लौटे। कल वापस कभी नहीं आता।

"नहीं भविष्यत् पर पतियाओ,
मृतक भूत को जानो भूत।
काम करो सब वर्तमान में,
सिर प्रभु, मन दृढ़ यह करतूत॥"

जिसे मनुष्य "पीछे हो जायगा" समझता है वह कार्य कभी नहीं होता और सदैव पीछे ही पड़ा रहता है। जो शक्ति आज का कार्य कल के भरोसे पर छुड़वाती है उसी शक्ति (आलस्य) को अपने वश में करके साहसी और श्रेष्ठ पुरुष उसे आज ही समाप्त कर देते हैं।

किसी ने एक फ्रांसीसी राजनीतिज्ञ से पूछा—"आप इतना अधिक कार्य कैसे कर डालते हैं जब कि आप सामाजिक कार्यों में भी सम्मिलित होते हैं?"

फ्रांसीसी ने उत्तर दिया—"मैं आज का कार्य कल पर कभी नहीं छोड़ता। उसे आज ही समाप्त कर देता हूँ!"

ठीक समय से केवल पाँच मिनट ही पीछे रहने के कारण कितने ही व्यक्ति प्रतियोगिता में हरा दिये गये। उन गौरवयुक्त और प्रतिष्ठित पदों पर उन्हीं के मित्रों और प्रतियोगियों ने अपना अधिकार जमा लिया जो ठीक समय पर कार्य करने पर उनके होते और अवश्य उनके ही होते। चाहे कोई कितना ही शीघ्र दौड़ने वाला क्यों न हो परन्तु यदि वह दौड़ की प्रतियोगिता में आधी

मिनट भी पीछे आता है तो क्या वह असफल और निराश नहीं होगा? जीवन की दौड़ तो इससे भी कई गुनी श्रेष्ठ और महत्त्व-पूर्ण है।

समय अमूल्य है। इसका सत्-कार्यों द्वारा सदुपयोग करना ही जीवन को सार्थक बनाना और अपने जीवित रहने का प्रमाण देना है। यह केवल समय-परिपालन से होगा। किस-किस व्यर्थ के कार्यों में मनुष्य समय खोता है, किस-किस बेकार की बातों में उसका समय निकल जाता है और कहाँ-कहाँ आलस्य की चट्टानों से उसकी जीवन नौका टकराती है, समय-परिपालन उसे पहले ही सूचित और सचेष्ट करके मार्ग प्रदर्शित करता है।

यदि किसी का समय व्यर्थ के कार्यों में अथवा आलस्य में व्यतीत हो जाता है, यदि उसे अपना लक्षित कार्य करने का अवसर प्राप्त नहीं होता, यदि उसका कुसंग नहीं छूटता, यदि बातचीत उसका समय खा डालती है, यदि उसके बहुत से कार्य अधूरे ही रह जाते हैं और कुछ छूट भी जाते हैं तथा उसे अपने कार्यों को जल्दी और उतावली में समाप्त करना पड़ता है (जिससे वे बिगड़ जाते हैं) तो इसके लिये एक सरल और सुगम उपाय है, और वह है—"समय-परिपालन।" अपने कार्यों को निश्चित और निर्धारित समय पर करने का अभ्यास मनुष्य को सफलता और पूर्णता के पथ पर ले जाता है। इसके लिये अपना "समय-विभाग" बना लेना अधिक हितकर होगा। मनुष्य यदि अपनी दिन-चर्य्या समय-परि-पालन के साँचे में ढाले तो उसे प्रत्येक कार्य के लिये पर्याप्त और उपयुक्त समय मिल सकेगा और उसके कार्य भली-भाँति सुसम्पा-दित होंगे एवं वह एक अनुपम आदर्श होगा।

परिश्रम और भाग्य

नमस्यामो देवान्ननु हतविधेस्तेऽपि वशगाः।
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियत कर्मैकफलदः॥
फलं कर्मायत्तं किममरगणैः किं च विधिना।
नमस्तत्कर्मेभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति॥

देवताओं को हम नमस्कार करते हैं परन्तु वे तो विधि के अधीन हैं, हम विधि को नमस्कार करते हैं परन्तु विधाता भी हमारे कर्मों के अनुसार ही फल देता है, इसलिये जब देवता और विधि दोनों ही कर्म के वशीभूत हैं तब उनसे क्या प्रयोजन है, हम तो कर्म को ही नमस्कार करते हैं जिस पर विधाता का भी वश नहीं चल सकता।

—श्री भर्तृहरि

"यदि तुम्हें ज्ञान की पिपासा है, तो परिश्रम करो; यदि तुम्हें भोजन की आकांक्षा है, तो परिश्रम करो और यदि तुम आनन्द के अभिलाषी हो तो उद्योग करो; पुरुषार्थ ही (प्रकृति का) नियम है।"

—रस्किन

विश्व में उथल-पुथल मचाने वाले, संसार का नेतृत्व ग्रहण करने वाले और राष्ट्रों का निर्माण करने वाले व्यक्तियों में कोई अलौकिक शक्ति या असाधारण प्रतिभा नहीं होती। छोटे-से-बड़े तथा साधारण श्रेणी से महान् बनने वाले सभी मनुष्य अपूर्व मेधावी और कुशाग्र बुद्धि नहीं होते। भविष्य में कुछ कर दिखाने की इच्छा रखने वाले इन कर्मवीरों का जीवन बहुधा अध्यवसाय और अनवरत परिश्रम से ही परिपूर्ण होता है। अविरल उद्योग से ही

ये कर्मठ योद्धा जीवन-संग्राम में विजयी होते हैं। शिक्षालय में सर्व-प्रथम उत्तीर्ण होने वाले, छात्र-वृत्ति और स्वर्ण-पदक विजेता छात्रों के जीवन पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होगा कि बहुधा स्वच्छ मस्तिष्क वाले लड़कों ने परिश्रम करके प्रथम स्थान प्राप्त किया है और अपनी बुद्धि को विकसित करके अपनी प्रतिभा बढ़ायी है। इसके प्रतिकूल प्रखर बुद्धि वाले लड़कों ने अपनी प्रज्ञा के भरोसे रहकर और परिश्रम से विरत होकर अपनी उन्नति का अवरोध कर डाला है, और यदि ऐसे लोगों ने अध्यवसाय को अपनाया है तो निश्चय एक अपूर्व प्रकाश से विश्व को ज्योतिर्मय भी कर दिया है। विश्व की कर्मभूमि में परिश्रम की ही अर्चना होती है। उद्योग ही मनुष्य को विजय से विभूषित करता है और उसे सफलता का वरदान देता है। श्रम-विहीन बुद्धि से कोई लाभ नहीं। अध्यवसाय के सम्मिश्रण से ही ज्ञान उपयोगी सिद्ध हो सकता है और मानवी-श्रद्धा की वस्तु बन सकता है।

सतत परिश्रम ने ही संसार की ज्ञान-राशि को सञ्चित किया है। इसी के द्वारा विज्ञान के आश्चर्यकारी आविष्कार हुए हैं। इसी के द्वारा मिश्र के निर्जन भूमिखण्डों में पिरामिडों का निर्माण हुआ, जेरूसलम के विशाल और दर्शनीय मन्दिरों की रचनाएँ हुईं, चीन की प्रख्यात प्राचीर का निर्माण किया गया और ताजमहल सा अद्वितीय भव्य-भवन निर्मित हुआ। अविरल उद्योग के कारण ही रामायण और महाभारत से अनुपम ग्रन्थ लिखे गये, वेदों तथा उपनिषदों की रचनाएँ हुईं। अनवरत अध्यवसाय ने कितने ही मूर्खों और अशिक्षितों को विद्वान् बना दिया। असंख्य निर्धनों को सम्पत्ति से विभूषित कर दिया, अनेक अप्रसिद्ध व्यक्तियों को प्रख्यात बनाया एवं उन्हें सम्मान से अलंकृत कर दिया। वर्षों छेनी और हथौड़ा चलाकर ही, शिल्पकार म्हेतरे अपनी मूर्त्तियों की सुन्दरता

के लिये प्रख्यात हुए थे। अधिक काल तक कूँची चलाने के पश्चात् ही राजा रविवर्म्मा के चित्रों को प्रधानता प्राप्त हुई थी। आचार्य द्विवेदी एवं उपन्यास सम्राट् प्रेमचन्दजी वर्षों लेखनी घिसने के पश्चात् ही साहित्य-गगन के सूर्य्य-चन्द्र हो सके थे। कारनेगी, राकफील्ड और जे० एन० ताता परिश्रम करके ही दरिद्र से धन-कुबेर हुए हैं। परिश्रम में ही सफलता का सार निहित है।

पूर्वजों और आदरणीय नेताओं ने अनवरत परिश्रम से वर्षों संसार की सेवा करके, जनता-जनार्दन की शुश्रूषा में अपनी अमूल्य आयु का अधिक-से-अधिक अंश अर्पित करके ही, सदियों से सोये राष्ट्रों को जगाया, पुरातनकाल से परतन्त्र हुए देशों को स्वतन्त्रता प्राप्त करने की शक्ति दी, शताब्दियों से सताये गये श्रमजीवियों की आँखें खोलीं, मृतप्राय मजदूर और किसानों में जाग्रति का जीवन-सञ्चार किया, स्वाभिमान खोये सिंह-सुअनों को उनके ज्योतिर्मय स्वरूप का प्रतिबिम्ब दिखला कर, उनके पूर्वजों की वीरता, धीरता और शौर्य्य की स्मृति दिला कर एवं सिंहनाद से उनकी भीरुता भगा कर उन्हें आत्म-गौरव और आत्म-सम्मान की शिक्षा दी है। इसी ने नूतन परिवर्तन से वसुन्धरा की काया पलट की है। विश्व को आगे बढ़ाने में मनुष्यों की कितनी ही पीढ़ियाँ परिश्रम करते-करते समाप्त हो गयीं। हमारे पूर्वजों के अविरल उद्योग से ही हमारी असंख्य कठिनाइयाँ दूर हो सकी हैं, हमें आगे बढ़ने का अधिक से अधिक सरल मार्ग प्राप्त हो सका और हमारी सुविधा का द्वार खुल सका है। संसार पूर्वजों के अकथ परिश्रम, उनके त्याग और तपश्चर्य्या का चिर-ऋणी है। आलसी और अकर्मण्य केवल अपना जीवन ही दुःखद नहीं बनाते बल्कि परिश्रम से उदासीन होकर वे भावी-वंशजों का भविष्य भी नैराश्य और अंधकारपूर्ण बना

देते हैं। क्या इतने पर भी मनुष्य परिश्रम का महत्व नहीं समझेगा? क्या अभी भी वह सच्चे हृदय से उद्योग करने से जी चुरायेगा? क्या अब से भी वह अध्यवसाय में प्राण-पण से संलग्न नहीं होगा? वह क्यों अपनी शक्तियों का उपयोग नहीं करता, और कहता है—"भगवान् ने मुझे कुछ भी नहीं दिया!" वह व्यर्थ अधीर क्यों हो रहा है—आँसू क्यों बहा रहा है; जब कि परम पिता का हाथ उसके मस्तक पर है!" उसे परिश्रम को अपनाना चाहिये। "पुरुष सिंह जे उद्यमी लक्ष्मी ताकी चेरि।" जीवन में कुछ कर दिखाने के लिये उसे अपने पूर्वजों के पद्-चिह्नों पर चलना चाहिये और कर्म-परायण होकर अपनी स्मृति छोड़ जानी चाहिये। परिश्रम ही सफलता और महानता का स्वर्ण सोपान है।

× × × ×

'जगबन्धुदत्त' बरीसाल जिले के बानरी पाड़ा ग्राम में एक प्रतिष्ठित किन्तु निर्धन ब्राह्मण परिवार में उत्पन्न हुआ था। बचपन में लू लगने के कारण इसके कान में दोष उत्पन्न हो गया था और यह ऊँचा सुनने लगा था। यह था बड़ा परिश्रमी और कुशाग्र बुद्धि; किन्तु निर्धनता और कर्ण विकारके कारण यह कुछ पढ़ लिख नहीं सका। बाल्यावस्था में ही पेट की चिन्ता सिर पर सवार होने पर इसने अपने ग्राम में एक छोटी सी दूकान खोल ली। दुर्भाग्य-वश उसमें इसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। विफलता से व्याकुल होकर इसने अफीम खा लिया। किसी प्रकार भगवत्कृपा से इसे प्राण-भिक्षा मिली। इसी भाँति इसन ऊब कर एक बार पुनः अफीम खा लिया और एक श्रेष्ठ-चिकित्सक के उपचार से इसकी जीवन रक्षा-हो सकी। कदाचित अभी और भी दुःख भोगना अभागे के भाग्य में अंकित था।

एक दिन इसने घर का कोई रजत-आभूषण चुरा लिया और उसे विक्रय करके इसने कुल १४) प्राप्त किये। रुपये लेकर यह कलकत्ते भाग गया। वहाँ अपने भाग्य की परीक्षा करने की इसकी अन्तिम इच्छा थी और पुनः विफल होने पर अफीम से अपना अन्त करने की थी एक बेढब सनक!

कलकत्ता—बंगाल की गौरवपूर्ण राजधानी! व्यापार का श्रेष्ठ केन्द्र!! और प्रसिद्ध बन्दरगाह!!! जहाँ नित्य सैकड़ों जलयान विदेशों से खिलौने; घड़ियाँ, दवाइयाँ, रङ्ग और भिन्न-भिन्न वस्तुएँ लाते हैं तथा बदले में भारतवर्ष से रूई, गल्ला तथा सोना-चाँदी प्रतिदिन ढो ले जाते हैं। बंगाल की खाड़ी और हिन्द महासागर की उत्ताल तरंगे जिसका पद-वन्दन करती हैं और राज्य-लक्ष्मी जहाँ नित्य आँख मिचौनी खेला करती है। वहाँ भोला जगबन्धु आया केवल चौदह रुपये लेकर और सिन्धु-सुता का स्नेह-भाजन बनने की आकांक्षा से!! इसका यहाँ सफल होना कितना कठिन, दुष्कर और असम्भव है! नादान लड़का मूर्खता-वश चला आया व्यर्थ प्राण देने!!

कलकत्ते में इसकी एकमात्र पूँजी—चौदह रुपये धीरे-धीरे समाप्त हो चली। बालक जगबन्धु दिन भर काम की धुन में घूमा करता और सायंकाल एक-दो पैसे का चबेना खाकर गङ्गातट पर सो जाया करता था। यह बाज़ार के मोड़ पर खड़ा होकर प्रति टिकिया एक पैसे के भाव से स्याही बेचा करता था। उन दिनों काली स्याही की टिकिया का प्रचलन नहीं था। उसे बड़ी निराशा और विपत्ति का सामना करना पड़ता था। लड़के के परिश्रम, इसकी कष्ट सहिष्णुता तथा इसके अध्यवसाय ने सफलता का आँचल पकड़ लिया और परिश्रम से प्रसन्न होने वाली वह श्रेष्ठ देवी उसे छुड़ा न सकी। धीरे-धीरे इसकी "जे० बी० डी०" मार्का स्याही की ख्याति हो

गयी। इसने फिर किराये पर दूकान ले ली और अपने व्यापार की वृद्धि की। आगे चल कर इसने प्रचुर द्रव्य उपार्जित किया।

फुट-पाथ पर खड़े होकर स्याही बेचने वाले, चने चबा कर निर्वाह करने वाले तथा स्नान-घाट के पत्थरों पर विश्राम करने वाले इस अनाथ, आश्रयहीन एवं बहरे बालक ने परिश्रम द्वारा अपने दुर्भाग्य को सौभाग्य में परिणत कर दिया। निर्धनता की गोद में जन्मने वाला यह अशिक्षित लड़का अध्यवसाय को अपना कर लक्ष्मी का वरद पुत्र होकर रहा। इसने श्री गौड़ीय मठ के भवन-निर्माण के निमित्त छः लाख से ऊपर का दान दिया। श्रीगौड़ीय मठ बाग बाजार कलकत्ते में अवस्थित है। "उद्योगे नास्ति दारिद्रयम्।" परिश्रम करने पर दरिद्रता नहीं रहती।

× × ×

सोलह वर्ष की आयु में मैट्रिक पास करके एक लड़का बीस रुपये मासिक वेतन पर चार्टर्ड बैंक का क्लर्क नियुक्त हुआ। क्लर्की के साधारण पद से ही इसने बैंक की कार्य प्रणाली का समुचित ज्ञान प्राप्त कर लिया और 'बुक-कीपर' बन गया। इसी समय बैंक आफ इण्डिया की संस्थापना हुई और यह लड़का वहाँ रु. १५०) मासिक पर सब एकाउन्टेन्ट (Sub-accountant) हो गया। इस नवीन बैंक के कार्य कर्त्ताओं में सबसे सुयोग्य यही बालक था। इससे बैंक की आरम्भिक व्यवस्था का समस्त भार इसी पर आ पड़ा। बैंक की नीति और व्यापार विषयक कार्य सर लल्लूभाई साँवलदास करते थे और प्रबन्ध यही लड़का। इसका नाम 'सोराबजी' था। कार्य के सम्पर्क से सोराबजी का अच्छे-अच्छे व्यापारियों और औद्योगिकों से अनायास ही परिचय हो गया। सब एकाउन्टेन्ट होते हुए भी सोराबजी को मैनेजर के अभाव में उसका भी कार्य सँभालना पड़ता था। परन्तु वहाँ पर एक योरपीय मैनेजर नियुक्त होकर आ गया।

उसने एक यूरोपीय एकाउन्टेंट भी ला रखा। यह नवीन एकाउन्टेन्ट सोराबजी की बुद्धि और इनकी प्रतिभा को देखकर चकित हो गया और सोराबजी इसकी आँखों में खटकने लगे।

सोराबजी उसकी कुभावना ताड़ गये। इन्हें बड़ी ठेस लगी और हार्दिक वेदना हुई कि ये स्वदेशी बैंक कितने निरर्थक हैं—जिनका सञ्चालन यूरोपीयों द्वारा हो और जिनमें भारतीयों का अपमान हो। इससे ये एक शुद्ध स्वदेशी बैंक स्थापित करने की चेष्टा करने लगे। सौभाग्य से उसी समय स्वदेशी आन्दोलन आरंभ हो गया। उस समय मर्चेन्ट्स बैंक में एक मैनेजर की आवश्यकता थी। परन्तु सोराबजी को २६ वर्ष का होने से अनुभवहीन युवक समझे जाने के कारण उसमें स्थान नहीं मिल सका। इससे स्वदेशी बैंक स्थापित करनेका इनका विचार और भी प्रबल हो उठा।

सोराबजी ने एक स्वदेशी बैंक स्थापित करने का आयोजन किया इसके लिये उन्होंने बड़े-बड़े लोगों से परामर्श किया, किन्तु उन लोगों ने बैंक की सफलता पर सन्देह प्रकट करते हुए अपना निरुत्साह दिखाया। परन्तु सोराबजी इससे निराश नहीं हुए और न उन्होंने अपना उत्साह ही छोड़ा। उन्होंने कुछ अन्य लोगों से वार्तालाप करके बैंक के संरक्षकों की एक समिति बनायी। इस बैंक का नाम "सेन्ट्रल बैंक आफ इण्डिया" रखा गया और २१ दिसम्बर १६२१ ई० को इसकी रजिस्ट्री हो गयी। फिरोज़शाह मेहता इसके सभापति निर्वाचित हुए। बैंक की सफलता इतनी शीघ्र हुई कि तीन मास के भीतर ही २० लाख के शेयर बिक गये। सोराबजी ८००) मासिक वेतन पर बैंक के व्यवस्थापक नियुक्त हुए।

सेन्ट्रल बैंक इतना विश्वस्त और प्रमाणित समझा गया कि सरकार ने उसे म्युनिस्पैलिटी का रुपया जमा करने की भी स्वा-

धीनता दे दी। बम्बई स्टैंडिंग कमेटी ने भी सेन्ट्रल बैंक में कई लाख रुपये जमा किये। आज सेन्ट्रल बैंक की शाखाएँ भारत वर्ष के प्रायः समस्त शहरों तथा व्यापारिक केन्द्रों में हैं।

सेण्ट्रल बैंक की समुन्नति का श्रेय सोराबजी को है। इनके कार्य से प्रसन्न होकर सरकार ने इन्हें 'सर' की उपाधि से सम्मानित किया। सोराबजी ने लन्दन में भी इसकी एक शाखा खोल दी।

अकथ परिश्रम और लगन से, मैट्रिक पास एक साधारण लड़का बीस रुपये के क्लर्क से, सेण्ट्रल बैंक का संस्थापक व्यवस्थापक सर्वेसर्वा और सर्वप्रिय हो गया। 'सर सोराबजी पोचखान वाला' के नाम से इन्हें सभी व्यक्ति जानते हैं। बैंक के विषय में इनकी सी प्रतिभा रखने वाले व्यक्ति देश भर में विरले ही हुए हैं।

× × × ×

कलकत्ते के सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश होकर आये थे एक गौराङ्ग—'सर विलियम जोन्स' मिस्टर जोन्स की संस्कृत अध्ययन की उत्कट लालसा थी। उस समय सामाजिक बन्धन के कारण कोई भी शिक्षक उन्हें संस्कृत पढ़ाना स्वीकर नहीं करता था। ऐसी परिस्थिति में मि० जोन्स बड़े व्यग्र हुए। कलकत्ते में अपनी अभिलाषा पूर्ण न होते देख कर वे नवद्वीप चले आये। नवद्वीप उस समय संस्कृत का केन्द्र था। यहाँ भी शीघ्र ही उनकी मन कामना पूर्ण न हो सकी।

बड़ी कठिनता और अन्वेषण के पश्चात् एक संस्कृतज्ञ वैद्य ने उनको पढ़ाना स्वीकार किया। अध्यापक जी की गुरु-दक्षिणा थी रु० १००) मासिक तथा उनके आगमनार्थ पालकी भेजनी पड़ती थी जिसमें रु० ३०) मासिक व्यय होते थे। वैद्य महोदय का शरीर ही उनका कुटुम्ब था। अतएव 'आगे नाथ न पाछे पगहा' के नाते उन्हें समाज का कोई भी भय नहीं था।

अध्ययन के निमित्त बंगले के नीचे का कमरा निर्धारित किया गया तथा उसके फ़र्श पर संगमरमर लगवा दिये गये। दो चार कुर्सियों तथा एक टेबुल के अतिरिक्त कमरे में से सारी वस्तुएँ हटा ली गयीं। हुगली के जल से कमरे की दीवालों तथा फर्नीचर को प्रतिदिन धोने के लिये एक हिन्दू-भृत्य नियुक्त हुआ। अध्ययन का समय प्रातःकाल निश्चित किया गया और गौराङ्ग महोदय को इसके पूर्व एक प्याले चाय के अतिरिक्त अन्य कुछ भी न खाने का आदेश दे दिया गया। माँस मदिरा का गृह में प्रवेश भी सर्वथा निषेध कर दिया गया। पंडित जी के वस्त्र धारण करने के निमित्त एक पृथक्‌ कमरा था। उसमें दो जोड़ी वस्त्र रहते थे। अध्यापक जी नित्य प्रति उन्हें बदलते और नौकर उन्हें धोया करता था। संस्कृत प्रेमी 'जोन्स' ने सारी बातें स्वीकार कर लीं।

अभी एक बाधा और थी। पण्डित जी अङ्गरेजी से सर्वथा अनभिज्ञ थे और मि० जोन्स पूरी हिन्दी भी नहीं जानते थे। बड़ी-बड़ी कठिनता से भटक भटक कर वे हिन्दी बोल पाते थे। इसी के सहारे अध्ययन आरम्भ हुआ। 'रामः रामौ, रामाः' से श्री गणेश किया गया। एक अड़चन और भी थी। अध्यापक जी किसी बात को पुनः पूछने पर झल्ला उठते थे। किन्तु मि० जोन्स ने अपनी सेवाओं तथा अपने विनम्र व्यवहार से गुरु जी की कृपा प्राप्त कर ली थी। एक वर्ष के अनवरत परिश्रम से जोन्स साहब किसी भाँति संस्कृत में अपने विचार प्रकट करने लगे।

"शकुन्तला" पढ़ कर जोन्स महोदय मुग्ध हो उठे। उन्होंने अंगरेजी के गद्य पद्यमें इसका अनुवाद कर दिया। यद्यपि वह अनुवाद उतना मौलिक तथा श्रेष्ठ नहीं था तथापि जर्मनी का प्रख्यात कवि "गेटे" उसे पढ़ कर, उस पर कविता करने की अपनी हार्दिक-इच्छा को संवरण नहीं कर सका। उस अनुवाद के आधार

पर पद्य-रचना करके ही उसे सान्त्वना प्राप्त हुई। इससे यूरोप वालों को भी संस्कृत-साहित्य की सम्पन्नता और समुन्नतता ज्ञात हुई। आगे चल कर "जाति-च्युतता" का बन्धन ढीला होने से मि० जोन्स को धर्म-शास्त्र के शिक्षक थोड़े से परिश्रम से ही प्राप्त हो गये। 'सर विलियम जोन्स' ही बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के संस्थापक हैं। मि० जोन्स का संस्कृत-प्रेम और इनकी अध्ययन-लिप्सा अनुकरणीय है।

× × ×

जिस कार्य को अन्य लोग चार घण्टों में करेंगे उसे ही मि० ग्लेडस्टन एक घण्टे में सम्पादित कर देते थे। अपनी इसी तीव्र-गति से वे दिन भर में सोलह घण्टे कार्य करते थे। उनका कार्य यन्त्र के सदृश निश्चित और एक ही सा नहीं रहता था, उसमें बुद्धि और चातुर्य्य की बड़ी आवश्यकता रहती थी। मि० ग्लेडस्टन इङ्गलैंण्ड के प्रधान-मन्त्री थे। इतने उच्च पद पर होकर भी वे परिश्रम के किसी कार्य को तुच्छ नहीं समझते थे। अवसर के समय अपने उद्यान में लकड़ी चीरना उनका मनोरञ्जन तथा प्रिय व्यायाम था। वे किसी भी कार्य को दूसरों के लिये, अथवा उसे अपूर्ण नहीं छोड़ते थे। एक बार वे एक वृक्ष को काट रहे थे। उसे काटते-काटते सन्ध्या हो गयी। अन्धकार बढ़ने तथा किसी आवश्यक कार्य वशात् मि० ग्लेडस्टन उसे अधिक समय तक काट न सके। दैवात् रात्रि में भीषण आँधी चल पड़ी। दूसरे दिन घूमते हुए जब मि० ग्लेडस्टन उपवन में पहुँचे तो उन्होंने उस पादप को उन्मूलावस्था में पाया। कितना अच्छा हुआ तरुवर स्वयमेव उखड़ गया। परन्तु मि० ग्लेडस्टन इससे प्रसन्न नहीं हुए। वे खेद प्रकट करते हुए बोले—"शोक! मेरे अपूर्ण कार्य को प्रभञ्जन को पूर्ण करना पड़ा!

लार्ड वेलेज़ली सदैव प्रसन्न चित्त रहा करते थे। वे अस्सी वर्ष के—इतने वृद्ध—होने पर भी उतने ही प्रसन्न मन रहते थे जितने बीस वर्ष की युवावस्था में! वे बड़े संयमी और उद्योगी थे। आत्म-संयम के लिये वे कभी-कभी उपवास भी किया करते थे। वे परिश्रम अधिक करते थे और शयन थोड़ा। यहाँ तक कि ३५ वर्ष की आयु पर्यन्त उन्हें एक दिन भी शय्या पर शयन करने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ!

× × ×

बहुत से व्यक्ति काम करने से घबराते हैं। वे यही समझ बैठे हैं कि—"अच्छा-अच्छा भोजन और बढ़िया-बढ़िया वस्त्र मिल जाया करें और कुछ भी परिश्रम न करना पड़े; बस यही जीवन का महान् आनन्द है।" परन्तु उनकी यह धारणा निर्मूल है। कुछ भी कार्य न करने का अभिप्राय है कि संसार को उनसे कोई लाभ नहीं है, वे संसार में निरर्थक और व्यर्थ हैं। इससे उनके जीवन का महत्त्व ही कुछ नहीं रह जाता और पृथ्वी पर उनका रहना न रहना समान सा, बल्कि रहना बोझ स्वरूप प्रतीत होता है, क्योंकि जीवन-धारण करने के लिये वे दूसरों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का उपयोग करते हैं और इसके बदले में उनके लिये करते कुछ भी नहीं। दूसरे, कार्य के संघर्ष में न रहने से उत्पादन-शक्ति तथा कार्य-सम्पादन योग्यता में जंग लगना आरम्भ हो जाता है। धीरे-धीरे वह बिल्कुल शिथिल और निर्जीव हो जाती है। तीसरे, मनुष्य के गुण, उसकी बुद्धिमत्ता तथा कार्य-क्षमता की परीक्षा कार्य करने से ही होती है। चौथा, परिश्रम करने के पश्चात् जब शारीरिक तथा मानसिक इन्द्रियाँ श्रान्त हो जाती हैं, तब उन्हें विश्राम देने से वे पुनः सजीव हो जाती हैं तथा शरीर में नव-जीवन का सञ्चार हो जाता है, एवं स्फूर्ति तथा शक्ति की अभिवृद्धि होती है, क्योंकि

अध्यवसाय में लगे रहने के कारण शक्तियों का एक प्रकार का व्यायाम हो जाता है और इस प्रकार बाहर निकलने वाली प्राण-शक्ति के बदले में दूसरी नवीन जीवन-शक्ति प्राप्त होती है, जो बेकार रहने वालों को प्राप्त नहीं हो सकती। इसके अतिरिक्त उद्योग-शील व्यक्ति के हृदय में सद्भावनाओं का निवास रहता है और निठल्ले मनुष्य के मस्तिष्क में पैशाचिक-वृत्ति भरी रहती है। एक बात और, परिश्रमी व्यक्ति को विश्राम से जो सुख-शान्ति तथा प्रसन्नता प्राप्त होती है वह श्रमहीन और अकर्मण्य को दुर्लभ है। उद्योग में ही गौरव है। अकर्मण्यता मनुष्य-जीवन को अनुपयोगी और सार रहित बना देती है।

The heights by great men,
Reached and kept,
Were not attained,
By sudden flight,
But they, while their,
Companions slept,
Were toiling up ward,
In the night.

महापुरुषों ने अपना गौरव एवं अपनी महत्ता अनायास ही उड़ कर प्राप्त नहीं की है, बल्कि जब उनके साथी नींद में खर्राटे भर रहे थे, उस समय भी वे रात में बड़ी देर तक अकथ परिश्रम में लीन रहते थे।

सफलता पाने का केवल एक महामन्त्र है, और वह है—"जी-जान से परिश्रम करना।" परिश्रम करो, निरन्तर उद्योग में लगे रहो, असफल होने पर भी कर्म से उदासीन न होओ, विफल होकर भी परिश्रम से मुँह न मोड़ो और विरोध होने पर भी कर्त्तव्य से पीछे न हटो; समय तुम्हारे अध्यवसाय का पूरा-पूरा मूल्य

देगा। तुम्हारी विफलता की हानि पूर्ण करेगा और तुम्हारे विरोधियों को तुम्हारा सम्मान करने को विवश करेगा। वे तुम्हारे पर विश्वास करेंगे। शत्रुओं की भी तुम्हारे ऊपर श्रद्धा होगी और अपने दुर्दिनों को तुम अपनी प्रतिभा से हत-प्रभ कर सकोगे। सच्चे मन से परिश्रम करते रहो।

× × ×

कृष्णा जिले (दक्षिणी भारत) के अन्तर्गत एक ग्राम का एक नवयुवक था बिल्कुल ग़रीब और आफ़त का मारा! परन्तु उसमें साहस था और थी महान् बनने की एक तीव्र आकांक्षा! वह बम्बई आया। बम्बई जैसे समृद्धिशाली नगर में निर्धनों का निर्वाह कहाँ! वहाँ की चिकनी सड़कें, आकाश-स्पर्शी अट्टालिकाएँ, मोटरों और ट्रामों की रेलपेल और वहाँ के नागरिकों का व्यय-पूर्ण-जीवन!

"अभागे युवक! बम्बई ग़रीबों की दुनिया नहीं, धनिकों का लीला-निकेतन है। दरिद्रों का बम्बई-निवास तो दिल्ली में भाड़ झोंकने के तुल्य है!" उससे वहाँ के शान्त सिन्धु ने कहा और चुपचाप घर लौट जाने की अनुमति दी।

"ऊँ हूँ! सन्मार्ग से हटना वीरों का कार्य नहीं! कर्म-वीर विपत्तियों को शीस नहीं झुकाते!!" युवक ने भारत का पद-प्रक्षालन करने वाले महिमामय जलनिधि से कहा।

दुर्भाग्य चुपके से युवक और सिन्धुराज की बातें सुन रहा था वह युवक की दृढ़ता पर झुँझलाया और उस पर अपना विकट प्रहार करने लगा। युवक ने भी उसे ललकारा और वह भूखा युवक उस पर क्रुद्ध-केहरी के सदृश टूट पड़ा।

युवक पीड़ित था। निर्धनता का शिर दर्द उसे व्याकुल कर रहा था। अतएव उसने शिर दर्द का मलहम (Pain-Balm)

बनाया और उसे विक्रय करना प्रारम्भ कर दिया। दुर्भाग्य उससे मोर्चा ले रहा था। उस समय भारत में विदेशों के शिर-दर्द मलहमों की धूम थी। भला उनके आगे इसका मलहम कौन लेता? विदेशियों की आकर्षक पैकिङ्ग (*Packing*) और उनके धूम-धाम के विज्ञापन की प्रतियोगिता में यह निर्धन युवक कहाँ तक टिकता! परन्तु वह घबराया नहीं, उसने उत्साह और धैर्य्य की बाँह नहीं छोड़ी; परिश्रम के अविफल अस्त्र से वह निरन्तर लड़ता रहा। मितव्यय उसका कवच था। शनैः शनैः वह अपने प्रतियोगियों की समता में आ डटा। कुछ समय के पश्चात् वह पूर्ण विजयी होकर रहा। उसका पेन-बाम प्रख्यात और सर्व प्रिय हो गया। आज समस्त भारत में उसके मलहम का प्रयोग होता है। उसने विदेशी हेनरी तैल और ओरियन्टल-बाम को अपनी वस्तु के सामने तुच्छ प्रमाणित कर दिया। विदेशी इन वस्तुओं से करोड़ों रुपये प्रति वर्ष ऐंठते थे। आज "अमृताञ्जन" से कौन अपरिचित है? इसके आविष्कर्त्ता स्वर्गीय 'श्री नागेश्वर पंतुल' हैं।

पंतुलजी समाज सेवी और देश-प्रेमी व्यक्ति थे। इनका जीवन सार्वजनिक था। इन्होंने अपने यहाँ से तेलगू में तीन पत्रिकाएँ प्रकाशित करायीं। इनके "दुर्गा-कला-मन्दिर", चित्रपट-सदन, बेजवाड़ा का रङ्गमंच उत्तम है। सभा सुसाइटियों के लिये इनका चित्रपट सदन सदैव सुरक्षित रहता है।

× × ×

चिन्तामणि घोष निर्धन और विधवा माता का पुत्र था। निर्धनता के कारण १३ वर्ष की आयु में ही अभागे को पेट की चिन्ता सताने लगी। अतएव प्रयाग के पायोनियर प्रेस में विधवा के जीवन-धन ने रु० १०) मासिक पर नौकरी कर ली। तेरह वर्ष की अल्पायु में इसके छोटे और कोमल हाथ, ऊँची-ऊँची टेबुलों पर चढ़ी

कठिनता से पहुँच पाते थे। इसलिये यह उचक-उचक कर लिखा करता था। एवं एकान्त पाने पर टेबुल के नीचे रजिस्टर उतार कर लेटे-लेटे लिखा करता था!! यह बड़ा परिश्रमी था अपना कार्य स्फूर्ति से समाप्त करके यह अपने मित्रों के कार्य में भी योग दिया करता था। इस भाँति साथियों की सहायता करके यह उनकी सहानुभूति तथा कृपा तो प्राप्त करता ही था परन्तु इससे इसे नवीन कार्य सीखने का अनुपम अवसर भी प्राप्त हो जाया करता था।

चिन्तामणि चौदह वर्ष की आयु में ही इतना स्फूर्तिशाली और उद्योगशील था कि १८ घण्टे अनवरत परिश्रम करना इसके लिये साधारण सा कार्य था। कभी-कभी कार्य बाहुल्य के कारण यह ३-४ दिनों तक रात दिन अविरल अध्यवसाय में ही लगा रह जाता था।

बाल्यावस्था से ही चिन्तामणि में महान् होने की उत्कट लगन थी। यह बड़ा उत्साही था। इसने 'Self-help' नामक पुस्तक को १४-१५ बार पढ़ा था। पायोनियर प्रेस में काम करते समय जब यह अपने सहयोगियों से कहा करता था—"मुझे व्यवस्थापक के पद पर आसीन कर दो, मैं सारा कार्य सुचारु रूप से सम्पादित कर लूँगा। इस में कठिनाई ही क्या है? तो वे हँस पड़ते थे और इसका विनोद किया करते थे। परन्तु इससे इसके आत्म-विश्वास और इसकी महत्वा कांक्षाओं का आभास प्रकट होता है।

अपने परिश्रम और कार्य-दक्षता से यह उद्योगी मनुष्य दस रुपये मासिक की साधारण नौकरी से क्रमशः उन्नति करके सौ रुपये मासिक के पद पर चला गया। परन्तु इतने से ही यह सन्तुष्ट होकर नहीं रहा और दासता का परित्याग करके इसने केवल ढ़ाई सौ रुपये से एक मुद्रणालय की संस्थापना की।

इस अध्यवसायी का दुःख दूर करके ईश्वर ने इसे प्रचुर सम्पत्ति दी। इसने बहुत सी पुस्तकें और पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित कीं। उस समय क्रोमो-लिथो का कार्य बम्बई में राजा रविवर्म्मा के प्रेस में तथा थोड़ा बहुत और कहीं होता था। चिन्तामणि ने जर्मनी से लिथो-चित्रकार *Litho-artist* बुला कर इसे सीखा था। उसमें लगभग एक लाख रुपये व्यय हुए थे। हमारे चरित नायक के संस्थापित मुद्रणालय—"इण्डियन-प्रेस लि०" के नाम से सभी सुपरिचित हैं। यहीं आचार्य द्विवेदी ने मासिक पत्रिका 'सरस्वती' के पौदे को आजन्म अपने रक्त से सिञ्चित करके पल्लवित और विकसित किया है।

× × × ×

कारनेगी, फोर्ड, एडीसन, डिमास्थनीज़, वाट, और स्टीफेन्सन तथा स्वामी रामतीर्थ, शिवाजी, बोपदेव, सुधाकर द्विवेदी और सर गंगाराम इन सब में महान् होने की अदम्य अभिलाषा थी। ये लोग आरम्भ में बड़े निर्धन, निःसहाय और अभागे थे तथा झोंपड़े में रह कर महल के स्वप्न देखा करते थे, परन्तु अपने स्वप्न को सत्य बनाने में इन लोगों ने जी जान लगा दिया और सचमुच उसे सत्य करके दिखा भी दिया।

"इसमें सन्देह नहीं कि बड़े-बड़े कारखानों के स्वामियों ने अपना जीवन 'ग़रीब लड़कपन' से ही प्रारम्भ किया था।"

—सेथलो

× × × ×

सन् १८८० ई० में जुबेदा हानूम बेगम के फटे आँचल में एक नन्हा सा शिशु आया। माता-पिता पुत्र को देख कर फूले नहीं समाये। निर्धनता की थपकियों में बालक का पालन-पोषण होता रहा। पुत्र के बड़े होने पर पिता को उसे शिक्षा देने की चिन्ता हुई.

राजकीय पाठशाला में अध्ययन का व्यय देने में अपने को असमर्थ पाकर, पिता ने, उसे सार्वजनिक शिक्षालय में शिक्षण के निमित्त भेज दिया। 'दुर्भाग्य'—से यह भी नहीं देखा गया और उसने पिता को सदैव के लिये पुत्र से छीन लिया! पति के देहावसान से अनाथिनी विलख कर रह गयी! अध्ययन की चर्चा कौन करे जब अभागों को रोटियों के भी लाले हो गये!!

कुछ दिनों पश्चात् किसी भाँति शहर की एक पाठशाला में लड़के का नाम लिखा दिया गया। परन्तु पढ़ने में इसका चित्त नहीं लगा। अध्ययन परित्याग करके यह सामरिक-शिक्षा सीखने कुस्तुनतुनिया चला गया। वहाँ से सैनिक-शिक्षा में निपुण होकर और शक्ति-सङ्गठित करके यह अपने देश लौटा और इसने वहाँ के सम्राट् सुल्तान अब्दुल हमीद को सिंहासन से उतरवा दिया तथा वहाँ की राजनीति में महान् परिवर्तन कर दिया। इस नवीन सुधार के अनुसार अनिवार्य-शिक्षा का प्रचार किया गया। तुर्की-भाषा में भी संशोधन किये गये। अरबी-लिपि के स्थान पर लैटिन वर्णमाला का प्रचलन आरम्भ किया गया। कुरान शरीफ़ भी अब वहाँ लैटिन में ही मुद्रित मिलता है। स्त्रियों ने बुर्का एवं पुरुषों ने फ़ेज का परित्याग करके पश्चिमी वेश-भूषा अपनाया। स्त्रियाँ पुरुषों के साथ विश्व-विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने लगीं। वहाँ की विदुषी नारियाँ सामाजिक तथा राजनैतिक क्षेत्रों में भी भाग लेने लगीं। इस मनुष्य की गणना संसार के (अपने समय के) चौथे-पाँचवे राष्ट्र-निर्माताओं में है। इसका नाम "मुस्तफा कमाल पाशा" है।

× × × ×

भगवान् ने एक टरकिश बालिका को दोनों हाथ से लूली कर दिया। बेचारी लड़की का जीवन कितना भारस्वरूप हो गया।

भला अब वह क्या कर सकती है जब कि उसके लिये खाना-पीना भी दुष्कर है ! जब उसका जीवन ही दुभर और दुःख परिपूर्ण है !! कितना अन्धकार मय है ऐसी बालिका का भविष्य ! परन्तु लड़की को विपत्ति से घबराने और संकट में रुँदन करने की शिक्षा नहीं दी गयी थी। उसके अभिभावकों ने उसमें आपदा के समय भी धैर्य रखने तथा रोने की अपेक्षा अपना दुःख दूर करने के सद् प्रयत्न में रत रहने का सद्भाव भरा था ।

लड़की ने पैर के अँगूठे से हाथ का कार्य लेने का अभ्यास करना आरम्भ कर दिया । "मनुष्यस्य प्रयत्नशीले असाध्यम् नास्ति" कुछ वर्षों के पश्चात् लड़की इसमें अभ्यस्त हो गयी । उसके पैर के अँगूठे ही बहुत अंशों में हाथ का कार्य सँभालने लगे—मानो वह उनका स्वाभाविक कार्य हो !

यह लूली लड़की पैर के अँगूठे से स्टोव में वायु भर सकती है, उसे जला सकती है, चाय ठण्डी कर सकती है और सूई में तागा डाल सकती है । इतना ही नहीं यह सिलाई भी कर सकती है, लिख सकती है और स्वादिष्ट भोजन भी बना सकती है !*

यह उद्योग शील लड़की भाग्य के नाम पर आँसू नहीं बहाने बैठी । अपने कष्ट को देख कर यह 'कि कर्त्तव्य विमूढ़' होकर अकर्मण्य और काहिल नहीं बनी । "जन्म देना ईश्वर के हाथ में और अपने भाग्य की रचना करना स्वयं मनुष्य के अपने हाथ में है ।" उसका इस सिद्धान्त में अटूट विश्वास था । क्या कोई इससे कुछ भी शिक्षा-ग्रहण करेगा ? *"Every man is the architect of his own fortune."* प्रत्येक मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है ! फिर क्यों न मनुष्य अपने दुर्भाग्य को सौभाग्य में परिणत करने पर तुल जाय ? क्यों न वह अपने अज्ञान को विद्वत्ता में बदल दे,

* *Illustrated weekly 16th April 1939*

अपनी निर्धनता को सम्पन्नता में परिवर्तित कर दे। अपने दुःख में सुख का स्वप्न देखे और अपनी बाधाओं में विजय का प्रतिबिम्ब देखे! और छोटे से महान् बनने के लिये उठ खड़ा हो!

शरीर तो एक दिन जाने ही को है, तो फिर यह आलसियों की तरह क्यों जाय? जंग लग कर नष्ट होने की अपेक्षा घिस-घिस कर; कुछ करके मरना कहीं अधिक अच्छा है!"

—स्वामी विवेकानन्द

समय का सदुपयोग

"यही समय ही अहो तुम्हारा शुभ जीवन है"

—श्रीमैथिलीशरण

"He lives long that lives well, and time mis-spent is not lived, but time lost."

—Thomas Fuller.

चिरायु वही है जो अपने कार्यों को सुचारु रूप से सम्पादित करता है। समय को व्यर्थ के कार्यों में व्यतीत करना समय का सदुपयोग नहीं उसे खोना है।

—थामस फुलर

समय ही जीवन है। समय खोने का अर्थ जीवन को व्यर्थ खोना है अपना जीवन किसे प्यारा नहीं है? परन्तु क्या कभी तुमने सोचा है कि—"जीवन क्या है?" हमें जीवित रहने के लिए जो सीमित-समय (Limited Time) दिया गया है वही जीवन है। स्मरण रखो—"प्रतिदिन खोये जाने वाले घण्टे, मिनट और सेकेण्ड जीवन के अमूल्य अंश हैं।" अतएव समय खोना और जीवन खोना दोनों एक ही है। समय थोड़ा है, इसे व्यर्थ न खोओ क्योंकि इसे तुम पुनः नहीं पा सकते।

समय रूपी सम्पत्ति से मनुष्य संसार की कोई भी वस्तु क्रय कर सकता है—ज्ञान, कला, सम्मान और सम्पत्ति-अर्जन कर सकता है, परन्तु संसार के किसी भी द्रव्य से वह समय को कदापि मोल नहीं ले सकता। अर्ब-खर्ब की सम्पत्ति और उदय-अस्त का राज्य समर्पित

करके भी कोई बीते हुए समय को लौटा नहीं सकता। समय नष्ट न करना ही जीवन की विजय और बुद्धिमानी है। संसार में सफलता प्राप्त करने वाले व्यक्ति समय का मूल्य समझने में कभी नहीं चूकते। वे सदैव कार्य में तल्लीन रहते हैं और बड़ी सावधानी तथा सतर्कता से समय का सदुपयोग करते हैं। व्यर्थ व्यय के लिए उनके पास कभी भी समय नहीं रहता। वे सर्वदा मिनटों के कंजूस बने रहते हैं।

संसार उन महापुरुषों का चिर ऋणी है जिन्होंने अपने प्रत्येक मिनट का अधिक से अधिक सदुपयोग करके विश्व को आगे बढ़ाया है। ऐसे ही महानुभाव विश्व के आचार्य, नेता, आविष्कारक, श्रेष्ठ, कवि, प्रख्यात लेखक, अमर चित्रकार और अच्छे-अच्छे कार्यों के कर्त्ता हुए हैं। जिन घण्टे, आध घण्टे, और पन्द्रह-बीस मिनटों को साधारण व्यक्ति तुच्छ समझ कर अवहेलना की दृष्टि से देखते है उन्हीं घण्टे और मिनटों को उत्तम कार्य में लगाकर परिश्रमी और होनहार व्यक्ति, कुछ ज्ञान, प्रसिद्धि, अथवा धनोपार्जन कर लेते हैं। वे किसी भी मिनट को अपने कार्यों की अमिट छाप लगाये बिना यों ही नहीं जाने देते।

खोई हुई सम्पत्ति मितव्यता और परिश्रम से, भूला हुआ ज्ञान अध्ययन से, नष्ट किया हुआ स्वास्थ्य औषधियों तथा संयम द्वारा पुनः प्राप्त हो सकता है। परन्तु खोया हुआ समय किसी भी प्रकार वापस नहीं लाया जा सकता। गत समय अपने स्थान पर एक धुँधली सी स्मृति और खोने वाले के लिये शोक और पश्चात्ताप छोड़ जाता है।

एल० हूबरिट की हार्दिक अभिलाषा थी कि वह अपने देश नवयुवकों के समस्त समय के सुनहले टुकड़ों को, जिन्हें वे केवल 'क्षण' समझ कर खोया करते हैं शुभ कार्यों में परिणत करने क

ज्वलन्त उदाहरण उपस्थित करे। समय का सदुपयोग करके ही वह अपनी विद्वत्ता के लिये प्रख्यात हुआ था।

भोजन की प्रतीक्षा में दस-पन्द्रह मिनटों को नष्ट करने की प्रथा घर घर में प्रचलित है। अधिकांश नवयुवक भोजन के पश्चात् का समय सोने में अथवा व्यर्थ के वार्त्तालाप में खो देते हैं। थोड़ा सा काम करके बहुत सा समय विश्राम अथवा गप्प सड़ाके में नष्ट करने की कुटेव बहुत से व्यक्तियों में होती है। किसी कार्य वशात् बाज़ार जाते समय थोड़ा सा समय रास्ते की भीड़ एवं तमाशा देखने में गँवा देने तथा लौटते समय किसी परिचित व्यक्ति से मिलते ही अनावश्यक बातों में बहुत सा समय नष्ट कर देने की कु प्रवृत्ति बहुत से व्यक्तियों में होती है वे यह नहीं जानते कि समय ही सम्पत्ति है।" "*Time is everyman's state.*" समय प्रत्येक पुरुष की रियासत है।

समय के प्रत्येक घण्टे में बहुमूल्य साठ मिनट होते हैं। हमें इसमें से किसी भी मिनट, बल्कि सेकेण्ड को भी व्यर्थ नहीं खोना चाहिये। समय रूपी धन को खोना द्रव्य खोने से भी अधिक हानिकर है। धन किसी से उधार भी लिया जा सकता है या माता-पिता अथवा सुहृद एवं सम्बन्धी यों ही दे सकते हैं। परन्तु कोई किसी का कितना ही शुभचिन्तक क्यों न हो परन्तु वह लाखों प्रयत्न करके भी उसे अपना एक क्षण भी नहीं दे सकता। समय नष्ट करना अपने हाथों अपने जीवन रूपी वृक्ष में कुल्हाड़ी मारना है। समय खोना अपनी शक्ति, सामर्थ्य और सुअवसर को समूल नष्ट कर देना है।

समय के बिखरे हुए टुकड़ों-मिनटों और पलों को एकत्र करके तथा उनका सदुपयोग करके कितने ही भाग्यहीन, अनाथ और आश्रय हीन व्यक्तियों ने संसार में आश्चर्यजनक कार्य कर दिखाये हैं।

लोग जिन्हें नगण्य समझा करते थे उन्होंने राजनीति, साहित्य और कला में सुदृढ़ और चिरस्थायी स्थान प्राप्त कर लिया है। कोई भी व्यक्ति अपने घण्टे और मिनटों को न खोकर, उन्हें सत्कार्यों में लगा कर अपना जीवन सुखी कर सकता है।

कीयर *Cuvier* अपनी गाड़ी पर बैठ कर बाहर जाते समय भी कुछ न कुछ लिखता पढ़ता रहता था। उसके इस कार्य ने चीर फाड़ सम्बन्धी एक पुस्तक को जन्म दिया। हेनरी कर्क ह्वाइट एक वकील का क्लर्क था। अपने काम पर प्रतिदिन आने जाने के समय में ही उसने ग्रीक भाषा का ज्ञान प्राप्त किया था। डाक्टर मासन गुड ने रोगियों के घर उन्हें देखने जाने के समय में ही लुक्रेटियस की बृहद् आध्यात्म विद्या सम्बन्धी एक पुस्तक का सुन्दर अनुवाद कर डाला। इसी भाँति रोगियों को देखने जाने के समय में एक जर्मन डाक्टर ने होमर की प्रसिद्ध पुस्तक इलीयड को कण्ठाग्र कर डाला। डाक्टर डारविन ने गाड़ी पर बैठ कर रोगियोंके घर जाने के समय में ही काग़ज़ के टुकड़ों पर अपनी पद्यमय विज्ञान सम्बन्धी पुस्तक की रचना की थी। सर माथ्यूहेल नामक एक जज ने दौरे पर जाने के खाली समय में ही एक महत्व और विचार पूर्ण ध्यान एवं समाधि सम्बन्धी पुस्तक की रचना कर डाली।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बाल्यावस्था में रेल में बैठ कर कलकत्ते जाते समय तार के खम्भों के अङ्कों पहुँचने को पिता से पूछ-पूछ कर अंगरेजी की गिनती सीखी थी। कलकत्ते पहुँचने पर इसी के सहारे वे अपने पिता को अंगरेजी के सवालों में सहायता देने लगे थे। बड़े होने पर एक बार पालकी पर बैठ कर बाहर जाते समय उन्होंने पालकी पर ही एक पुस्तक की रचना कर डाली थी।

अमेरिका के राष्ट्रपति विलसन बचपन से ही समय का मूल्य समझते थे और उसका आदर करते थे। वे प्रातःकाल बहुत सबे

उठते थे और रात को बड़ी देर तक कार्य करते रहते थे। वे प्रत्येक मिनट को स्वर्ण के सदृश समझते थे और उसका अधिक से अधिक उपयोग करते थे।

ह्यूज़ मिलर (Hugh Miller) नामक एक संगतराश अपने अवसर का उपयोग करके ओजपूर्ण और धारा प्रवाह लेख लिखने लगा था। चान्सलर डी एग्यूस्यूने (Chanceller d' Aguesseau) प्रतिदिन के उन पन्द्रह मिनटों का सदुपयोग करके जिसे उसकी भार्या भोजन के समय नष्ट किया करती थी ग्रीक भाषा का अहद-नामा अनुदित कर डाला। विद्वान् लुहार एल हूबरिट अपने समय का ऐसा सद्व्ययी था कि अट्ठारह भाषाओं तथा भिन्न भिन्न बाइस बोलियों का पण्डित हो गया था। इसी भाँति अपने एक-एक क्षण को उपयोग में लाने वाले भूतपूर्व चार्ल्स किंग्सले (Late Charles Kings ley) ने सुअवसर को न खोकर विविध प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर लिया। ब्राइटन निवासी राबर्टसन (Robertson of Brighton) अपने समय को बड़ी मितव्यता से व्यतीत करता था। वह सदैव उन मिनटों और क्षणों को उपयोग में लाने का प्रयत्न करता था जिन्हें साधारण व्यक्ति नित्य प्रति उठते, बैठते, खाते पीते और चलते फिरते तथा अन्य छोटे मोटे कामों को करते समय खो दिया करते हैं। फ्रैंकलिन अपने भोजन तथा शयन के समय में से भी बहुत सा समय बचाकर उसे अध्ययन में लगाता था। किन्तु यह प्रवृत्ति श्रेयस्कर नहीं है। अपने स्वास्थ्य की अव-हेलना करना दूरदर्शिता नहीं है। खाने और सोने में उपयुक्त समय लगाना अनिवार्य है। प्रत्येक कार्य के लिये उतना ही समय देना चाहिये जितने में वह उत्तमता से समाप्त हो सके। इससे न्यून समय लगाने से कार्य अपूर्ण और अपरिपक्व होगा। दूसरे, लाभ से वञ्चित रहने के अतिरिक्त कभी-कभी भयंकर हानि, व्याधि और

रोग उत्पन्न होने का भय रहता है। अधिक समय लगाने से समय का—जीवन का—व्यर्थ व्यय होगा।

"हम लोग वृद्ध हैं। क्या इतनी देर तक कार्य करने के पश्चात् हम लोगों के विश्राम का समय नहीं हो गया?"—पीरे निकल ने आर्नल से कहा।

"अभी विश्राम!"—आर्नल ने अनिच्छा से विस्मय पूर्वक उत्तर दिया और वह काम में लगा रहा।

थोड़ी देर तक कार्य करके फिर बीच में बार-बार विश्राम लेने वाले बहुत सा समय नष्ट कर डालते हैं। विश्राम की उचित आवश्यकता होने पर ही विश्राम लेना ठीक है। विश्राम हमें शक्ति और स्फूर्ति प्रदान करने तथा हमारे कार्यों में सहायता देने के लिये ही होना चाहिये, आलसी बना कर समय नष्ट करने के लिये नहीं। "निरन्तर कार्य करते रहो" कहने से यह अभिप्राय नहीं है कि कोई सदैव अध्ययन अथवा मानसिक परिश्रम ही करता रहे; बल्कि—समय नष्ट न करें" एवं उसका सदुपयोग करे। इसके लिये आवश्यकता तथा रुचि के अनुसार-बदल-बदल कर कार्य किया जा सकता है। कभी भी अकर्मण्य एवं बेकार रहना ठीक नहीं।

अच्छे समय की प्रतीक्षा में कभी समय नष्ट न करो। वर्तमान के सदृश कोई अच्छा और शुभ समय नहीं है। यदि मनुष्य अपने सामने के समय को—वर्तमान की सुन्दर घड़ी को खो देगा तो वह अपना बहुत कुछ खो देगा। यदि वह शीघ्र-निश्चय से लाभ न उठा कर अपने कार्यों को भविष्य पर छोड़ता है तो वह सफलता के प्रथम सोपान से फिसल जाता है और बहुत सम्भव है कि उसकी भविष्य निर्भरता उसे धूल में मिला दे और वह उचित समय तक अपने कार्यों को पूर्ण न कर सके। "असाधारण अवसर

की प्रतीक्षा में न रहो। अपनी वर्तमान स्थिति से पूर्ण लाभ उठाओ। एक हल्की कूद से एक लम्बी और लगातार यात्रा अति उत्तम है।" गोयथ (Goeth) के इन वाक्यों को स्मरण रखना प्रत्येक व्यक्ति के लिये लाभप्रद होगा।

समय के उचित उपयोग का अर्थ है अपने सुअवसर से पूरा-पूरा लाभ उठाना। किसी भी समय को खराब अथवा अशुभ नहीं समझना चाहिये। जिसे अन्य लोग अशुभ समय कहते है तुम उसे सत्कार्यों में लगा कर, उत्तम बातों के सोचने-समझने में व्यय करके, अध्ययन द्वारा अपनी ज्ञान-वृद्धि करके या उसे धनोपार्जन में लगा कर उसे स्वर्ण सुयोग और शुभ अवसर में बदल दो। ऐसा करने से संसार में नूतन प्रकाश फैलेगा, संसार की बन्द आँखें खुलेंगी और तुम धन्य-धन्य हो सकोगे।

किसी कार्य की सफलता समय पर उतनी निर्भर नहीं है जितनी कार्य करने की प्रणाली पर। "*Time makes a man, what he makes of it.*" मनुष्य समय का जैसा उपयोग करेगा समय भी उसे ठीक वैसा ही बना देगा।

यदि आज का समय आलस्य में गवाँ दिया जाय तो कल भी व्यर्थ की बातों में व्यतीत हो जायगा, फिर परसों भी यही दशा होगी और मुट्ठी में भरी बालू की भाँति सारा समय हाथ से निकल जायगा। अच्छे अवसर की प्रतीक्षा में वर्तमान का शुभ समय भी व्यतीत हो जाता है और एक-एक दिन खोकर मनुष्य, जीवन की दौड़ में एक-एक पग पीछे होता जाता हैं। यदि तुम सफलता प्राप्त करने के इच्छुक हो और महान् बनना चाहते हो तो समय का सदुपयोग करना सीखो। सावधानी से अध्यवसाय में संलग्न होकर समय से लाभ उठा लो। इसके लिये सोचने का समय नहीं, अब और अभी से कार्य आरम्भ कर दो। साहस,

दृढ़ लगन और अध्यवसाय में अपूर्व शक्ति भरी पड़ी है। कार्य आरम्भ कर दो, मस्तिष्क अपना कार्य स्वयं कर लेगा और करते रहने से कार्य अवश्य पूर्ण होकर रहेगा।

कोई मनुष्य समय को बुरा कह कर, उसे आलस्य में गँवा कर या काम करते रहने का बहाना करके समय व्यतीत करके दूसरों को कुछ समय के लिये भले ही धोका दे दे; परन्तु वह अपने को एक क्षण के लिये भी भुलावे में नहीं डाल सकता, इसके अतिरिक्त जब समय वास्तविक कार्य कर्त्ताओं की सूची और उनके लिये सफलता का सुन्दर पुरस्कार लेकर आवेगा, उस समय कार्य न करने वालों का नाम समय की सूची में नहीं होगा और न उनके लिये उसकी झोली में कोई पुरस्कार ही। उस समय उन्हें समय का सदुपयोग न करने का दण्ड शोक, पश्चात्ताप और विफलता के रूप में अवश्य भोगना पड़ेगा। संसार भी ऐसे व्यक्ति को सम्मान की दृष्टि से नहीं देखेगा। अतएवः—

"डटे रहो अपने कामों पर,
सावधान होकर तैयार।
समय कार्य करने वालों,
हित लायेगा अनुपम उपहार॥

समय का प्रत्येक क्षण अमूल्य है। समय के हर एक मिनट में मनुष्यों को आगे बढ़ाने की शक्ति है। प्रतिदिन एक घण्टा अध्ययन में लगा कर एक निरक्षर मनुष्य विद्वान् हो सकता है नित्य एक घण्टा काम सीखने वाला व्यक्ति किसी भी काम में दक्ष हो सकता है। सदैव एक घण्टा सामाजिक कार्यों में लगा कर एक साधारण व्यक्ति भी प्रसिद्ध हो सकता है। प्रति घण्टे बीस पृष्ठ पढ़ने वाला व्यक्ति एक घंटा नित्य पढ़ने से एक वर्ष में चार सौ पृष्ठों की मोटी-मोटी अट्ठारह पुस्तकें समाप्त कर सकता है। अथवा

किसी एक विषय का पण्डित हो सकता है। प्रतिदिन एक घंटा द्रव्योपार्जन करके एक मनुष्य दो दैनिक, दो साप्ताहिक, दो मासिक और लगभग एक दर्जन पुस्तकें क्रय कर सकता है। लोक हित के कार्यों में प्रतिदिन एक घंटा लगाने वाला व्यक्ति देश और समाज की बहुत कुछ सेवा कर सकता है और इसी भाँति कार्य करने से कुछ वर्षों में वह देश अथवा नगर का एक प्रख्यात नेता हो सकता है। जब केवल एक घंटे में इतना गुण है, ऐसी विशेषता है और इतना जादू है तो प्रतिदिन चार-छः घंटे आलस्य और व्यर्थ की बातों में खोने वाले व्यक्ति यदि अपने समय का सदुपयोग करने लग जायें तो वे जीवन की कौन सी सफलता प्राप्त नहीं कर सकते ?

काम और विश्राम में शत्रुता है किन्तु 'कार्य और 'कीर्त्ति' में घनिष्ठता। संसार के महान् व्यक्ति अधिक उद्योगी और अधिक कार्य करने वाले मनुष्य ही हुए हैं। ग्लेडस्टन सदैव अपनी जेब में एक छोटी सी पुस्तक लेकर बाहर निकलता था। वह किसी भी पल को व्यर्थ न जाने देने का ध्यान सदैव रखा करता था।

भूखों मरने वाले कुछ दरिद्र व्यक्ति धनवान् क्यों हो जाते हैं ? मूर्ख और अशिक्षित व्यक्तियों में से कुछ विद्वान् क्यों हो जाते हैं ? इसी भाँति निम्न श्रेणी के लोगों में से कुछ क्योंकर उन्नति कर जाते हैं ? शेष उसी परिस्थिति में क्यों पड़े रहते हैं ? इसीलिये कि भविष्य में बड़े होने वाले छोटे व्यक्तियों ने अपने समय का अधिक से अधिक उपयोग किया था। उन्होंने किसी भी मिनट को व्यर्थ नहीं जाने दिया। दूसरे केवल अपने भाग्य को कोसते रहे। वे ईश्वर की दया के आसरे बैठे रहे। उन्होंने अपने प्राप्त समय रूपी धन का कोई उपयोग नहीं किया। उसे सार्थक बना कर

उसका सम्मान नहीं किया। समय आया और उनकी आँखों के आगे से, उनके हाथ से, उस पक्षी की भाँति उड़ गया जिसे वे पुनः पकड़ नहीं सकते। ऐसे ही व्यक्तियों को जीवन में असफलता असन्तोष, अवनति, अपमान और आश्चर्य का भागी होना पड़ता है। समय का सदुपयोग करने वाले छोटे व्यक्ति भी महान् हो सकते हैं और दुरुपयोग करने वाले श्रेष्ठ व्यक्ति भी अपनी प्रतिष्ठा, अपनी महानता और अपना सर्वस्व खो सकते हैं।

शुभ मुहूर्त्त की प्रतीक्षा में समय नष्ट करना ठीक नहीं। वर्ष का प्रत्येक दिवस शुभ दिन है। दिन का प्रत्येक घण्टा शुभ समय है। प्रत्येक मिनट में मनुष्य को बनाने और बिगाड़ने की, उसके उत्थान और पतन की, जीवन और मरण की जादू भरी शक्ति छिपी पड़ी है। यह जान लो कि प्रत्येक दिन 'वरदान दिवस' है। हर एक पल इच्छित वस्तु को प्राप्त करने की उत्तम घड़ी है। प्रत्येक मिनट किसी भी उत्तम कार्य के आरम्भ का शुभ मुहूर्त्त है।

गेलीलियो डाक्टरी से बचे हुए समय में अपना आविष्कार करता था। माइकिल फरेडे एक साधारण दफ्तरी था। अपने कार्य से बचे हुए समय में वह वैज्ञानिक प्रयोग करता था। उसने अपने मित्र को लिखा था—"मित्र, मुझे समय की अत्यन्त आवश्यकता है। कितना उत्तम होता यदि मैं व्यर्थ समय खोने वालों का समय क्रय कर सकता।

बेंजमिन फ्रेंकलिन की दूकान में आकर एक ग्राहक ने पूछाः—

"इस पुस्तक का मूल्य क्या है?"

"एक डालर!"—क्लर्क ने उत्तर दिया।

"एक डालर! अजी, कम से कम क्या लोगे?"

इससे कम नहीं ले सकता।"

"मि० फ्रैंकलिन कहाँ हैं? जरा उनसे मिलना है।"—ग्राहक ने पुनः कहा। मि० फ्रैंकलिन कमरे में संलग्न थे। वे बाहर आये।

"मि० फ्रैंकलिन, इस पुस्तक का कम से कम कितना मूल्य दूँ?"

"सवा डालर!"

"सवा डालर!"—ग्राहक चौंक गया। "आपके क्लर्क ने तो एक डालर ही कहा था!!"

"परन्तु कार्य छोड़ कर आने में मेरा समय भी तो लगा है?"

ग्राहक आश्चर्य चकित हो गया। उसने शीघ्रता से वार्तालाप समाप्त करते हुए कहा—

"मि० फ्रैंकलिन, इसका अन्तिम और निश्चित मूल्य कहिये जिससे मैं इसे ले लूँ।"

"डेढ़ डालर!"

"डेढ़ डालर! अभी तो आप सवा डालर ही बतला रहे थे!!"

"ठीक है, परन्तु वह मूल्य मैंने उस समय कहा था। अब डेढ़ डालर लगेंगे और देर के साथ इसका मूल्य भी बढ़ता जायगा।"

ग्राहक शीघ्रता से मूल्य देकर पुस्तक लेकर घर लौटा। उसे समय को द्रव्य अथवा पाण्डित्य में परिणत करने वाले एक महापुरुष से एक श्रेष्ठ शिक्षा मिल गयी। उसे समय का मूल्य विदित हो गया।

क्या तुम अपने जीवन से प्रेम करते हो? यदि हाँ, तो समय को व्यर्थ नष्ट न करो, क्योंकि जीवन उसी से बना है।"

—फ्रैंकलिन

ईश्वर ने सबको समान ही समय प्रदान किया है। सबके लिये

बारह महीने का वर्ष और चौबीस घण्टे का दिन-रात बनाया है। फिर भी एक व्यक्ति समय नहीं मिलने की दुहाई देता है। दूसरा सब काम के लिये उपयुक्त समय निकाल लेता है।

"टाम काका की कुटिया" की उत्कृष्ट रचना हेरेट बीचर स्टोव ने अपने पारिवारिक जीवन की उलझनों के बीच में ही की थी। जान स्टुअर्ट मिल ईस्ट इण्डिया हाउस का क्लर्क था। दिन भर काम करने के पश्चात् अपने अवसर के समय का उपयोग करके ही उसने अपनी सर्वश्रेष्ठ रचना की थी। मार्जोट अपने कार्य में इतना तल्लीन रहता था कि शयन करना भी भूल जाया करता था। अपना कार्य समाप्त करने के लिये कभी-कभी वह अनवरत दो-दो दिन और रात लिखता ही रहता था। अपनी प्रसिद्ध रचना "रेक्यूयम" को उसने मृत्युशय्या पर ही समाप्त किया था। काफ़ी उबलने में जो समय लगता है उसे ही प्रतिदिन उपयोग में लाकर लाँगफेलो ने 'इन फरनो' का सुन्दर अनुवाद किया था। सरहेम्फ्री डेवी ने अपने बचत के समय का सदुपयोग करके ही अपने महान् आविष्कार किये थे। इसी भाँति ग्रोटे के अवकाश के समय के उपयोग ने "ग्रीस का इतिहास" नामक श्रेष्ठ रचना को जन्म दिया था। प्रतिदिन घोड़े की सवारी करने के समय का उपयोग करके डाक्टर बरने ने घोड़े की पीठ पर ही इटालियन और फ्रेञ्च भाषा सीखी थी। लार्ड बेकन ने चान्सलर के व्यस्त जीवन से बचे हुए समय में ही प्रसिद्धि प्राप्त की थी।

महाकवि मिल्टन अंगरेज़ी "कामन वेल्थ" तथा "प्रोटेक्टरेट" का मन्त्री था। अपने कार्य से बचे हुए समय को सञ्चित करके उसने "पैरेडाइज़ लास्ट" की अमर रचना की थी। संयुक्त राष्ट्र के सर्व श्रेष्ठ गणिताचार्य 'चार्ल्स फ्रास्ट' नामक चर्मकार ने प्रतिदिन एक घण्टे के एकाग्रता पूर्ण अध्ययन द्वारा ही इस उच्च पद को

प्राप्त किया था। पोप प्रातःकाल सूर्योदय से भी बहुत पूर्व उठ कर उन विचारों को लिख लिया करता था जो दिन के संलग्न जीवन में प्रायः नहीं आ पाते थे। प्रसिद्ध कवि गेटे को एक बड़े राजनीतिज्ञ से मिलते समय एक नवीन विचार सूझ पड़ा गेटे ने थोड़े समय के लिये उनसे अवकाश माँगा और समीप के कमरे में जाकर उसे उसी समय लिख लिया। पार्लमेन्ट में बर्क की प्रभावशाली वक्तृता सुन कर उसके भाई ने कहा—"आश्चर्य है! 'नेड' ने कुटुम्ब की सारी प्रतिभा पर अपना ही अधिकार जमा रक्खा है!! परन्तु मुझे स्मरण है जब हम लोग खेलते थे तब भी वह कार्य में व्यस्त रहा करता था।"

कुछ महापुरुषों के जीवन पर विचार कीजिये। उनकी कार्य-प्रणाली और उनका समयोपयोग देखिये। नेपोलियन बोनापार्ट और जान हन्टर चार घंटे ही सोया करते थे। थामस एडीसन केवल तीन घंटे ही सोता था। उद्योगी हन्टर ने हजारों उदाहरण एकत्र किये थे। इसके कार्यों को व्यवस्थित रूप देने के लिये प्रोफेसर ओवन को दस वर्ष लग गये। प्रोफेसर ओवन बीस घंटा प्रतिदिन कार्य करते थे।

× × × ×

तेरह वर्ष के पितृहीन तथा दरिद्र बालक भीमचन्द्र चटर्जी को ज्योतिषियों तथा स्वजनों ने कहा—"इसके भाग्य में विद्या नहीं है। यह इन्ट्रेन्स तक भी नहीं पढ़ सकता।" बात ठीक थी। घर की शोचनीय स्थिति के कारण भीमचन्द्र चाय बगान में नौकरी करने जलपाईगुड़ी चला गया। पाँच महीना काम सीखने के बाद उसे रु० १५) मासिक वेतन मिलने लगा। वह दस रुपये माता के पास भेज कर शेष पाँच रुपये में ही अपना निर्वाह करता रहा। उसे प्रतिदिन ६ बजे प्रातः से ११ बजे तक, १२ बजे दिन से

८ बजे रात्रि तक और पुनः ६ बजे से लेकर रात्रि के २ बजे तक कार्य करना पड़ता था। इस प्रकार अट्ठारह घंटा प्रतिदिन कार्य करके उसे चाय तैयार करनी पड़ती थी। वह दस महीने तक फैक्टरी में कार्य करता रहा।

इसके पश्चात् भीमचन्द्र अध्ययन में लग गया। परन्तु तीन वर्ष पढ़ने के पश्चात् मिथ्या दोषारोपण करके यह कालेज से निकाल दिया गया। उस समय एक सप्ताह के बाद ही इसे एक गारन्टीड नौकरी मिलने वाली थी। ठीक उसी समय इस पर यह आपत्ति आ पड़ी। विवश होकर इसने गवर्नर के पास मेमोरियल भी भेजा परन्तु कोई फल नहीं हुआ।

कालेज से निकाले जाने के बाद भीमचन्द्र प्रिन्सिपल के पास सर्टिफिकेट के लिये रुड़की गया। प्रिन्सिपल ने उसे वह भी देना अस्वीकार कर दिया। उन्होंने यह भी नहीं लिखा कि—"भीम-चन्द्र तीन वर्ष तक उनके कालेज में पढ़ता रहा।" इस भाँति प्रिन्सिपल ने भीमचन्द्र को पंगु बना कर संसार यात्रा के लिये छोड़ दिया। भीमचन्द्र घबरा गया था। इसके मन में धर्म-त्याग और आत्म-हत्या के विचार चक्कर लगा रहे थे। पर अभी धैर्य्य समूल नष्ट नहीं हुआ था।

एक दिन इसकी माता ने कहा—"भीम, आज मैं तुमको एक आदेश देती हूँ। तुम इसे ही मेरी यथार्थ आज्ञा मानना। यदि चित्त की दुर्बलतावशात् कोई अन्य आज्ञा दूँ तो उस पर कदापि ध्यान न देना।" उन्होंने फिर कहा—"बेटा, घर की आर्थिक-दशा शोचनीय है अवश्य। फिर भी यदि अर्थाभाव के कारण श्वान और शृगाल भी मेरे हाड़-माँस को खा जायें तो भी तुम अध्ययन परित्याग करके अर्थोपार्जन की चेष्टा में व्यग्र मत होना। कम से कम अभी बीस वर्ष और पढ़ो। मैं एक ही गरुड़

प्रसव करना चाहती हूँ, अरुण की भाँति कच्चे-अण्डे तोड़ कर निकले हुए बच्चों का समूह नहीं !"

भीमचन्द्र ने घरबार बन्धक रखकर ऋण द्वारा पुनः अध्ययन आरम्भ कर दिया। इन्होंने लन्दन की *M. I. E. E. (Chartered Electrical Engineer)* और *M. I. E.* की सुप्रसिद्ध उपाधि प्राप्त की। आगे चल कर कालेज से दोषारोपण करके निकाला गया छात्र भीमचन्द्र चटर्जी उसी रुड़की कालेज की अन्तिम परीक्षा का परीक्षक तक निर्वाचित होता रहा। यही नहीं बल्कि रुड़की के इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग के प्रोफेसर भी शिक्षण-कार्य सीखने के लिये भीमचन्द्र के पास भेजे गये।

इसके अतिरिक्त इन्होंने हिन्दू युनिवर्सिटीके इंजीनियरिंग विभाग का *(Estimate)* तैयार किया तथा तीस खण्डों में १५,००० पृष्ठों का वैद्यक का एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ को तैयार करने में इनको बीस वर्षों तक १६ घंटा प्रतिदिन तथा पाँच वर्षों तक २० घंटा नित्य परिश्रम करना पड़ा था।

भीमचन्द्र चटर्जी समय का सदुपयोग करके चाय बगान के एक साधारण कुली से एक महान् पुरुष हो गये। यदि ये धैर्य्यवान, उत्साही, साहसी, कठोर परिश्रमी और समय के ऐसे सद्व्ययी न होते तो आजन्म चाय बगान के एक कुली मात्र ही रह जाते।



स्वास्थ्य और सफलता

धर्मार्थ काम मोक्षाणां, आरोग्यं मूल मुत्तमम् ।
रोगाः तस्याऽप हर्तारः, श्रेय सो जीवितस्य च ॥

अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन चार सर्व श्रेष्ठ वस्तुओं की प्राप्ति का प्रमुख आधार केवल आरोग्य ही है। जिस भाग्यवान् को ये चारो अनुपम पदार्थ प्राप्त हैं अस्वस्थता उसे भी नष्ट कर देती है।

The greatest blessing on the earth is health,
The wisest proverb says, 'health is wealth'.
A king who is ill is poor with all his wealth:
The poorest cooly rich, if in good health.

"स्वास्थ्य ईश्वर प्रदत्त सर्वोत्तम आशीर्वाद (वरदान) है। एक विवेकपूर्ण कहावत के अनुसार स्वास्थ्य ही सम्पत्ति है। एक अस्वस्थ सम्राट् सम्पूर्ण सम्पत्ति के होते हुए भी निर्धन है, किन्तु एक अत्यन्त निर्धन पर स्वस्थ कुली धनवान् है।"

जीवन की दौड़ में स्वस्थ व्यक्ति से ही साफल्य की अधिक आशा की जा सकती है। कोई व्यक्ति कितना ही कार्य कुशल और उद्यमी क्यों न हो परन्तु यदि वह अस्वस्थ रहता है तो, उसकी सफलता में स्वयं उसी को सन्देह होगा। चाहे कोई कितना ही धनवान् और विद्यावारिधि क्यों न हो किन्तु यदि वह अस्वस्थ है तो उसे अपने कार्यों का भार दूसरों पर सौंपना पड़ेगा और वह व्यक्ति जितना ही अधिक अस्वस्थ होगा उतना ही उस कार्य का अधिक भार, उत्तरदायित्व और महत्त्व दूसरों पर अवलम्बित रहेगा।

दूसरों के द्वारा उसका कार्य चाहे भले ही सम्पादित हो जाय परन्तु उसके मनोनुकूल न होने का उसे सदैव खेद रहेगा ही।

जो व्यक्ति अस्वस्थता के कारण अपना ही कार्य सँभालने में असमर्थ है उससे संसार के कार्यों की कहाँ तक आशा की जा सकती है? ऐसा व्यक्ति चाहे कितना ही धन दे दे अथवा यदि वह बुद्धिमान है तो विवेकपूर्ण सलाह और युक्ति भले ही बतला दे परन्तु जिस कार्य में उसकी अध्यक्षता एवं उपस्थिति अनिवार्य होगी वहाँ हमें अवश्य ही असफल होना पड़ेगा या उस व्यक्ति के स्वस्थ होने तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

यही नहीं अस्वस्थ व्यक्ति के लिये संसार की सम्पूर्ण धन-राशि, सुख और ऐश्वर्य की सारी वस्तुएँ निष्फल और व्यर्थ हैं। अस्वस्थ व्यक्ति चाहे महल में रहे, चाहे पर्वत पर या समुद्र के किनारे चला जाय परन्तु उसे कहीं भी विश्राम नहीं मिल सकता। उसे सुख तभी मिल सकता है जब वह स्वस्थ हो जाय अथवा अपने रुग्ण शरीर से छुटकारा पा जाय।

एक निर्धन व्यक्ति अपने को संसार में सबसे अधिक दुःखी समझता था। एक दिन वायु-सेवन के लिये जाते समय उसने एक सुन्दर उद्यान देखा। उपवन में प्रवेश करते ही वहाँ की छटा से उसका चित्त प्रफुल्लित हो उठा। उसने देखा कि आराम के मध्य में एक सुन्दर सरोवर है, उसमें झरता हुआ हस्ती-शुण्ड का फव्वारा बड़ा ही चित्ताकर्षक है। पुष्करिणी में सुन्दर सरसिज सुमन प्रस्फुटित हैं। सामने ही एक सुसज्जित अट्टालिका है। उद्यान की स्वच्छ और सुगन्धित वायु आने के लिये कमरे में खिड़कियाँ लगी हुई हैं। कमरे में एक गायक सुमधुर और प्रिय स्वर में गान कर रहा है। भीतर शीशे की आलमारियों में भाँति-भाँति के स्वादिष्ट व्यञ्जन और फल-फूल रखे हुए हैं। कमल की पुष्पशय्या

पर इस उद्यान का स्वामी लेटा हुआ है। सेवकगण परिचर्या में लगे हैं। एक अनुचर चँवर डुला रहा है।

वह व्यक्ति अपने मन में सोच रहा था कि ऐसे पुरुष के सौभाग्य का क्या कहना है जिसे यहीं पर स्वर्ग-सुख और इन्द्रपुरी का आनन्द उपलब्ध है। ठीक इसी समय शय्या पर सोये हुए लक्ष्मी-पुत्र ने एक आह भरी। 'आह' सुनते ही वह व्यक्ति आश्चर्य चकित हो गया। आह भरने का कारण न जान कर उसने धनिक से पूछा—"श्रीमान्! इतना सुख मिलने पर भी आप 'आह' क्यों भर रहे हैं? आपको तो ईश्वर ने सम्पूर्ण ऐश्वर्य दे रखा है!"

"हाँ, परन्तु इतना ऐश्वर्य देकर भी उसने मुझे अभागा ही बनाया है!" धनिक ने कहा।

"कैसे?"

"इसलिये कि सुख के समस्त साधन देकर भी उसने मुझे उन्हें भोगने से पृथक ही रखा है। अतएव मैं सबसे दुखी और अभागा हूँ।"

"परन्तु मैं तो अपने ही को सबसे अधिक दुखी समझता हूँ, क्योंकि दरिद्रता से बढ़ कर संसार में कोई अन्य दुःख नहीं है।"

"ओह! भाई, तुम निर्धन हो!! अच्छा, फिर भी ईश्वर को धन्यवाद दो। उसने तुम्हें संसार का सर्व श्रेष्ठ धन प्रदान किया है।"

"किन्तु मेरे पास तो कोई भी धन नहीं है। धनवान् तो आप हैं कि अच्छे उद्यान में सुसज्जित भवन में रहते हैं। भृत्य-वर्ग आपकी शुश्रूषा में संलग्न है। श्रीमान् को स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ—छप्पन भोग-उपलब्ध हैं। मनोहर संगीत से आपका चित्त प्रफुल्लित किया जा रहा है।"

धनिक ने कहा—"मेरे भोले भाई! तुम नहीं समझे मैं छः माह से अस्वस्थ हूँ। देखो, तड़ाग की वायु कैसी स्वच्छ शीतल

और सुहावनी है। परन्तु मैं उसका उपयोग नहीं कर सकता। कमरे की खिड़कियाँ बन्द हैं जिससे मुझे खुली वायु न लग सके। सेवकगण केवल आज्ञा परिपालन ही कर सकते हैं— ऊपरी शुश्रूषा कर सकते हैं। परन्तु मेरी पीड़ा, मेरा कष्ट कोई नहीं बँटा सकता। फल-फूल और सुस्वादु भोज्य पदार्थ परिवार वालों के लिए हैं। मेरे लिये (संकेत करते हुए) उस टेबुल पर कड़वी और खारी औषधियाँ रखी हुई है। मैं अभागा तो दुग्ध और द्राक्ष भी नहीं पचा सकता। इस पुष्प शय्या और मनोहर संगीत में भी मुझे अस्वास्थता के कारण कुछ आनन्द नहीं आता। मैं संसार की आँखों में भले ही सुखी प्रतीत होऊँ परन्तु वास्तव में हूँ अत्यन्त दुखी और अभागा।"

× × × ×

"करोड़पति होने पर भी मेरे जीवन में सुख नहीं है। जब मैं अपने विस्तृत कारखाने में बेचारे ग़रीब मजदूरों को रूखा-सूखा और स्वाद-रहित भोजन बड़ी उत्सुकता और प्रसन्नता के साथ करते देखता हूँ तो मुझे उनसे ईर्ष्या होती है और मैं करोड़पति बनने की अपेक्षा साधारण मज़दूर होना चाहता हूँ।"

—हेनरी फोर्ड (अमेरिका)

हेनरी फोर्ड—अमेरिका के विख्यात मोटर-निर्माता—ने करोड़ों की सम्पदा होने पर भी अस्वस्थता के कारण अपने को स्वस्थ श्रमजीविकों से भी निकृष्ट समझा। वास्तव में स्वास्थ्य ही सारे सुखों का सार है।

एक ही माता-पिता की संतानों में से कुछ को हृष्ट पुष्ट और शेष को अस्वस्थ देख कर कुछ लोगों की धारणा हो गयी है कि— "स्वास्थ्य ईश्वर की कृपा का फल है और इसे प्रयत्नों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता।" ऐसी बातें कहने वाले भ्रम में हैं। ऐसे

बहुत से व्यक्ति मिलेंगे जो जन्म से अस्वस्थ थे और आगे चल कर हृष्ट पुष्ट और बलवान हो गये। स्वामी रामतीर्थ पहले बहुत दुर्बल और अस्वस्थ थे। संन्यास लेने के बाद जब वे पहाड़ों पर घूमने लगे तथा स्वच्छ वायु सेवन करने लगे तो वे स्वस्थ एवं बलवान हो गये। सुप्रसिद्ध विदेशी पहलवान 'सैण्डो' पहले दुर्बल और कृश-काय था। कुछ वर्षों के पश्चात् वह स्वस्थ ही नहीं बल्कि अपनी शारीरिक शक्ति के लिये प्रख्यात भी हो गया। ऐसे ही बहुत से व्यक्ति मिलेंगे जो बचपन में स्वस्थ थे परन्तु फिर स्वास्थ्य खो बैठे हैं। प्रसिद्ध मल्ल 'गुर्जर सैण्डो' और प्रोफेसर शाह का कथन है—"बलवान शरीर गढ़े जाते हैं, पैदा नहीं होते।"

कुछ लोग समझते हैं कि मनुष्य अधिक भोजन और पौष्टिक पदार्थ सेवन से ही स्वस्थ रहता है। इसलिये वे प्रायः अपने दुर्बल लड़कों को यही आदेश देते हैं कि—"खूब खाओ।" वे यथा शक्ति उनके लिये दूध, घी, मक्खन, मेवा तथा फल का प्रबन्ध भी करते हैं परन्तु उनके बालकों के स्वास्थ्य में कोई अन्तर नहीं पड़ता। स्वास्थ्य उत्तम भोजन पर निर्भर नहीं, हाँ उत्तम भोजन स्वास्थ्य का सहायक अवश्य है। प्रतिदिन देखने में आता है कि पौष्टिक पदार्थ और भस्म सेवन करने वाले धनिक स्वास्थ्य विहीन ही रहते हैं। इसके प्रतिकूल सूखी रोटी तथा चना चबाने वाले श्रमजीवी स्वस्थ और हृष्ट पुष्ट रहते हैं। इसका क्या कारण है? स्वस्थ रहने के लिये अधिक भोजन करने की अपेक्षा उसे पचाना अधिक उपयोगी है। आरोग्यता के लिये शारीरिक परिश्रम अत्यन्त अनिवार्य है। जो आलस्य के कारण शारीरिक श्रम नहीं करता अथवा जिसे कार्य बाहुल्य के कारण व्यायाम के लिये समय नहीं मिलता, प्रकृति उसे दैहिक परिश्रम करने के लिये

बाध्य करेगी तथा उसे रुग्ण रहने का समय स्वयमेव दे देगी। *"Health lies in labour and this is no royal road to it, but through toil."* अर्थात् स्वास्थ्य परिश्रम में ही है। स्वस्थ रहने का राज-पथ केवल परिश्रम—व्यायाम-ही है, अन्य कोई नहीं।

प्रत्येक मनुष्य को अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखना आवश्यक है। जिसे वह अमूल्य रत्न प्राप्त है उसे अपनी सम्पत्ति की भाँति इसकी रक्षा करनी चाहिये और परमपिता को धन्यवाद देना चाहिये। बलवान व्यक्ति निर्भीक और साहसी होता है। स्वास्थ्य का ध्यान रखना सफलता के लिये तैयार होना है। सफल होने के लिये स्वस्थ रहना उतना ही आवश्यक है जितना जीवित रहने के लिये श्वास लेना। अस्वस्थ रह कर सफलता की कामना करना टूटी तरणी से सरिता के उस पार जाने का उपक्रम है।

वास्तव में स्वास्थ्य ही,
सारे सुखों का मूल है।
स्वास्थ्य की अवहेलना,
करना बड़ी ही भूल है॥

स्वावलम्बन

"यदि संसार में तीस करोड़ ईसा, मुहम्मद, बुद्ध या राम जन्म लें तो भी तुम्हारा उद्धार नहीं हो सकता। जब तक तुम स्वयं अपने अज्ञान को दूर करने के लिये बद्ध परिकर नहीं हो जाते, तब तक तुम्हारा उद्धार कोई नहीं कर सकता। इसलिये दूसरों पर निर्भर मत रहो।"

—स्वामी रामतीर्थ।

× × × ×

स्वावलम्बी को अपने ऊपर उतना ही भरोसा रहता है जितना एक सम्राट् को अपनी सेना पर।

× × × ×

दूसरों की सहायता पर निर्भर रहने वाले व्यक्ति जीवन में कभी महान् कार्य नहीं कर सकते। यदि फिर भी वे महत्वाकांक्षी हैं, तो निश्चय ही उन्हें विफल होना पड़ेगा और असफलता में ही संसार से विदा होना पड़ेगा।

जिसे अपने बाहुओं की शक्ति पर विश्वास है और जो परिश्रम पर श्रद्धा रखता है उसे इसका गर्व है कि वह विपत्ति और संकट के समय भी अपनी जीविका के लिये व्यग्र नहीं हो सकता। संकट की काली रात्रियों में भी वह अपनी आन्तरिक शक्तियों के पावर हाउस (Power House) द्वारा स्वावलम्बन की विद्युत उत्पन्न करके अपने अन्धेरे पथ को ज्योतिर्मय कर लेगा।

स्वावलम्बन विपत्ति का सच्चा साथी है। किसी भी कार्य को छोटा न समझना और कम से कम व्यय में अपना निर्वाह करन

स्वावलम्बन को और भी शक्तिशाली बनाना है और उसमें अधिक चमक उत्पन्न करना है। स्वावलम्बी किसी भी कार्य को छोटा नहीं समझता। वह छोटे कार्य से उन्नति करने में उतना ही गौरव समझता है जितना एक विजेता छोटे-छोटे उपनिवेशों, राष्ट्रों और देशों को जीत कर विश्व विजयी होने में अनुभव करता है। ऐसे व्यक्तियों की सम्मान-रक्षा स्वावलम्बन स्वयं करता है और उन्हें किसी के यहाँ कुछ माँगने जाने से रोक कर उनकी प्रतिष्ठा सुरक्षित करता है।

जब कोई दूसरों से सहायता लेने की बात सोचता है उस समय वह अपनी आन्तरिक शक्तियों की अवहेलना करता है, जब लेता है उन्हें दुर्बल और शक्ति-हीन बनाता है और जब वह दूसरों से सहायता लेने का अभ्यस्त हो जाता है तो उनकी हत्या कर डालता है। दूसरों का सहारा अल्प-कालिक और क्षण-भंगुर है, इसलिये कुछ काल के पश्चात् जब वह उसे नहीं पाता तो वह अपने को भाग्यहीन समझ कर निकम्मा हो जाता है और पतन के गड्हे में गिर जाता है। फिर उससे कुछ भी होना कठिन हो जाता है।

स्वयं उपार्जित द्रव्य द्वारा निर्वाह करना ही स्वावलम्बन नहीं है। मनुष्य को अपने बाहु-बल पर विश्वास होना चाहिये। वह अपनी रक्षा स्वयं कर सके, अपना कोई भी कार्य स्वयं पूर्ण कर सके, अपनी उलझने स्वयं सुलझा सके और अपना लक्ष्य स्वयं स्थिर कर सके। उसे मनुष्य जीवन के उपयोग में आने वाले समस्त कार्यों का कम से कम साधारण ज्ञान रखना अत्यावश्यक है। समय पड़ने पर वह अपना भोजन स्वयं बना सके, अपने वस्त्र स्वयं धो सके, अपने पत्र स्वयं टाइप कर सके, गैस की बत्ती जला सके, ग्रामोफोन तथा रेडियो का प्रयोग कर सके, सायकिल, मोटर का सञ्चालन कर सके, किसी सभा या जन समुदाय में

अपने विचार प्रकट कर सके, किसी पीड़ित अथवा मर्माहत व्यक्ति की प्राथमिक चिकित्सा (First-Aid) कर सके और इसी भाँति उसे प्रतिदिनके प्रयोग में आने वाले म्युनिस्पिल बोर्ड डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, पोष्ट आफिस, रेलवे, बैंक तथा न्यायालय के नियमों का भी साधारण ज्ञान होना अनिवार्य है; जिससे उसके दैनिक-जीवन में कोई कठिनाई उत्पन्न न हो और वह एक सभ्य नागरिक बन सके।

स्वावलम्बन का अर्थ है—आत्म-निर्भरता। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि मनुष्य दूसरों से किसी प्रकार की भी सहायता ले ही न; उनके सहयोग से लाभ उठाने से वञ्चित रहे और उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध ही न रखे। नहीं, वह अपने मित्रों का सहयोग प्राप्त करे, अपने बन्धुओं से लाभ उठाये, परन्तु उनके सहारे पर निर्भर न रहे, उनकी सहायता का आश्रित न हो जाय और उनकी मदद का गुलाम न बन जाय। ऐसा न हो कि उनके हाथ लगाये बिना वह अपने कर्त्तव्य का बोझ न उठा सके और मार्ग में उनके कन्धा लगाये बिना वह उसे निर्दिष्ट स्थान तक न ले जा सके। दूसरों से वहीं सहायता लेनी चाहिये जहाँ उनकी सहायता की वास्तविक आवश्यकता हो परन्तु फिर भी मनुष्य में ऐसी दिव्य-शक्ति होनी ही चाहिये कि उनकी सहायता के अभाव में भी वह अपने कार्य का सम्पादन कर सके और उनकी कृपा की प्रतीक्षा में बैठा न रहे।

जो व्यक्ति अपने करने योग्य कार्यों को भी दूसरों के लिये छोड़ देते हैं; वे जीवन में कभी भी सफल नहीं हो सकते और महान् नहीं बन सकते। स्वयं करने योग्य कार्य दूसरों पर छोड़ने वालों को समझना चाहिये कि उनका भविष्य और उनकी सफलता की कुञ्जी भी दूसरों के ही हाथों में है। ऐसे व्यक्ति बड़े ही दयनीय

हैं, क्योंकि ये कभी भी अवसर से लाभ नहीं उठा सकते और सफल होकर यशकीर्ति के भागी नहीं हो सकते।

स्वावलम्बी होकर जो नवयुवक कभी उज्ज्वल रत्न हो सकते थे और देश के हार बन सकते थे, शोक! उन्होंने इसके महत्व को न समझ कर अपना जीवन अन्धकारमय बना डाला। अपनी भावी उन्नति-वल्लरियों को स्वावलम्बन-सुधा से सिञ्चित न करके उन्हें समूल सुखा डाला!! इसके अभाव को न समझ कर विद्यार्थियों ने तो बड़ी ही हानि उठायी है। दूसरों पर निर्भर रहने की विद्यार्थियों में प्रायः स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। इसी कारण आर्थिक कठिनाइयों की उलझन में पड़ते ही अधिकांश विद्यार्थी किंकर्त्तव्य विमूढ़ हो जाते हैं। फल स्वरूप कितने ही होनहार विद्यार्थी ज्ञानार्जन का अक्षय-धन सञ्चित करने से विमुख रह जाते हैं और लक्ष्य-च्युत हो जाते हैं। वे आर्थिक बाधाओं पर विजय प्राप्त करके अपना अध्ययन क्रम स्थायी नहीं रख सकते। परन्तु स्वावलम्बी विघ्नों और विपत्तियों की छाती पर से अपना मार्ग बना लेते हैं, और कष्टों को कुचल कर आगे बढ़ जाते हैं।

× × × ×

प्रातःकाल बहुत सबेरे उठ कर एक लड़का दस मील दूर हार्वर्ड कालेज के लिये चल पड़ा। वहाँ उसने प्रवेशिका-परीक्षा में सम्मिलित होने की इच्छा प्रकट की। आठ वर्ष की अल्पायु से ही यह निर्धन बालक नियमित रूप से पाठशाला जाने से वञ्चित रह गया। जाड़े के दिनों में यह केवल तीन महीने स्कूल जा पाता था। हल जोतते तथा घर का अन्य कार्य करते समय भी यह अपना पाठ स्मरण करता जाता था! अपने बचत के समय में यह माँग कर लायी हुई पुस्तकों का अध्ययन किया करता था। एक पुस्तक की उसे अत्यन्त आवश्यकता थी। वह उसे मिल न सकी।

एक दिन वह बहुत सबेरे उठा और झाड़ियों में बेर चुनने चला गया। फिर उन्हें थैलों में रखकर वह उनको बोस्टन के बाज़ार में बेच आया। बिक्री के पैसों से उसने लैटिन का कोष खरीदा। रात में बड़ी देर से लौट कर आने पर जब उसने अपने पिता को अपनी सफलता का वर्णन सुनाया तो वे बड़े प्रसन्न हुए। परन्तु थोड़े समय पश्चात् ही खेद प्रकट करते हुए उन्होंने कहा—"बेटे! दुःख है, मैं तुम्हें पढ़ाई का व्यय नहीं दे सकता!!"

इस पर उत्साही बालक ने निराश हुए बिना ही कहा—"पिता जी, आप शोक न करें। आप इस विषय में बिल्कुल चिन्ता न करें। मैं स्कूल न जाकर घर पर ही पढ़ूँगा और अन्तिम शिक्षा का प्रमाण पत्र प्राप्त कर लूँगा!" पिता का चेहरा प्रसन्नता से खिल उठा। आगे चल कर इस होनहार लड़के ने बड़ा चमत्कार दिखाया। पुस्तकों के लिये कष्ट पाने वाला 'थियोडर' स्वावलम्बन के बल पर एक दिन अपने देश का प्रख्यात पुरुष हुआ।

बारह वर्षों तक माइकेल एञ्जिलो ने चीर फाड़ विद्या (सर्जरी) का अभ्यास किया। अधिक परिश्रम के कारण वह अपना स्वास्थ्य खो बैठा। फिर भी वह अपना कार्य स्वयं ही करता रहा। उसने किसी नौकर या किसी विद्यार्थी से सहायता नहीं ली। वह स्वयं ही अपने चित्रों के ख़ाके बनाता, उन पर माँस, पुट्ठे लगाता और चमड़ा मढ़ता था। चित्र रंगने के रंगों और औज़ारों को भी वह स्वयं ही बनाता था। स्वावलम्बन ने उसके अभ्यास और उसकी कार्य कुशलता की वृद्धि की। वह चीर फाड़ का प्रसिद्ध डाक्टर हो गया।

× × × ×

वर्तमान शिक्षित व्यक्तियों में अधिकतर यह दोष पाया जाता है कि शिक्षा समाप्त होने पर भी वे अपने पैरों पर खड़े नहीं हैं

सकते। वे अपने कुटुम्ब का भरण-पोषण नहीं कर सकते बल्कि स्वयं अपने लिये उन्हें घर वालों का आश्रित रहना पड़ता है। इनमें से दुर्बल हृदय के लोग नौकरी न लगने अथवा कोई कार्य न मिलने पर जीवन से ऊब कर कृत्रिम उपायों द्वारा आत्म-विनाश कर लेते हैं। शोक है! शिक्षित सज्जनों की ऐसी विमल बुद्धि पर!! शिक्षितों की ऐसी दुर्दशा और अधोगति देख कर हृदय विदीर्ण हो जाता है! इसी से लोगों का ध्यान शिक्षा की ओर से उदासीन सा होता जा रहा है और वे इसे "बेकारी उत्पन्न करने का यन्त्र" समझ बैठे हैं। पढ़ लिख लेने के बाद भी दूसरों की सहायता पर निर्भर रहने वाले मनुष्यों को स्मरण रखना चाहिए—"जो स्वयं अपनी रोटी भी नहीं कमा सकता उसकी शिक्षा अपूर्ण है और उसका ज्ञान अधूरा है।" स्वावलम्बन के आश्चर्य-जनक महत्व से अनभिज्ञ रहने के कारण ही मनुष्य विपत्तियों के चङ्गुल में फसते हैं, परन्तु स्वावलम्बी आपदाओं का आक्रमण होने के पूर्व ही उन पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। शिक्षित व्यक्तियों को तो संसार के समक्ष स्वावलम्बन का उच्च आदर्श रखना चाहिये जिससे वे विश्व के मकुट-मणि हो सकें और लोगों को शिक्षा-प्रेमी बना सकें, तथा स्वयं बन सकें "*Knowledge is power*" "ज्ञान ही बल है" के ज्वलन्त उदाहरण!

मनुष्य ऐसा क्यों सोचते हैं कि दूसरों को उनसे अधिक अच्छे और श्रेष्ठ साधन प्राप्त हैं? वे ऐसी कल्पना क्यों करते हैं कि औरों में उनसे अधिक बुद्धि और बल है, दूसरे उनसे अधिक योग्य और कार्य कुशल हैं और वे उनकी प्रतियोगिता में ठहर नहीं सकते? यदि वे धैर्य्य पूर्वक विचार करें तो उन्हें ज्ञात होगा—"ईश्वर एक व्यक्ति को एक और केवल एकही श्रेष्ठ वस्तु देता है। वह किसी को सब और सबसे उत्तम वस्तुएँ कदापि नहीं देता।

जिस धनवान् को वे अपने से उत्कृष्ट समझते हैं यदि उस पर दृष्टिपात करें तो उन्हें ज्ञात होगा—वह सन्तान रहित है और उसके लिये तरसता फिरता है। उस शिक्षित व्यक्ति की ओर निहारें, तो वे देखेंगे—वह स्वास्थ्य खो बैठा है और उसके लिये भटकता फिरता है। उस शक्ति-शाली मनुष्य की दशा देखें—वह बलवान होने पर भी दासता की जंजीरों में जकड़ा हुआ है और अपनी स्वतन्त्रता खो बैठा है। विद्या, बल, बुद्धि, धन और पारिवारिक सुख-सुविधाएँ ये सब कुछ एक ही व्यक्ति में ही नहीं मिल सकतीं। कदाचित् कोई व्यक्ति ऐसा मिल भी जाय तो उसमें साहस का अभाव होगा, उसे सच्चे मित्रों की कमी होगी उसके नौकर विश्व-सनीय नहीं होंगे अथवा उसके घर में कलह की चिता सुलगती होगी और उसका गृह स्वर्ग न बन कर श्मशान का प्रतीक होगा। इसी भाँति उसमें किसी न किसी सद्‌गुण एवं सुविधा का अभाव अवश्य होगा। फिर मनुष्य अपने को क्यों इतना दीन, हीन समझता है? क्यों वह अपनी आत्मा को इतना गिरा देता है? क्यों वह उदासी और निराशा के रोग से पीड़ित तथा जर्जर हुआ रहता है? और क्यों नहीं वह स्वावलम्बन की जीवन-दायिनी शक्ति से अपना काया-कल्प करके उठ खड़ा होता है और अपने मनोरथ को पूर्ण करता है? क्यों नहीं वह स्वावलम्बन की नींव पर अपने भाग्य का भव्य-भवन निर्मित करता है, और आत्म-निर्भरता की भित्ति पर अपने सौभाग्य की रेखाओं को चित्रित करता है?

प्रत्येक मनुष्य की जीविका तथा उसके उन्नति करने के समस्त साधन उसी में निहित हैं। अशिक्षित, निर्धन, दुर्बल, लूले, लँगड़े अन्धे और बहरे प्रत्येक व्यक्ति के लिये उन्नति करने के पर्याप्त साधन हैं और ये साधन उनमें ही भरे हुए हैं। केवल उन्हें अपनी

रुचि को पहचानना है और फिर स्वावलम्बन के सहारे अपने अभीष्ट पर विजय प्राप्त करना है। क्या किसी ने अशिक्षितों को पूँजीपति होते नहीं देखा है? क्या निर्धनों को विद्या-वारिधि होते नहीं सुना है? क्या दुर्बलों के साहस का चमत्कार नहीं देखा है? क्या लूले, लँगड़ों को आश्चर्य जनक कार्य करते नहीं पाया है? क्या अन्धों और बहरों की सफलता का रहस्य नहीं सुना है? क्या एकदम साधन हीन, असहाय, दरिद्र और फटे हालों को विजय श्री प्राप्त करते नहीं देखा है? और क्या संसार द्वारा ठुकराये गये व्यक्तियों को—एकदम अभागों को-विश्व-वन्दित और संसार द्वारा पूजित होते नहीं सुना है? ऐसी कौन सी शक्ति है जिसके बल पर अभागों और अनाथों ने जीवन को सुखमय बना डाला, जिसके बल पर मनुष्य ने दुर्गम स्थानों पर भी विजय पायी और जिसके सहारे व्यक्तियों ने विश्व-विरोध का भी दमन कर डाला? यह केवल स्वावलम्बन है! स्वावलम्बन है!!

जब एक दरिद्र अनाश्रित होकर भूखों मर रहा था और जाड़े से काँप रहा था उस समय स्वावलम्बन ने उसके लिये फूस की टट्टी की व्यवस्था की और भोजन देकर उसे प्राण-दान दिया। एक दिन इसी स्वावलम्बन ने उसे प्रचुर धन-राशि का स्वामी भी बना दिया। जब एक बालक मन में पढ़ने का उत्साह और आँखों में पानी भरे पुस्तकों के लिये भटकता फिरता था उस समय स्वावलम्बन ने उसे अपनी गोद में उठा लिया और एक दिन उसे ससार के समक्ष एक विद्वान् के रूप में रखा। जब एक व्यक्ति असहाय होकर इधर-उधर भटक रहा था, जब कोई भी उसे पूछने वाला नहीं था और जब वह संकट की सरिता में बहा जा रहा था उस समय स्वावलम्बन ने उसकी बाँह पकड़ी और उसे उसके अभीष्ट स्थान पर पहुँचा दिया। संसार जिससे घृणा करता था,

जनता जिसकी अवहेलना कर रही थी और कोई भी जिसकी बात सुनता तक न था स्वावलम्बन ने उसके सिर पर हाथ रखा और उसे हृदय से लगाया। दीन और अनाथों को, दुःखों से सन्तप्त दयनीय व्यक्तियों को स्वावलम्बन अपनी गोदमें बैठाता है, उनके शिर पर हाथ रखता है और मातृ-तुल्य स्नेह से उनका चुम्बन करता है, एवं स्नेह सुधा का मधुर पान करा कर उनकी दुर्बलता दूर करता है और थकावट मिटाता है।

मनुष्य दूसरों के द्वार पर जाने की अपेक्षा स्वावलम्बन की शरण में क्यों नहीं जाता? क्यों वह दूसरों के आगे नत-मस्तक होकर अपना व्यक्तित्व हलका करता है और स्वाभिमान खोता है? वह क्यों नहीं स्वावलम्बी बनता और अपना ललाट ऊँचा रखता? स्वावलम्बन स्वयं उसकी आवश्यकताएँ पूर्ण करेगा और उसकी सम्मान-रक्षा करेगा। स्वावलम्बन की चमक के आगे निर्धनता और दुःखों का कैसा भी अन्धेरा ठहर नहीं सकता।

विदेशों के विद्यार्थी आरम्भ से ही स्वावलम्बन की शिक्षा पाते हैं। होश सँभालने के बाद काम करने की शक्ति होने पर वे किसी से सहायता लेना अपना अपमान समझते हैं। स्कूल और कालेज बन्द होने पर छुट्टियों के दिनों में अधिकांश विद्यार्थी अपने गाँवों और शहरों को छोड़ कर दूसरे स्थानों में काम की खोज में निकल पड़ते हैं। कोई किसी कार्यालय में नियुक्त हो जाता है, कोई किसी दूकानदार या किसी धनाढ्य के यहाँ नौकरी कर लेता है, और कोई खेतों में काम ढूँढ लेता है। इसी भाँति कितने ही विद्यार्थी होटलों में बर्तन धोने या उन्हें सजा कर आलमारियों में रखने के काम पर नियुक्त हो जाते हैं। दस्तकारी में प्रवीण कुछ छात्र नौकरी न करके खिलौने बनाने का स्वतन्त्र व्यवसाय कर लेते हैं। कुछ विद्यार्थी पत्र पत्रिकाएँ बेच कर धन उपार्जित कर लेते हैं, और कुछ

कपड़े धोने या बाल बनाने का कार्य करके आगामी अध्ययन के निमित्त व्यय सञ्चित कर लेते हैं। वे लोग परिश्रम के किसी भी कार्य को छोटा नहीं समझते। दूसरों की सहायता पर निर्भर रहने की अपेक्षा वे झाड़ू देने, बाज़ार से सामान लाने और जूतों पर पालिश करके निर्वाह करना श्रेष्ठ समझते हैं। निर्धन ही नहीं धनवानों के लड़के भी प्रायः स्वावलम्बन को ऊँची दृष्टि से देखते हैं। वे दूसरों की कृपा से प्राप्त स्वादिष्ट भोजन को अपने परिश्रम के रूखे-सूखे भोजन के समक्ष तुच्छ समझते हैं।

छुट्टियों के दिनों में आपको विदेशी जहाज़ों पर बहुत से विद्यार्थी-यात्री दिखायी पड़ेंगे। परन्तु इन विद्यार्थी-यात्रियों के पास आपको टिकट के भी पैसे नहीं मिलेंगे। स्वावलम्बन की सम्पत्ति लेकर ही ये अपनी यात्रा आरम्भ करते हैं। ये जहाज़ में ही कोई छोटी-मोटी नौकरी कर लेते हैं। उसमें फायरमैन, केबिन बॉय या जलयान-चालक का कार्य कर लेते हैं। अथवा पुस्तकों, फलों या खिलौनों की दूकानें खोल लेते हैं। इसी तरह ये स्वावलम्बन की पूँजी से अपनी विदेश यात्रा करते हैं और मनोरञ्जन के साथ-साथ अपना अनुभव, और ज्ञान-वर्द्धन करके स्वदेश लौटते हैं, तथा आगामी वर्ष के अध्ययन के लिये पर्याप्त धन भी सञ्चित कर लेते हैं। शारीरिक श्रम के किसी कार्य को ये लोग घृणा की दृष्टि से नहीं देखते और उसे करने में अपनी हीनावस्था नहीं समझते और न भाग्य को ही कोसते रहते हैं। इन्हें इसकी प्रसन्नता होती है कि ये अपने पैरों पर खड़े होते हैं और स्वयं अपना निर्वाह कर लेते हैं। इन्हें इसका गर्व होता है कि ये विदेश में अपने देश का एक पैसा भी नहीं जाने देते, अपितु वहाँ से ज्ञान के साथ-साथ अपने अध्ययन का व्यय भी बटोर लाते हैं।

दरिद्र और अभागे कुल में जन्म लेकर धनी और महान्

बनना, धनाढ्य और ऐश्वर्यवान वंश में जन्म लेने की अपेक्षा उत्तम है। दूसरों के आश्रित होकर, उनकी कृपा पर अवलम्बित रह कर स्वादिष्ट भोजन करने, बढ़िया वस्त्र पहनने और विलासिता का जीवन व्यतीत करने से, संकटों का सामना करके, विपत्तियाँ सह कर, अपनी गाढ़ी कमाई से प्राप्त रूखे-सूखे भोजन पर निर्वाह करना श्रेष्ठ है। अपने परिश्रम से प्राप्त मोटा और साधारण वस्त्र पहनना दूसरों की दया से मिलने वाले शाल दुशालों और रेशमी वस्त्रों से भी उत्कृष्ट है।

विदेशों में स्वावलम्बन सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है और स्वावलम्बन के कार्य को अधिक से अधिक प्रोत्साहन दिया जाता है प्रायः सभी प्रमुख देशों में "विद्यार्थी-सहायक-सभा" (Students-Co-operative Association) स्थापित है। इसके कार्यकर्त्ता विद्यार्थी गण ही होते हैं। सभा अपना व्यय स्वयं चलाती है। इसके प्रधान कार्यालय में पचासों कर्मचारी रहते हैं। इसकी शाखाएँ देश के प्रायः समस्त विद्यालयों एवं शिक्षा-संस्थाओं में होती हैं। शाखाएँ भी देश के विद्यालयों की संख्या के अनुसार ५०-६० तक रहती हैं। विद्यार्थियों की सहायतार्थ संस्था के कई विभाग खुले हैं; उदाहरणार्थ—"विद्यार्थी उधार-फण्ड" और "विद्यार्थी छात्र-वृत्ति फण्ड।"

"विद्यार्थी उधार-फण्ड" में अधिकतर उच्च श्रेणी के छात्रों को जो नीचे की कुछ कक्षाओं में स्वावलम्बन द्वारा अध्ययन करते आये हों, विशेषता दी जाती है। विद्यार्थियों को उतना ही धन उधार दिया जाता है जितने में वे साधारण रीति से अपना निर्वाह कर सकें। अपने ऋण का विद्यार्थियों को प्रथम पाँच वर्षों तक तीन प्रतिशत और इसके उपरान्त छः प्रतिशत वार्षिक ब्याज देना पड़ता है। अध्ययन समाप्त करने के दस वर्षों के भीतर विद्यार्थियों को अपना ऋण चुकाना परमावश्यक होता है। रुपये न देकर

प्रतिदिन आता और भोले बालक के साथ आँख मिचौनी खेला करता था। एक दिन दुर्भाग्य की शानदार विजय हुई और अबोध बालक की गहरी पराजय! बालक का पिता—उसके जीवन का सहारा अचानक दिव्य-धाम चला गया उसे केवल दो वर्षों का छोटा सा छोड़कर! नन्हें और निर्धन बालक की सुविधाओं पर ताले लगा दिये गये। उसके भावी विकास के मार्ग बन्द कर दिये गये। बड़े होने पर भी वह शिर न उठा सके इसके लिये ऋण का भारी बोझ तैयार खड़ा था उसे एकदम दबोच देने के लिये!!

बड़े होने पर गाँव की पाठशाला में बालक ने अध्ययन आरम्भ किया। उस समय निर्धनता ताण्डव-नृत्य कर रही थी और अभाव तालियाँ पीट कर हँस रहा था। बेचारा बालक धोती के अभाव में गमछा पहन कर ही निर्वाह करता था। और उसे लपेटे ही अर्द्ध नग्नावस्था में ही पाठशाला भी जाता था। परन्तु उस होनहार बालक के हृदय में स्वावलम्बन की शक्ति कार्य कर रही थी। उसीके द्वारा यह दुर्भाग्य पर विजय पाता गया और एक दिन सम्पत्ति, सम्मान और प्रतिष्ठा का स्वामी बन बैठा। निर्धनता में ही इसने बी० ए० पास किया और स्वाभाविक रुचि के अनुकूल एम० बी० सी० एम० डाक्टरी की उपाधि प्राप्त की। अनवरत छः वर्षों के कठिन परिश्रम के पश्चात् यह एक सफल डाक्टर हो गया। मछली-पट्टम में इसने अपनी डाक्टरी की प्रैक्टिस आरम्भ की। दस वर्षों की प्रैक्टिस में ही इसके जीवन में महान् परिवर्तन हो गया। सारा ऋण चुकाने के पश्चात् इसने स्वयं अपनी निज की भी कुछ सम्पत्ति सञ्चित कर ली।

निर्धनता में जन्मा बालक केवल एक डाक्टर बन कर ही नहीं रह गया, बल्कि इसने ज्ञान-भण्डार पर भी आधिपत्य प्राप्त कर लिया। अपनी ही स्थिति सुधार कर इस स्वावलम्बी को सन्तोष

नहीं हुआ बल्कि इसने देश और समाज की स्थिति सुधारने का भी प्रयत्न किया। अंगरेजी की दस उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखकर इसने अपने ज्ञान-सञ्चय से देश की सेवाएँ की है। इतना ही नहीं राष्ट्र-निर्माण में भी इन्होंने प्रमुख भाग लिया है।

स्वावलम्बन के पुजारी "डा० पट्टाभि सीतारामय्या" को आज कौन नहीं जानता! संक्षिप्त में इनके लिये इतना ही लिखना पर्याप्त है :—

"Here is a man born in poverty, self-built, content to be the servant of the country, who hates a procession, a photography, an address and a garland."

"अर्थात् यही वह व्यक्ति है, जो ग़रीबी की गोद में जन्मा, जिसने अपने आप अपना निर्माण किया, जो देश सेवा से सन्तुष्ट रहता है, जिसे जलूस, फ़ोटोग्राफ़ देने, मान-पत्र पाने और फूलों की मालाओं से अरुचि है।"

× × × ×

मन में विद्योपार्जन की अदम्य लगन और हृदय में महान् बनने की उच्च भावना भरे एक युवक कैलिफोर्निया (अमेरिका) पहुँचा। युनिवर्सिटी खुलने में अभी तीन महीने शेष थे और युवक की जेब भी थी एकदम खाली। उसके पास इतने भी पैसे नहीं थे कि वह अपना निर्वाह भी कर सकता!!

यह युवक निर्धनता से सताया हुआ था और अभीष्ट-सिद्धि के लिये इधर उधर भटक रहा था उन्मत्त सा होकर। परन्तु परिश्रमी प्रतीत होता था और भविष्य में कुछ कर दिखाने की क्षमता उसमें पायी जाती थी।

यह पगला युवक भारतीय था। किसी कारण से कालेज की शिक्षा को तिलाञ्जलि देकर और युनिवर्सिटी की छात्र-वृत्ति को

ठुकरा कर यह विदेश आया था। कैलिफोर्निया के प्रवासी भारतीयों से शीघ्र ही इसका परिचय हो गया। उन्होंने काम ढूँढ़ने में इसकी सहायता की।

युवक को सुबह से शाम तक फलों के उद्यान (orchard) में काम करना पड़ता था। उसे सड़े हुए फलों को टोकरों से निकाल कर अलग करना पड़ता था। इस भाँति प्रति दिन दस घंटे और सप्ताह में सात दिन इसे परिश्रम करना पड़ता था। रविवार को भी इसे छुट्टी नहीं मिलती थी। परन्तु इसे पारिश्रमिक अच्छा मिलता था लगभग चौदह रुपये प्रतिदिन। एक माह में इसने ८० डालर सञ्चित किये। बीच-बीच में कई बार उसे आर्थिक सङ्कट भी सहने पड़े थे। इसके लिये कभी-कभी उसे अपना अध्ययन भी स्थगित करना पड़ा था। परन्तु युवक कभी व्यग्र नहीं हुआ। स्वावलम्बन इसकी स्थायी सम्पत्ति थी।

यह आठ वर्षों तक अमेरिका रहा और भिन्न-भिन्न पाँच विश्व-विद्यालयों में इसने अध्ययन किया। परिश्रम के किसी कार्य से यह मुँह नहीं मोड़ता था। कभी यह किसी होटल में 'बेरे' का काम करता, कभी किसी दूकान में सेल्समैन का कार्य करता, और कभी किसी लोहे की फैक्टरी में मिस्त्री का कार्य करता। इस भाँति इस निर्धन विद्यार्थी ने अपने को आगे बढ़ाया। कुछ भी पास न होने पर भी विदेश से ज्ञान-भण्डार की वृद्धि करके और एम० ए० की उपाधि लेकर यह स्वावलम्बी सिपाही स्वदेश लौटा।

विपत्ति के अन्धेरे दिनों में स्वावलम्बी उसी भाँति अपनी ज्योति उत्पन्न करता है, जिस तरह काले बादलों के बीच से विद्युत् चमक उठती है, और अपने परिश्रम रूपी पवन के प्रचण्ड झोकों से उन मेघों को तितर बितर करके एक दिन अपनी प्रतिभा की ज्योत्स्ना छिटका देता है। निर्धनता के अ धेरे में इधर-उधर भटकने

वालों को मार्ग प्रदर्शित करने के लिये यह उदाहरण एक ज्वलन्त प्रकाश स्तम्भ है।

स्वावलम्बन या आत्म-निर्भरता स्वतन्त्रता की माता का नाम है। किसी को भोजन देकर उसकी भूख मिटाने की अपेक्षा उसे स्वयं अपनी रोटी कमाने के योग्य बना देना, उसकी जीविका का जीवन-बीमा कर देने के तुल्य है। स्वावलम्बी अपने निर्वाह के लिये दूसरों पर निर्भर कभी नहीं रहता। अपनी भुजाओं की शक्ति से, अपने पौरुष के बल पर वह कहीं भी अपनी जीविका उपार्जित कर सकता है। ऐसे मनुष्यों की सुख-नगरी में निर्धनता को कभी न घुसने देने के लिये स्वावलम्बन प्रहरी की भाँति खड़ा रहता है। ग़रीबी और हीनावस्था को वह द्वार पर से ही धक्के देकर बाहर निकाल देता है। स्वावलम्बी को अपने ऊपर उतना ही भरोसा रहता है, जितना एक सम्राट् को अपनी सेना पर।

'स्वतन्त्रता, सुख और शान्ति,' ये तीन अमूल्य रत्न दूसरों की सहायता के आश्रित रहने वाले भिखारियों के पास कभी नहीं रह सकते। ये पराधीनता से घृणा करते हैं और परिश्रमी पुरुष के पास फटकते तक नहीं। स्वावलम्बन के सम्राट् ही इनसे अलंकृत हो सकते हैं।

कुछ कर्मवीर

सूर्य्य और चन्द्रमा की गति विधि का पता लगाया जा चुका है। गगन-चुम्बी हिमगिरि के हिमाच्छादित शृङ्गों को मापा जा चुका है। भू-गर्भ में निहित अनेक वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त किया जा चुका है और अथाह जल-राशि में रहने वाले जलचरों के विषय में जानकारी प्राप्त की जा चुकी है। परन्तु क्या कोई पलने में झूलने वाले अबोध बालक बालिकाओं की शक्तियों का पता लगा सकता है? क्या कोई धूल में खेलने वाले बच्चों के संस्कार को जान सकता है? क्या किसी में उनकी भाग्य रेखाओं को पढ़ने की योग्यता है? विश्व में उथल-पुथल मचा देने वाले बालकों का भविष्य पढ़ने की किसमें क्षमता है? सदियों की रूढ़ियों को तोड़ने वाले गोद के इन लालों की शक्तियों का अनुमान कौन कर सकता है? विश्वको "क्रान्ति" और "परिवर्तन" का पाठ पढ़ाने वाले इन छोटे-छोटे शिक्षकों को क्या कोई अभी भी खिलवाड़ ही समझ रहा है? कौन कह सकता है कि ये विश्व की किस परम्परा को बदल देंगे। संसार के प्रवाह को किधर फेर देंगे? और उसे किस अनुपम मार्ग से ले चलेंगे?

किसे पता है इन धूल-धूसर बच्चों में से कितने गाँधी और जवाहर होंगे? कितने कपिल और कणाद् निकलेंगे? गुड़ियों से मनोरञ्जन करने वाली इन छोटी-छोटी कन्याओं में से कितनी दुर्गावती और लीलावती होंगी? कितनी गार्गी और मैत्रेयी निकलेंगी? पिता, अपने पुत्र का पालन जी-जान से कर, विश्व का

भावी सम्राट् तेरे आँगन में घुटनों के बल चल रहा है ! माता, अपनी पुत्रीको छाती से लगा—कन्या समझ कर उसकी अवहेलना न कर । तेरी गोद में सीता-सावित्री पल रही है । आओ, हम सब भी इन छोटे बच्चों को प्यार करें और इनका सम्मान करना सीखें । क्या पता है कितने तुलसी और रवीन्द्र नित्य हमारी आँखों से गुजर जाते हैं ? कितने तिलक और गोखले को हम प्रतिदिन झिड़क देते हैं ? कितनी कस्तूरबॉ और विजय-लक्ष्मी का हम अज्ञान से अनादर कर देते हैं ? आओ, हम इन देश के दुलारों के कामों में यथा-शक्ति सहायता देकर तन, मन, धन और विद्या-बुद्धि से इनको आगे बढ़ाकर भविष्य के लिये इनको तैयार करके, इन जीवन-निधियों कानिरीक्षण करके और इन्हें प्रोत्साहित करके इनके प्रति सम्मान और श्रद्धा प्रदर्शित करें । भविष्य में देश की बागडोर इन्हीं के हाथ में रहेगी । यही विश्व के भावी सेनानी होंगे । प्राण रहते ये देश का झण्डा कभी नीचे नहीं झुकने देंगे और जननी जन्मभूमि को गौरवान्वित करेंगे ।

× × × ×

फूस के छप्पर में एक विधवा चिन्तित बैठी है । खूँखार भेड़ियों वाला ओहियो का भयानक वन ! एकदम जनशून्य प्रदेश !! किस प्रकार वह डेढ़ वर्ष के बच्चे की भेड़ियों से रक्षा करे ? किसी तरह गरीबिन की गोद में बच्चा बड़ा हुआ । होश सँभालते ही निर्धनता रूपी सिंहनी को उसने मुँह खोले सामने देखा । जीवन-रक्षा के—आगे बढ़ने के—उसके समस्त मार्ग बन्द थे । अभाव उन्नति के द्वार को रोके खड़ा था । परन्तु लड़का परिश्रमी था और उसमें थी महान् बनने की एक तीव्र लगन । वह लकड़ी काटता, खेतों में काम करता और गृह-कार्य्यों में माता की सहायता करता था । अवकाश के समय वह उधार लायी हुई पुस्तकों का अध्ययन किया

करता था। सोलह वर्ष का होने पर वह खच्चर हाँकने के काम पर नियुक्त होता है। फिर उसे एक पुस्तकालय में झाड़ू देने और घंटी बजाने का कार्य मिलता है। पुनः एक स्थान पर यह एक डालर साप्ताहिक पर कपड़े धोने और बाजार से सामान लाने के लिये नियुक्त होता है।

फिर यह विलियम कालेज में नाम लिखाता है और दो वर्ष में ही ससम्मान उत्तीर्ण हो जाता है। २६ वर्ष की आयु में ही यह राज्य की सीनेट में प्रवेश करता है और ३३ वर्ष की अवस्था में कांग्रेस में सम्मिलित हो जाता है। इसी भाँति लड़का क्रमशः उन्नति करता जाता है। हेरम कालेज में घण्टी बजाने वाला अभागा जेम्स ए० गारफील्ड एक दिन संयुक्त राष्ट्र (अमेरिका) का राष्ट्रपति होकर रहता है और सम्मान के सर्वोच्च पद पर पहुँच जाता है!

× × × ×

"माँ! बली देल थे भूका हूँ...! बीष्ल लोतियाँ दे...!! कलाके की भूक थता लही है!!!"—क्षुधा से सन्तप्त हुए बालक ने माता का अञ्चल पकड़ कर कहा।

"बेटे! लाल!! चल, अभी तेरे लिये रसोई बना दूँ।"—उसके शिर पर हाथ फेर कर उसका मुख चूमते हुए स्नेह से माता ने कहा और पीछे मुँह करके डबडबायी आँखों से अपने अश्रु-बिन्दु पोंछ लिये!

"नईं, नईं; अभी दे माँ! बली देल थे भूखा हूँ......ऊँ......ऊँ......ऊँ?" बालक मचल पड़ा।

घर में रोटियाँ नहीं थीं। निर्धनता के कारण घर में भोजन की सामग्रियों का भी अभाव था। माता ने किसी तरह पुत्र को समझा कर छाती से लगाया। आज उसे उसकी निर्धनता नागिन

सी डस रही थी। काश, वह अपने लाल का पेट भी भर सकती !

दस वर्ष की अल्पायु में ही इस अभागिनी के जीवन-धन को जीविका के निमित्त घर छोड़ना पड़ा। ग्यारह वर्षों तक हड्डी-पसली एक करने पर उसे ८४ डालर प्राप्त हुए। परन्तु अपने सुख के लिये उसने एक भी डालर व्यय नहीं किया। वह मीलों चलकर काम ढूँढ़ता, महीनों वन में लकड़ियाँ काटता और बैलों को हाँका करता था। वह वर्ष में केवल एक माह पाठशाला में पढ़ पाता था। वह प्रतिदिन प्रातः काल उठता था और जी-जान से रात्रि तक परिश्रम करता था। इक्कीस वर्ष की अवस्था के पूर्व ही इस परिश्रमी युवक ने एक सहस्र उत्तमोत्तम ग्रन्थों को पढ़ डाला। इसके पश्चात् इसने अपने ग्राम से सौ मील दूर—नाटिक शहर में कार्य करने के लिये यात्रा कर दी। यह बोस्टन देखता हुआ तथा मार्ग के ऐतिहासिक स्थानों का निरीक्षण करता हुआ नाटिक पहुँचा। मार्ग में इसने कुल एक डालर छः सेन्ट व्यय किये।

एक ही वर्ष में यह नाटिक की वाद-विवाद सभा का प्रमुख वक्ता हो गया। अभी आठ वर्ष भी व्यतीत नहीं हुए थे कि उसने मासाचुसेट की व्यवस्थापक सभा में दासता के विरुद्ध प्रभावशाली वक्तृता दी। बारह वर्ष के पश्चात् यह राष्ट्रीय कांग्रेस में आ गया। बचपन में रोटियों के लिये तरसने वाला यह कर्मवीर अमेरिका के—"प्रेसीडेण्ट विलसन" के नाम से प्रख्यात् है।

× × × ×

बेन्जामिन फ्रेंकलिन का जीवन-चरित पढ़ कर कौन कह सकता है कि विद्योपार्जन के लिये विद्योपार्जन करने की तीव्र लगन के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु की आवश्यकता है? कौन कह सकता है कि ज्ञानोपार्जन के लिये स्वयं अपने आलस्य और अ

हेलना के अतिरिक्त अन्य भी कोई विघ्न बाधा है, और जिन पर मनुष्य विजय प्राप्त नहीं कर सकता? निर्धन और निराश्रय फ्रैंकलिन की मानसिक शक्तियों के विकास तथा उनकी विद्वत्ता का कारण यह है कि वे ज्ञानोपार्जन के अपने पावन अनुष्ठान में सदैव सचेष्ट और सतर्क रहा करते थे। अध्ययन के लिये प्राप्त किसी भी सुविधा और सुअवसर को वे व्यर्थ नहीं जाने देते थे, तथा उसका अधिक से अधिक सदुपयोग करते थे। दरिद्रता के कारण वे पुस्तकें क्रय नहीं कर सकते थे और भाड़े पर लायी हुई पुस्तकों का मूल्य वे अपना पेट काट कर ही चुकाया करते थे। इतना ही नहीं अध्ययन के लिये उन्हें स्वतन्त्र समय भी प्राप्त नहीं था। इससे दिन भर के अनवरत परिश्रम से श्रान्त होने पर भी उन्हें रात्रि में जग कर पढ़ना पड़ता था और वे प्रायः आधी-आधी रात ग्रन्थावलोकन में बिता दिया करते थे।

कर्मवीर फ्रैंकलिन की उन्नति का मूल-मन्त्र यही है कि वे स्वयं अवसर ढूँढ़ते थे और उसका पूर्ण उपयोग करते थे। वे अपने उत्थान के मार्ग में पड़ने वाली समस्त विघ्न-बाधाओं का बोझ उठाने को सदैव तत्पर रहते थे। उनकी श्रमशीलता, उनका अध्यवसाय और उनका आत्म-संयम सबके लिये अनुकरणीय है। फ्रैंकलिन का चरित अवनति के भूले-भटकों के अन्धेरे पथ में आशा की ज्योति उत्पन्न करता है और उनके पास पुनः उन्नति करने का स्वर्ण-सन्देश लेकर आता है।

× × × ×

दो युवक थे, अत्यन्त निर्धन और साधारण परिवार के। उनके पास उत्तम योग्यता का कोई भी प्रमाण-पत्र नहीं था। उनके हृदय में समाज की क्रूरता खटक रही थी। वे देश के शताब्दियों के कलंक को धोना चाहते थे। उनको राष्ट्र के रक्त में मिली एक रूढ़ि के

विरुद्ध आवाज़ उठानी थी। उनके विरुद्ध देश के विद्वान्, राजनीतिज्ञ धनाढ्य और राज्य का अधिकारी वर्ग था। ऐसी ही विकट परिस्थिति में उनका लक्ष्य छिपा था—"देश से दासता की कुप्रथा को मिटा देना।"

सड़कों पर काम करने वाले ग़ुलामों के दृश्यों ने घर-बार और अपनी स्त्री-बच्चों से पृथक किये गये दासों से भरे जलयानों ने, उन पर किये गये हृदय-विदारक दुर्व्यवहारों ने और नीलाम के करुणापूर्ण कृत्यों ने उनके हृदय में एक दर्द उत्पन्न कर दिया था। निर्दोष प्राणियों पर किये गये अत्याचारों ने उन्हें व्यग्र और बेचैन कर दिया था। मानवता को कलंकित करने वाली कुप्रथा को मिटाने के लिये उन्होंने दृढ़ संकल्प ले लिया!

क्या वे देश के सम्मानित पुरुषों के विरुद्ध आन्दोलन कर सकते थे? क्या वे शासकों और अधिकारियों के प्रतिकूल आवाज़ भी उठा सकते थे? और क्या वे अपने प्रयत्न में सचमुच सफल भी हो सकते थे! हाँ, अवश्य! अवश्य!! क्योंकि उनके हृदय में अपार साहस था। उनमें अत्याचार का विरोध करने की एक आग भभक उठी थी। अपने उद्देश्य को सफल बनाने के लिये अपने को खतरे में डालने का उनमें साहस था, और था, उसके लिये अपने प्राणों की बाजी लगाने का उनमें एक अदम्य उत्साह!

इनमें से एक युवक का नाम 'बेन्जिमन लॉन्डे' था उसने ओहियो से '*The genius of universal liberty*'—"विश्व-स्वातन्त्र्य की प्रतिभा" नामक एक पत्र प्रकाशित किया था। वह असाधारण परिश्रमी था। पत्र की छपी प्रतियों को पीठ पर लाद कर प्रति मास वह उसे २० मील दूर के स्थान पर ले जाता था। अपनी ग्राहक-संख्या बढ़ाने के लिये उसने ४०० मील की पैदल यात्रा की थी! विलियम लाइड गैरीसन को सहयोगी बना कर इसने और भी उन्नति की।

"गैरीसन" ने प्रथम अङ्क में ही "दासता से शीघ्र मुक्ति" शीर्षक एक प्रभाव पूर्ण अग्रलेख लिखा। जनता में सनसनी फैल गयी। विद्रोही भड़क उठे। गैरीसन कारागार में बन्द कर दिया गया। एक सज्जन की सहायता से ४६ दिन की जेल-यन्त्रणा भोगने के पश्चात् वह मुक्त हुआ।

एक कोठरी में गुप्तरूप से "लिबरेटर" का प्रकाशन होता था। 'लिबरेटर' की उन्नति के लिये न धन था और न उसे लोगों की सहानुभूति ही प्राप्त थी। उसके मार्ग में सर्वत्र रोड़े थे। परिस्थिति उसकी उन्नति में बाधक थी। परन्तु उसके प्रकाशकों में देश-सुधार की भावना भरी थी। उसके लिये उनमें पूर्ण त्याग था। प्रकाशकों के जीवन की आहुति के बल पर ही वह चल रहा था। इन निर्भीक युवकों की साहस भरी घोषणा पर थोड़ा ध्यान दीजिये:—

"मुझे ज्ञात है मेरी वाणी की कठोरता लोगों को असह्य प्रतीत होगी। किन्तु क्या यह कठोरता अकारण है? मैं सत्य के सदृश कठोर और न्याय की भाँति स्थिर रहूँगा। मैं अपनी बात धैर्य्य के साथ न तो सोचूँगा, न बोलूँगा और न लिखूँगा ही। जिसका घर जलता हो, उससे कहो;—धीरज के साथ उसे बुझाये! जिसकी आबरू लुटती हो, उससे कहो—शान्ति से उसे बचाये! मुझे मेरी बात में धैर्य्य मत सिखाओ। मैं सत्यता पर हूँ। भ्रम में नहीं डालूँगा। क्षमा नहीं करूँगा, और इञ्च भर भी पीछे नहीं हटूँगा। सबको मेरी बातें सुननी पड़ेगी। लोगों की असावधानी गहरी है—इतनी कि उन्हें जाग्रत करने के लिये पत्थर और मुर्दे भी सजीव हो उठें!"

—गुलामी विरोधी लिबरेटर

यह निर्भीक घोषणा थी उन वीरों की जो निर्धन, निःसहाय और निराश्रय थे। जिनकी उन्नति के सारे मार्ग बन्द थे और

जिनके विरुद्ध था समस्त संसार !! 'लिबरेटर' ने देश में उथल-पुथल मचा दी। सारे राष्ट्र में क्रान्ति की लहर फैल गयी। जन-समाज में आग सी लग गयी। शत्रु उनके पीछे पड़ गये! चारों ओर से उन पर बौछारें उड़ने लगीं। लोगों का खून खौल उठा। युवकों के शिर उड़ा देने के प्रयत्न होने लगे। दक्षिणी करोलिना के विजीलेन्स असोसियेशन ने 'लिबरेटर' के विक्रेता को पकड़ने के लिये डेढ़ हज़ार डालरों का पारितोषिक रखा। कुछ रियासतों के गवर्नरों ने सम्पादक का मस्तक लाने वाले के लिये पुरस्कार का विज्ञापन निकाला। जोर्जिया की विधान-सभा ने उन्हें पकड़ने तथा अपराधी प्रमाणित करने के लिये ५ हज़ार डालर के पुरस्कार की घोषणा की। अनेक व्यक्ति युवकों के शिर के दीवाने फिर रहे थे। युवकों के प्राणों के लाले थे! मृत्यु उन्हें ढूँढ़ रही थी!

कहाँ विपरीत वातावरण, भयंकर परिस्थिति और कहाँ वे निर्धन, अल्पज्ञ और असहाय युवक? परन्तु सच्चा प्रयत्न असफल नहीं होता। अत्याचारों का विरोध कभी निष्फल नहीं जाता। शुद्ध हृदय से निकला हुआ शब्द ब्रह्माण्ड में गूँजे बिना नहीं रह सकता। एक दिन सम्पूर्ण राष्ट्र पर उनका प्रभाव छा गया। अत्याचार और अन्याय द्वारा गला घोंटे जाने पर भी सत्यता सजीव हो उठी। विरोधी वातावरण युवकों के त्याग और तपस्या के समक्ष नत-मस्तक हो गया। सदियों से सताये गये असंख्य हृदयों से युवकों के प्रति आशीर्वाद निकल पड़ा। करोड़ों दुःखी जीवन सुखमय हो गये। प्रतिकूलता सफलता का पुरस्कार लेकर आयी। विघ्नों और आपदाओं ने कर्मवीर युवकों को विजय हार पहनाया।

संसार में ऐसे साहसी नर-रत्नों की अत्यन्त आवश्यकता है जो धन के लिये अपनी राय बेचते न फिरते हों, जो किसी के दबाव या भय से सच-सच कहने में हिचकते न हों, जो अन्याय और

अत्याचार का विरोध करने का साहस रखते हों, और जिनमें इससे उत्पन्न होने वाली यन्त्रणा और हानि को सहन करने की शक्ति हो। जो पद-वृद्धि के प्रलोभन या पद-च्युत होने के भय से सत्पथ से विचलित न होते हों, और जो स्वर्ग से नीचे गिराये जाने पर भी अपने महान् लक्ष्य से च्युत न होते हों, कहाँ हैं ऐसे व्यक्ति? बताओ, संसार उन्हें देवता समझ कर पूजेगा।

एक शिकारी अपने आखेट के पीछे गोलियाँ चला रहा था। उसकी बन्दूक का छर्रा सन्-सन् करता हुआ आया और वायु में अदृश्य हो गया। सहसा ज़ोर से चीखने की आवाज़ आयी। वहाँ-सुदूर बैठा एक युवक कराह रहा था। ओफ़! उसकी आँखों से आँसुओं के स्थान में रक्त-धारा बह रही थी!! नेत्रों से रक्त-स्राव हो रहा था!! शोक! शिकारी की बन्दूक का छर्रा दुर्भाग्य से अभागे युवक की आँखों में लग गया!! यह उसी के कराहने की आवाज़ थी। निरपराध युवक ने दोनों आँखें खो दीं! असावधानी और भ्रम ने एक व्यक्ति का जीवन नष्ट कर दिया!! अब किसी काम का न रहा बेचारा युवक! शिकारी ने पश्चात्ताप प्रकट किया और दुःख के आँसू बहाये। परन्तु पश्चात्ताप युवक के आजन्म की हानि को पूर्ण न कर सका। शिकारी के आँसू उसके रक्त का बदला न चुका सके! इस अभागे युवक का नाम "हेनरी फ़ास्ट" था।

बेचारा युवक कराहता हुआ घर आया। पुत्र की ऐसी दशा देख कर उसके पिता के शोक की सीमा न रही। वह व्याकुल हो उठा। पुत्र के जीवन को अन्धकारमय सोच-सोच कर उसका हृदय विदीर्ण हो रहा था। किसी प्रकार उसके घाव अच्छे हुए परन्तु आँखें अन्धी ही बनी रहीं। पिता को अपने जीवन के विषय में चिन्तित देखकर हेनरी फ़ास्ट बोला—"पिताजी, आप मेरे भविष्य

की चिन्ता न करें। ज्योति हीनता मेरी भावी उन्नति में बाधक नहीं हो सकती। मेरा जीवन दुःखमय नहीं होगा।"

इस घटना के बहुत पश्चात् लन्दन की सड़कों पर एक हृदय-द्रावक दृश्य दृष्टि गोचर होता था। एक पुत्री अपने पिता को सहारा देकर पार्लियामेन्ट-भवन में पहुँचाने आया करती थी। उसका पिता अन्धा था और वह अपनी योग्यता से पार्लियामेन्ट का सदस्य निर्वाचित हुआ था। यह अन्धा पुरुष वही हेनरी फास्ट था दुर्भाग्यवश जिसकी आँखें बन्दूक़ का छर्रा लगने से नष्ट हो गयी थीं। परन्तु यह अन्धा होकर भी 'दुर्भाग्य' के नाम पर चुप न बैठा और सदैव उन्नतिशील होने के प्रयत्न में लगा रहा। इस अन्धे कर्मवीर का जीवन विघ्नों का बहाना करके उन्नति न करने वाले अकर्मण्यों को लज्जित करता है और शारीरिक कष्ट भोगने वाले तथा हीनावस्था में निर्वाह करने वाले अभागे प्राणियों को भी कुछ कर दिखाने के लिये प्रोत्साहित करता है। आँखें रहते भी उसका सदुपयोग न करने वाले—अपने सुअवसर और सुविधा से लाभ न उठाने वाले-इस कर्मवीर से क्या कुछ शिक्षा ग्रहण न करेंगे ?

इस अन्धे पिता की पितृ-भक्ता पुत्री केवल अपने पिता की ज्योति ही नहीं थी बल्कि पिता के पद-चिह्नों पर चलकर वह स्वयं भी वीराङ्गना बन गयी थी। अपनी योग्यता और प्रतिभा बढ़ाकर इसने आक्स कालेज में सीनियर रैंगलर (Senior Wrangler) का उच्च पद प्राप्त कर लिया था। इस पद को सुशोभित करने वाली यही सर्व प्रथम स्त्री-रत्न थी।

× × × ×

एक साधारण स्थिति के पुरुष से उसके पुत्र के विषय में एक ज्योतिषी ने कहा—"यह होनहार बालक देशपर्य्यटन करेगा और सारा घर धन से भर देगा। तुम्हारा गृह गगन-चुम्बी और राज-

प्रासाद के सदृश सुखकर होगा। यह अनेक व्यक्तियों का अन्नदाता होगा और देश का प्रख्यात पुरुष होगा।"

गाँव वाले उससे विनोद किया करते थे और ज्योतिषी की बातें लक्षित करके बेचारे को बुद्धू बनाया करते थे। पुत्र के ग्राम की शिक्षा समाप्त कर लेने पर उसके पिता उसे लेकर बम्बई रहने लगे। कालेज का अध्ययन समाप्त करके लड़का अपने पिता को व्यवसाय में सहायता देने लगा। यह एक साहसी युवक था। यह जिस बात को सोच लेता उसे पूर्ण करने में शारी शक्तियाँ लगा देता था। अपने परिश्रम से इसने अपने व्यापार की वृद्धि की। परन्तु सौभाग्य सदैव साथ नहीं देता। अवसर प्रतिदिन अनुकूल नहीं होता। अतः उसे घाटे का भी सामना करना पड़ता था। कभी-कभी तो इसे पैसे-पैसे के लिये मुहताज रहना पड़ता था। परन्तु पैसा न रहने पर भी यह साहस का धनी था। यह बड़ा हिम्मती और अपनी धुन का दीवाना था। आर्थिक कठिनाइयाँ उठाकर फिर से इसने अपना वाणिज्य आरम्भ किया, दुर्भाग्य ने अभी भी इसका पिण्ड नहीं छोड़ा था। युवक के साहस के साथ-साथ दुर्भाग्य ने भी अपनी हिम्मत बाँधी और अन्त में उसे पराजित करके ही विश्राम लिया। युवक को इस बार इतना घाटा हुआ कि यह दिवालिया बन गया, और इसे अपना सामान तक बेच देना पड़ा। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में भी युवक ने धैर्य्य नहीं छोड़ा। सब कुछ खोकर भी इसने अपना साहस नहीं खोया। संकटों से संघर्ष करते हुए भी इसने अपना कार्य अस्थगित रखा। अवसर पाकर युवक ने दुर्भाग्य पर विजय प्राप्त कर लिया। यह एक धनवान् हो गया और कोट्याधीश बन गया। इसने देश के कला कौशल की वृद्धि की और अनेक व्यक्तियों का पालन पोषण करके देश की बेकारी को बहुत कुछ हल्की किया। इस कर्मवीर का नाम "श्री जमशेदजी नसर

वानजी ताता" है। इनके 'जमशेदपुर' या 'ताता नगर' से—जो भारत ही नहीं, समस्त एशिया के गौरव की वस्तु है—कौन अपरिचित है ?

× × × ×

मथुरा में एक खोञ्चे वाला रहता था। दही बड़े आलू, कचालू, नमकीन और मिठाइयाँ बेचना यही उसका व्यापार था और था जीवन-निर्वाह का साधन ! बड़े कष्ट और संकट से उसके दिन कटते थे। निर्धनता की चक्की में पिसा जा रहा था बेचारा नवयुवक ! परिश्रम ही उसका धन था, मितव्यय उसका मुकुट और उत्साह उसका जीवन सहचर था। केवल एक आशा थी जो उसकी गन्दी तथा धूम्र से काली हुई दुकान में चुपके से आ जाती थी और फटे वस्त्र पहने युवक को भविष्य में सुखी होने का आश्वासन दे जाती थी और उसे स्नेह-सुधा से सींच जाती थी। कोई भी अन्य सहायक नहीं था, अभागे युवक का सिवा उसके उद्योग और उसकी सहन-शीलता के !

परिश्रम द्वारा उपार्जित अपने स्वल्प पैसों को वह स्वर्ण समझता था। उसे वह कभी व्यर्थ या अपने सुख के लिये व्यय नहीं करता था। चारों ओर से निराश होकर उसने चूरन, चटनी तथा छोटी-छोटी औषधियाँ बनाना आरम्भ कर दिया। इसमें भी उसे पहले पहल सफलता प्राप्त नहीं हुई। फैन्सी लेबुल लगी हुई और आकर्षक पैकिंग की हुई अन्य पेटेन्ट औषधियों के सामने-जिनका विज्ञापन बड़ी धूम-धाम से होता था—उसकी सादी शीशी में भरी दवा मोल लेना कौन पसन्द करता ? फिर भी उसने साहस नहीं छोड़ा। निर्धनता के थपेड़े खाता हुआ भी वह अभाग्य से लड़ता रहा। अन्त में परिश्रम की विजय हुई। उत्साह से भरे युवक ने दुर्भाग्य को सौभाग्य में पलट दिया। उसकी औषधियों की ख्याति

हो उठी। उसका कार्यालय चमक उठा। 'सुख सञ्चारक कम्पनी मथुरा' से कौन अपरिचित है ! इसी बड़े से उन्नति प्रारम्भ करने वाले कर्मवीर का नाम—'पं० क्षेत्र पाल शर्म्मा' है।

× × × ×

मुजफ्फ़रपुर में एक बनिया रहा करता था, एकदम निर्धन और निरक्षर ! वह चने चबाकर अथवा कभी भूखे रह कर समय काट दिया करता था—अभागा ! उसे रोटियों के लाले थे। भर पेट भोजन भी उसे प्राप्त नहीं था। वह दिन भर मजदूरी करके—शिर और पीठ पर बोरे ढोकर किसी तरह पेट पालता था।

निर्धनता से छुटकारा पाने की उसके मन में एक तीव्र लालसा थी। अपनी स्थिति सुधारने के लिये वह एकदम तत्पर था। अपनी गाढ़ी कमाई के स्वल्प पैसों को वह मुहर से न्यून नहीं समझता था। कष्ट सह कर भी वह द्रव्य सञ्चित करता था। परिश्रम के किसी कार्य से वह मुँह नहीं मोड़ता था। कुछ रुपये एकत्र करके इसने एक छोटी सी दुकान खोल ली। आमोद-प्रमोद से चित्त हटा कर यह बचत के पैसे एकत्र करता था। धीरे-धीरे उन्नति करके इसने एक बड़ी दुकान कर ली। अब इसकी दशा पहले वाली नहीं थी। किन्तु इतने पर भी यह अपनी वर्तमान स्थिति से सन्तुष्ट नहीं हुआ। "Never be satisfied but with the highest excellence." अर्थात् कभी सन्तुष्ट न होओ, बल्कि उच्चतम सफलता प्राप्त करो।" यह उसका आदर्श था। इसी पर वह अपना जीवन ढाल रहा था। वह अपना कार्य नौकरों के भरोसे पर कभी नहीं छोड़ता था। वह ठीक समय पर अपनी दुकान खोलता था और अपने ग्राहकों को सदैव सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न करता था। समय ने उसके परिश्रम का पूरा-पूरा मूल्य चुकाया। वह निर्धन से धनवान् हो गया। इतना ही नहीं सम्पत्ति के साथ-साथ उसने सम्मान भी प्राप्त किया। युवा-

काल में पीठ पर बोरा ढोने वाले अनाश्रित को आज 'राय बहादुर टुनकी साहु' के नाम से वहाँ के सभी व्यक्ति जानते हैं।

अपनी शिक्षा के अभिमान में चूर फिरने वाले बेकार युवकों के लिये यह उदाहरण क्या कुछ भी हितकर न होगा? "एम. ए. बना के मेरी मिट्टी पलीद की!" गाने वाले बन्धु क्या इससे कुछ न सीखेंगे? मज़दूरी करके पेट पालने वाले व्यक्ति ने सम्पत्ति, सम्मान और सुख प्राप्त करके क्या हमें यह शिक्षा नहीं दी कि—"कोई कार्य छोटा और घृणित नहीं है। मनुष्य यदि कष्ट उठाने को तैयार हो जाय तो वह उन्नति कर सकता है।

× × × ×

भगवान् भास्कर अस्त हो चुके थे। अन्धकार हो चला था। काशी में पुस्तक की एक दुकान की तरफ़ एक लड़का जा रहा था, नंगे पैर और फटी हुई कमीज पहने हुए। उसके हाथ में एक मोटी सी किताब थी। बिजली के प्रकाश में शीशे की आलमारियाँ चमक रही थीं। दुकान की सजावट तथा उसकी आकर्षक वस्तुएँ देखकर लड़के का पैर आगे नहीं बढ़ता था। वह वहीं रुक गया और एक तरफ़ ठिठक कर खड़ा हो गया। थोड़े समय पश्चात् वह साहस करके और मन को दृढ़ करके दुकान के ऊपर जा चढ़ा। परन्तु संकोच के कारण उसके पैर काँप रहे थे। उसे कुछ कहने का साहस नहीं होता था। दुकानदार अपने कार्य में संलग्न था। आहट पाकर उसने दृष्टि ऊपर की तो वहाँ एक लड़के को सकुचाते हुए खड़ा पाया। उसने प्रेम से पूछा—"बोलो, क्या चाहते हो?"

लड़के ने दबी ज़बान से कहा—"क्या आप पुरानी पुस्तकें मोल लेंगे?"

"हाँ, दे लूँ!"—दुकानदार बोला।

लड़के ने अपनी पुस्तक दुकानदार को दिखायी। वह अङ्क

गणित थी। लड़का निर्धन था और कोई भी सहारा न मिलने पर विवश होकर अपनी पुस्तक बेचने आया था।

लड़के ने कठिन परिस्थिति में भी विद्याभ्यास नहीं छोड़ा। कष्ट उठा कर भी उसने बी० ए० एल० एल० बी० तक शिक्षा प्राप्त की। इसके उपरान्त उसने वकालत आरम्भ कर दी किन्तु इसमें उसका चित्त नहीं लगता था। निर्धनता अभी भी उसके पीछे पड़ी थी। वह साहित्य-प्रेमी था। उसने उर्दू लेकर अध्ययन आरम्भ किया था। अतः स्वाभाविक रुचि के अनुसार वह उर्दू में कहानियाँ लिखने लगा। उसकी प्रारम्भिक कहानियाँ श्रेष्ठ नहीं होती थीं। किन्तु वह लिखता ही रहा। कुछ समय में वह उर्दू का एक अच्छा लेखक हो गया और उसकी कहानियाँ चाव से पढ़ी जाने लगीं। उसकी लिखी कहानियों की कई पुस्तकें भी प्रकाशित हुईं। इसी बीच वह एक हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक का कार्य भी करता रहा। किन्तु चित्त न लगने से आगे चल कर इसे भी उसने छोड़ दिया। इधर उसकी प्रवृत्ति हिन्दी की ओर हो गयी, और वह हिन्दी में भी कहानियाँ लिखने लगा। अभ्यास करते-करते हिन्दी में भी उसकी लेखनी परिमार्जित हो उठी और वह एक प्रख्यात कहानी-कार बन गया। उसकी कहानियों, गल्पों और उपन्यासों का हिन्दी साहित्य में सबसे ऊँचा स्थान है। अपनी छात्रावस्था कष्ट में व्यतीत करने वाला कर्मवीर 'उपन्यास-सम्राट्' के नाम से स्मरण किया जाता है। आज स्वर्गीय श्री 'प्रेमचन्द जी' से कौन अपरिचित है? किसने उनकी अमर रचनाओं से मनोरञ्जन, ज्ञान और शिक्षा प्राप्त नहीं की? गाँन्धीजी से सन्त पं० जवाहर लाल से राष्ट्र नायक, कवीन्द्र रवीन्द्र से विश्व विश्रुत विद्वान्, बिड़ला जी से धनपति और किस बड़े से बड़े व्यक्ति ने उनके प्रति श्रद्धाञ्जलि नहीं अर्पित की?

अब्राहम लिंकन एक लकड़िहारे के पुत्र थे और एक निर्धन माता की गोद में आये थे। ये बस्ती से दूर जंगल में रहा करते थे। अत्यन्त दरिद्रता में इनका पालन-पोषण होता था। इनके पहनने के वस्त्र बहुत छोटे और तंग रहा करते थे। बटन के अभाव में ये शीशियो के कार्क या जंगली काँटे लगाया करते थे। पढ़ने के लिये इन्हें पुस्तकों का भी अभाव था!! कोसों पैदल चल कर ये मित्रों से पुस्तकें माँग कर लाते थे। रात्रि में दीपक के अभाव में इन्हें अन्धेरे में ही रहना पड़ता था। पढ़ने का कार्य ये चूल्हे के मन्द प्रकाश से चलाते थे। क्या ऐसे अभागे लड़के की उन्नति के विषय में भी कोई सोच सकता था? क्या हत-भाग्य के सफल होने की कल्पना भी कोई कर सकता था? हाँ, अवश्य! इतनी निर्धनता और कठिन परिस्थिति में रहने पर भी विश्व की कोई शक्ति इसे असफल नहीं कर सकती थी। सहस्र-कोटि विघ्न मिल कर भी इस कर्मवीर को आगे बढ़ने से रोक नहीं सकते थे। यह उन्हें रौंद कर और चूर-चूर करके आगे बढ़ सकता था, और दुर्भाग्य के स्थान में सौभाग्य का सूर्य्य प्रकट कर सकता था। क्यों? इसलिये कि इसमें महान् बनने की तीव्र लगन थी। यह प्रत्येक संकट को हँसते-हँसते सह सकता था, दुःख को मुसकरा कर उठा लेता था और अभाव का प्रसन्नता से स्वागत करता था किन्तु अपने को अयोग्य, असफल और तुच्छ श्रेणी में देखना इसे असह्य था। यह महत्ता के मार्ग में पड़ने वाली समस्त व्याधियों को सह सकता था और सफलता के लिये अपने सुख-चैन की आहुति दे सकता था।

न्याय-शास्त्र का अध्ययन करते समय भी मि० लिंकन की स्थिति सुधरी नहीं थी। स्थानाभाव के कारण ये वृक्षों की छाया में बैठ कर अध्ययन किया करते थे और जूता मोल लेने में असमर्थ होने के कारण नंगे पैर ही घूमा करते थे। नियम-व्यवस्थापक

सभा में जाते समय इन्हें पहनने के लिये पुराना सूट खरीदना पड़ा था! यात्रा के निमित्त भाड़े के भी पैसे इनके पास नहीं थे; अतः पैदल ही १०० मील की यात्रा इन्होंने की। जब ये नियम-व्यवस्थापक सभा में थे, उस समय स्प्रिंग फील्ड के एक प्रख्यात वकील 'जान स्टुवार्ड' ने इनसे कहा था—"मि० प्ले"—एक वकील-की तो तुमसे भी अधिक शोचनीय दशा थी। यहाँ तक कि वह अभागा एक अच्छे विद्यालय में नाम लिखाने में भी असमर्थ था। उसका शिक्षालय इतना जीर्ण-शीर्ण और जर्जर अवस्था में था कि उसमें खिड़कियाँ तथा किवाड़ तक नदारत थे! 'स्टुवार्ड' की इस बात से लिंकन को अधिक बल और सान्त्वना मिली और वह पहले से भी अधिक प्रोत्साहित और पुरुषार्थी हो गया। फटे वस्त्र पहिन कर, नंगे पैर रह कर और रात्रि का समय अन्धकार में बिता कर भी लिंकन एक महान् व्यक्ति हुआ। दरिद्र कुल में उत्पन्न होकर भी इस कर्मवीर बालक ने अपना भविष्य उज्ज्वल कर दिया। निराश्रय होकर भी अपने अनवरत परिश्रम से इसने संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति-पद को सुशोभित किया। इस कर्मवीर ने अपने देश की दास-प्रथा को आमूल नष्ट करके मानवता का कलंक मिटा दिया और लाखों संतप्त प्राणियों का हार्दिक आशीर्वाद प्राप्त किया।

क्या अब्राहम लिंकन का चरित पढ़कर भी कोई अपने भाग्य को कोसेगा? क्या अब भी कोई कहेगा कि उसे उन्नति करने के पर्याप्त साधन प्राप्त नहीं हैं? क्या अब भी किसी को अपनी निर्धनता खलेगी? क्या कोई परिस्थितियों का बहाना बना कर अब भी अपने को धोखा देगा? क्या अब भी मनुष्य का हृदय नहीं कहता कि—आज के मनुष्य को ऐसी अनेक सुविधाएँ प्राप्त हैं जिनके लिये पूर्व के लोग तरसा करते थे! ऐसे कितने ही अनुकूल साधन

उपलब्ध हैं जिनके लिये पहले के लोग कष्ट पाया करते थे ?" फिर मनुष्य क्यों विफल और मलिन होता है ? क्यों नहीं वह धैर्यवान् बन कर अपने संकटों का वीरता से सामना करता है ? वह क्यों नहीं अपनी स्थिति सुधारने पर कटिबद्ध हो जाता है ?

जिस समय मनुष्य के मन में प्रगतिशील बनने की इच्छा जाग्रत होगी और जब वह अपने उत्थान के लिये दृढ़-संकल्प कर लेगा—उस समय सारी बाधाएँ, सम्पूर्ण विघ्न, सारे अभाव स्वयमेव उसके आगे नत-मस्तक हो जायँगे और वह अवश्य अपनी उन्नत अभिलाषाएँ पूर्ण कर सकेगा। वह आगे बढ़ने का ध्रुव-निश्चय कर ले और आगे बढ़ना आरम्भ कर दे, फिर आगे बढ़ने का मार्ग उसे अपने आप मिल जायगा। किसी मेले तमाशे के अवसर पर, या कोई आकस्मिक घटना हो जाने पर जब जन-पथ भीड़ से खचाखच भरा रहता है, उस समय उधर से सवारी का जाना कठिन होता है, भीड़ उसे स्वयं रास्ता नहीं देती। किन्तु जैसे-जैसे सवारी आगे बढ़ती जाती है, लोग एक तरफ होते जाते हैं और कुछ ही मिनिट में वह भीड़ से पार हो जाती है। इसी भाँति चलना प्रारम्भ कर देने के पश्चात्—कार्य आरम्भ करने के बाद विघ्न, बाधाएँ स्वयं हट कर आगे बढ़ने का मार्ग दे देंगी।

सच्चे प्रयत्नशील के लिए कुछ भी अप्राप्य नहीं है। ऐसी कोई भी श्रेष्ठ वस्तु नहीं कर्मवीर जिसे प्राप्त न कर सके, ऐसा कोई भी उच्चतम स्थान नहीं जहाँ पर वह नहीं पहुँच सकता और ऐसा कोई भी कठिन कार्य नहीं जिसे वह पूर्ण नहीं कर सकता। यदि वह अपने लक्ष्य-वेध के लिये प्रस्तुत हो जाय और अपनी विजय के लिये कूच कर दे तो वह अवश्य विजयी होगा। सफलता कर्मवीर की सेविका है।

× × × ×

तेइसवें वर्ष में पदार्पण करने के पूर्व ही लार्ड मेकाले की क़लम की कीर्ति गूँज उठी थी। सिकन्दर महान् २० वर्ष की अल्पायु में ही यूनान के सिंहासन पर बैठा था और निरन्तर देश-विजय करता हुआ उत्तर पश्चिम भारत तक चढ़ आया था। १३ वर्ष के भीतर ही उसने समस्त विजयें प्राप्त की थीं और ३३ वर्ष की आयु में ही वह मर गया। गैलीलियो ने १८ वर्ष की आयु में ही इटली के पाइसा गिरजे के लटकते दीपक को देखकर आकर्षण-शक्ति के सिद्धान्तों का आविष्कार किया था। आठ सौ नगर, तीन सौ जातियों और तीस लाख मनुष्यों पर विजय पाने के समय ज्यूलियस सीज़र एक नवयुवक ही था। उस समय तक वह प्रभावशाली वक्ता, और एक सफल राज्य सञ्चालक हो गया था।

× × × ×

महाराणा रणजीतसिंह के चेहरे पर माता के दाग थे। वे एक आँख के काने भी थे। परन्तु उनके मुख की ओर देखना भी कठिन था। एक अफ़सर से पूछा गया—"बताओ, महाराणा की कौन सी आँख ख़राब है?" उसने उत्तर दिया—"उनमें इतना अधिक रुआब है कि उनके तेजमय मुख-मण्डल की ओर दृष्टिपात भी नहीं किया जा सकता!" एकलव्य का दाहिना अँगूठा कटा हुआ था तो भी वह सिद्ध हस्त धनुर्धर हो गया था। तैमूरलंग लँगड़ा था। फिर भी वह एक सफल योद्धा और योग्य सम्राट् था। नादरशाह फ़ारस के एक गड़ेरिये का पुत्र था। किन्तु उसका नाम बड़े-बड़े बादशाहों और सफल सेना नायकों को भी थर्रा देता था। शिवाजी साधारण कुल में ही उत्पन्न हुए थे। इनके पिता बीजापुर की रियासत में एक जागीरदार थे। परन्तु शिवाजी छत्रपति होकर रहे।

महानता और प्रतिभा, सम्पन्न कुल में जन्म लेने, उच्च शिक्षा

प्राप्त करने अथवा वयो-वृद्ध होने पर निर्भर नहीं है। साधनों की अनुकूलता से ही कोई महान् नहीं बनता। वकीलों, डाक्टरों, और उच्च श्रेणी के अफसरों के लड़कों में से कितने योग्य और प्रतिभा सम्पन्न होते हैं? धनवानों और व्यवसायी व्यक्तियों के पुत्रों में से कितने पिता के सदृश व्यवहार कुशल और सुयोग्य निकलते हैं? बड़ी-बड़ी डिग्रियाँ प्राप्त करने वाले शिक्षितों में से कितने होनहार और कर्मवीर होते हैं? बड़े और उच्च कुल के लड़कों में से बहुत थोड़े महान् और श्रेष्ठ बनते हैं। अधिक से अधिक वे अपना गौरव स्थायी रख सकते हैं। अधिकांश निम्न श्रेणी के व्यक्ति ही श्रेष्ठता के शिखर पर चढ़ने का प्रयास करते हैं। वही उच्च पदों पर सुशोभित होते हैं और अपने जीवन में महान् परिवर्तन करते हैं। इसलिये किसी को अपनी हीनावस्था के कारण कातर और निराश नहीं होना चाहिये। किन्तु मनुष्य को अपनी हीन परिस्थिति में ही सन्तुष्ट भी नहीं रहना चाहिये और अपनी उन्नति के लिये सचेष्ट और परिश्रमशील होना चाहिये।

सम्पन्न कुल में जन्म लेकर सुख भोगने की अपेक्षा किसी परिश्रमी के कुल का दीपक होना अधिक श्रेष्ठ है। राज-मुकुट धारण करने की अपेक्षा काँटों का ताज पहनना अधिक श्रेयस्कर है। बड़े घराने में उत्पन्न होकर बड़े कहलाने की अपेक्षा साधारण श्रेणी से उन्नति करके महान् होना उत्तम है। निर्धन परिस्थिति में जन्म लेना बुरा नहीं है। हाँ, निर्धनता के कीचड़ में पड़े रहना, कायरता है—पाप है। थोड़ी पूँजी से व्यवसाय करना खराब नहीं है, किन्तु दरिद्र बने रहना एक अपराध है।

यदि कोई टूटे-फूटे गृह में रहकर और चने-चबाकर अध्ययन करता है तो उसके लिये शोक और लज्जा की बात नहीं, अच्छ

भोजन करके, बढ़िया वस्त्र पहिन कर, अध्ययन से विमुख रहने वाले उपालम्भन के योग्य हैं क्योंकि वे अपने कर्त्तव्य की कठिनाई का बोझ उठाने से हिचकते हैं। यदि किसी की दुकान सजी सजायी और आकर्षक नहीं है तथा वहाँ टाट बिछा है तो दुकान-दारको हतोत्साह और लज्जित नहीं होना चाहिये कि उसकी स्थिति पर उसके परिचित तथा मित्र हँसेंगे। उसे केवल अपना कार्य करना चाहिये और ये सब व्यर्थ की बातें सोचनी ही नहीं चाहिये। कोई नोटबुक लेकर किसी की वेश-भूषा तथा उसके रूखा सूखा भोजन करने की दशा नोट नहीं करेगा और न कोई उसकी दरिद्रावस्था का चित्र ही खींचेगा। कदाचित् किसी को किसी की हीनावस्था का स्मरण हो और अब यदि वह उन्नत दशा में हो तो वह उसका विनोद नहीं कर सकता बल्कि, साधारणवर्ग से ऊपर उठने की, उससे शिक्षा लेगा और उसे सफल होने का अपना आदर्श बनायेगा।

कर्मवीर आपको भी अपने सदृश बनने के लिये प्रोत्साहित करते है। वे आपको भी अपने सरीखा बनाने का वादा करते हैं। वे आपको पथ-भ्रष्ट होते देखकर आपकी बाँह पकड़ने को सर्वदा तैयार रहते है। प्रकाश-स्तम्भ समीप के जलयानों का ही पथ-प्रशस्त करता है, किन्तु कर्मवीर वे महान् प्रकाश-पुञ्ज हैं जो समस्त असफल, अनाथ, असहाय और अनाश्रित व्यक्ति का पथ ज्योतिर्मय करते हैं। जाति-पाँति, वर्ण, समाज, देश अथवा अन्य किसी भी बात का भेदभाव किये बिना ही वे सर्वदा नर-नारायण की सेवा को तैयार रहते हैं और जिस किसी कि भी गाड़ी कठिनाइयों के कीचड़ में फँस जाती है और आगे नहीं बढ़ती, वे सैकड़ों और हजारों मील दूर रह कर भी उन्हें दलदल से निकालते हैं और उनके जीवन-रथ को आगे बढ़ाते हैं। टालस्टाय एवं लोकमान्य तिलक

को आदर्श रखकर गाँधीजी 'महात्मा' और विश्व-वन्द्य हो गये, 'वाशिंगटन' और 'मि० क्ले' को आदर्श मान कर लिंकन—अभागा लिंकन—राष्ट्रपति हो गया; तो दूसरे भी कर्मवीरों का अनुकरण करके अपना जीवन सफल क्यों नहीं कर सकते ? महापुरुषों का जीवन ही उनका स्मारक है। कर्मवीरों को किसी भी कृत्रिम स्मृति या 'मिमोरियल' की आवश्यकता नहीं है। उनके जीवन के साँचे में ढलने से दूसरे भी तद्रूप हो सकते हैं।

कर्मवीर रोने वालों के आँसू ही नहीं पोंछते, उन्हें हँसा भी देते हैं। वे उन्हें हँसा कर ही नहीं रह जाते बल्कि हँसाते-हँसाते ही वे उन्हें विपत्ति, बाधा और कठिनाई पर विजयी भी बना देते हैं।

सैनिक की भाँति कर्त्तव्य के लिये सर्वदा बद्धपरिकर रहो। सदैव सावधान और सचेष्ट रहो। ऐसा न हो जब कर्त्तव्य की पुकार हो तो तुम सोते रहो; आलस्य में पड़े रहो। असावधान रहने से साथी आगे बढ़ जायेंगे, तुम पिछड़ जाओगे। विघ्न-बाधा रूपी शत्रु चढ़ आयेंगे और तुम व्यर्थ मारे जाओगे।

"यदि तुम उन्नति के शिखर पर पहुँचना चाहते हो तो कभी आलसी न बनो। संसार में जिसने जन्म लिया है उसे सैनिक होना ही चाहिये।"

—पं० जवाहरलाल नेहरू।

आओ, जीवन में प्रतिभा प्राप्त करने वाले कर्मवीरों—महापुरुषों—की हम आरती उतारें तथा उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करें, परन्तु इनके प्रति हमारी श्रद्धा और भक्ति तभी प्रदर्शित होगी, जब हम इनका हाथ पकड़ेंगे—इनके चरण-चिह्नों पर चलेंगे—और जब हम स्वयं भी उन्नति करके इनके अनुगामी बनेंगे।

उपसंहार

Life is an up hill journey,
And at the top rests glory.

जीवन उतुङ्ग पर्वत-यात्रा के सदृश है और उच्चतम चोटी पर विजय निवास करती है।

मखमली कालीन जिनके पैरों में चुभती है और गुलाब की पंखड़ियों से जिनका शरीर छिल जाता है, फूँक से उड़ने वाले मोम के ऐसे पुतले जीवन-संग्राम में विजयी नहीं हो सकते। वे कभी भी आदर्श और महान् नहीं हो सकते। यही नहीं उन्हें जीवन-कुसुम का सच्चा सौरभ-सुख भी प्राप्त नहीं हो सकता। कण्टकों में बिंध कर जाने वाले प्रेमी ही सुमन-सुधा का पान कर सकते है। मलिन्द ही अरविन्द के मकरन्द और पराग का आस्वादन कर सकते है। रङ्गीन तितलियों की पुष्पराज 'गुलाब' तक पहुँच ही कहाँ? वहाँ तो कंटक का संकट झेलने वाली मधुमक्खी ही पहुँच सकती है। रत्नाकर में डुबकी लगाने वाले ही रत्न-राशि पा सकते हैं। परिश्रम के नाम से 'छुई मुई' और 'लाजवन्ती' बनने वाले क्रीड़नक के अतिरिक्त किसी भी उपयोग में नहीं आ सकते।

बिना कष्ट सहे, आपत्ति झेले आज तक कोई महान् और उच्च नहीं बना। सरलता से मिलने वाली सफलता स्थायी नहीं होती। निर्विघ्नता से प्राप्त होने वाली विजय में उतना आनन्द नही होता जितना विघ्नों से मुठभेड़ करके मिलने वाली जीत से होता है। आपदा और संकट सफलता को सुरम्य बना देते हैं। उसमें आकर्षण, चमत्कार और जीवन भर देते हैं। लोहा अग्नि का ताप,

हथौड़े की चोट एवं सान की रगड़ सहकर ही उत्तम शस्त्र बनता है। खान से निकलते ही हीरे में ज्योति नहीं पायी जाती साफ़ किये जाने तथा कारीगरों द्वारा तराशे जाने पर ही उसमें आभा आती है और तभी वह अपने प्रकाश से चका-चौंध उत्पन्न कर सकता है। संगतराशों की छीनी और हथौड़े की मार सहकर ही प्रस्तर मूर्ति बनता है। तुफ़ान के थपेड़े खाकर और भयंकर भँवर में पड़कर ही मल्लाह कुशल नाविक होता है। इसी भाँति बिना पानी में डूबे-एक-आध घूँट पानी पीये मनुष्य तैरना नहीं सीखता और कभी श्रेष्ठ तैराक नहीं बनता।

सफलता की चोटी पर पहुँचने वाले दुर्गम पहाड़ी और कठिन पर्वत खण्डों को पार करके ही उच्च शिखर पर पहुँचे हैं। महान् पुरुषों ने कितने हो छोटे-मोटे कार्य करके, परिश्रम और उत्साह से महत्ता प्राप्त की है। अधिकतर धनी और विद्वान् वे ही हुए हैं पहले जिनके भोजन का भी प्रबन्ध नहीं था। जिन्हें स्कूल की फीस भी नहीं मिल पाती थी। रात्रि में अध्ययन के लिये जिन्हें दीपक का भी अभाव था। इतने पर भी वे हतोत्साह और निराश नहीं हुए। सम्पत्ति, सम्मान तथा ज्ञान की वृद्धि करके एवं अपने पावन संकल्प को पूर्ण करके ही उन्होंने विश्राम लिया।

चने चबाकर निर्वाह करने वाला, फुट-पाथ (*Foot-Path*) पर खड़ा होकर स्याही बेचने वाला, स्नान-घाट के पत्थरों पर विश्राम करने वाला और विफलता से खिन्न होकर अफ़ीम से प्राणान्त करने की नादानी करने वाला, अनाथ और अभागा—"जगबन्धु-दत्त" जब सफल हो सकता है तो अन्य लोग क्यों नहीं हो सकते ? वे भी हो सकते हैं और अवश्य हो सकते हैं।

कष्टमय जीवन व्यतीत करने वाला रविवर्म्मा जब चित्रकार हो सकता है, निर्धन विधवा का पुत्र 'इण्डियन प्रेस' का संस्थापक हो

सकता है, पढ़ी पुस्तकें बेचकर अध्ययन करने वाला लड़का जब 'प्रेमचन्द' हो सकता है; तब दूसरे भी उसी मार्ग का अवलंबन करके महान् क्यों नहीं हो सकते और अपना अभीष्ट पूर्ण क्यों नहीं कर सकते ? बाधा कर्मवीर को रोक नहीं सकती। मनस्वी विघ्न के मध्य से भी अपना पथ बना लेते हैं और उसे प्रशस्त कर देते हैं।

× × × ×

जो चूल्हे के मन्द प्रकाश में पढ़ता है, उपानह के अभाव में नंगे पैर घूमता है, तथा तृण-साथरी जिसकी शय्या है, भूसे का थैला जिसका तकिया है और हैं पुराने वस्त्र (*Second Hand*) ही जिसके परिधान; ऐसे अभागे अब्राहम के जर्जर जीवन की कल्पना कीजिये।

अब अमेरिका से अमानुषीय अत्याचार—दासत्व-प्रथा–का अन्त करने वाले देवता स्वरूप लिंकन और वहाँ के राष्ट्रनायक राजेश्वर लिंकन के सौभाग्य और ऐश्वर्य की बाँकी-झाँकी देखिये। अरे ! यह तो वही व्यक्ति है जो कुछ वर्ष पूर्व चिथड़ा लपेटे गलियों में भटकता फिरता था !! आश्चर्य ! कल का भिखारी आज का राजेश्वर ! विगत का श्रमजीवी आज का राष्ट्रनायक !! रंक को इस भाँति राव होते देखकर और नगण्य को नियामक होते देख कर मनुष्य चकित हो उठता है तथा स्वाभाविक ही क्यों और कैसे ?" का प्रश्न उसके मन में चक्कर काटने लगता है। परन्तु उत्साह, परिश्रम और दृढ़ लगन में ऐसी ही आश्चर्यमयी शक्ति अन्तर्हित है। एकाग्रता और अध्यवसाय के बल पर ही कर्मवीर लिंकन दरिद्र से राष्ट्रपति हुआ। स्वावलम्बन और लक्ष्य की दृढ़ता ने ही, जिसका उसने संकट की भट्ठी में तपाये जाने पर भी साथ नहीं छोड़ा—उसे महत्ता दी।

जब लिंकन जन्म से उपेक्षित और तिरस्कृत लिंकन, राष्ट्रपति और युगप्रवर्त्तक बन सकता है तब प्रयत्नशील होने पर दूसरे भी उच्च और महान् क्यों नहीं हो सकते ? जिस पथ पर चल कर कर्मवीर सफल हुए हैं और जिस युक्ति से उन्होंने अपने दुर्भाग्य को सौभाग्य में बदला है, उसी मार्ग का अवलम्बन करके अन्य लोग क्यों नहीं सफल और सुखी हो सकते ? उसी युक्ति से वे अन्धकार को प्रकाश में क्यों नहीं परिणत कर सकते ? विश्व की कौन सी बाधा उन्हें रोक सकती है ? सफलता का मार्ग प्रत्येक के लिये खुला है । सभी अपना भविष्य उज्ज्वल कर सकते हैं ।

युवक ! भविष्य में महान् होने वाले आज जिस परिस्थिति में हैं तुम उससे कुछ भी न्यून नहीं हो । आगे चलकर पूज्य और प्रख्यात होने वाले आज जिस वातावरण में पनप रहे हैं, तुम भी उसी में हो । वे आज जिस ऊँचाई पर खड़े हैं तुम भी वहीं खड़े हो । भविष्य में कुछ कर दिखाने की इच्छा रखने वाले अपने सहयोगियों, समवयस्कों और समकक्षों के जीवन का सूक्ष्मता से निरीक्षण करो, तो तुम्हें ज्ञात होगा—"भावी कर्मवीर अभाव की पगडण्डियों पर चल रहे हैं, भावी उज्ज्वल रत्न आज धूल से लिपटे पड़े है । भविष्य में धनवान्, बलवान्, विद्वान् तथा प्रख्यात बनने वाले व्यक्ति आज निर्धन, निर्बल, निरक्षर तथा साधारण श्रेणी में हैं । आज उन पर लोगों की दृष्टि भी नहीं पड़ती, उनका स्मरण तक नहीं होता और वे उनके सामने से पैर घसीटते एवं धूल उड़ाते हुए निकल जाते हैं ।" परन्तु भविष्य में ये अवश्य महान् होकर रहेंगे । कुछ वर्षों के पश्चात् ये अवश्य सम्पत्ति, सम्मान और सफलता प्राप्त करके रहेंगे । अपने समय में वे अपनी प्रतिभा से चकाचौंध उत्पन्न कर देंगे । उन्होंने अपना कार्य आरम्भ कर दिया है । वे अपनी विजय-यात्रा के लिये चल पड़े हैं । अभी वे भी कठिन परिस्थिति में

जकड़े हुए हैं। उन्हें भी उलझनों से निकल कर आगे बढ़ना है। किन्तु वे अपने अभीष्ट को प्राप्त करके ही रहेंगे। निःसन्देह इसके लिये उन्हें वर्षों अकथ परिश्रम करना पड़ेगा। परन्तु पचीस-तीस वर्षों के पश्चात् उनके जीवन में महान् परिवर्तन हो जायेगा। युवक परिश्रम करो और विश्व को अपने प्रकाश से आलोकित कर दो।

उत्तम कार्य आरम्भ करने का शुभ मुहूर्त 'शीघ्र आरम्भ कर देना' ही है। विलम्ब निकृष्ट मुहूर्त है। प्रतीक्षा का प्रेत मनुष्य के समय—उसके जीवन—और शुभ कार्य को भक्षण करते देखा गया है। 'शुभस्य शीघ्रम्' में सर्वोत्तम मुहूर्त- अमृत—बेला समाहित है।

प्रारभ्यते न खलु विघ्न भयेन नीचैः।
प्रारभ्य विघ्न विहता विरमन्ति मध्याः॥
विघ्नैः सहस्रगुणि तैरपि हन्य मानाः।
प्रारब्ध मुत्तम गुणा न परित्यजन्ति॥

नीच लोग विघ्न की आशङ्का से कार्य आरम्भ ही नहीं करते। मध्यम श्रेणी के पुरुष कार्य आरम्भ करने के पश्चात् विघ्न उत्पन्न होने पर उसे स्थगित कर देते है। उत्तम गुण वाले-महान् पुरुष-सहस्रों विघ्न-बाधा होने पर भी आरम्भ किये हुए कार्य को नहीं छोड़ते।

कितने ही व्यक्ति जीवन में सफलता प्राप्त किये होते और सफल सेनापति, अमर कलाकार, राष्ट्र-निर्माता एवं धन-कुबेर हुए होते, परन्तु विघ्न के भय से उन्होंने बीच में ही कार्य स्थगित कर दिया और युद्ध किये बिना ही आत्म-समर्पण करने वाले सम्राट् के सदृश उन्होंने कलंक का टीका लगा लिया। विघ्न-बाधा से पछाड़े जाने पर भी सत्पथ पर डटने वाला व्यक्ति वह साहसी योद्धा है जिसका शरीर शस्त्रों के प्रहार से चलनी होने पर भी जो रणस्थल

से पीठ नहीं फेरता। वह विजय का भूखा है अथवा कर्त्तव्य की वेदी पर बलि होने का दृढ़-व्रती। कठिनाइयों से लड़ते रहना 'जीवित रहने' की हामी भरना है; और उन पर विजय पा लेना जीवन की बाजी जीत लेना-भली भाँति जीवित रहना है।

मनुष्य को जो भी कार्य मिले उसे सहर्ष स्वीकार कर लेना चाहिये। यदि वह कार्य उसकी रुचि के अनुकूल है, तब तो उत्तम ही है; पर यदि वह विपरीत हो तो भी अपने सामने की थाली को ठुकरा कर, प्राप्त धन्धे का निरादर करके, ईश्वर के आदेश की अवहेलना करना अनुचित ही है। अपने कार्य का स्वागत करके समस्त शक्ति से उसे सम्पादित करना मानवता का परिचय देना है। कठिन कार्य में बुद्धि का प्रयोग करके उसे सरस और सरल बना लेना व्यवहार-कुशलता, कार्य सम्पादन-शक्ति और उत्तरदायित्व सँभालने की योग्यता का विश्वास दिलाना है। मनुष्य को अपना कार्य इतनी निपुणता से करना चाहिये जितनी दक्षता से उसे पहले किसी ने न किया हो। उसे अपने प्रतियोगियों की अपेक्षा अधिक परिश्रमी, साहसी और स्फूर्तिशील बनना चाहिये तथा अपने कार्य की सूक्ष्म से सूक्ष्म बात का भी भली भाँति अध्ययन करना चाहिये, जिससे वह अपने धन्धे में जीवन भर सके।

काम करने का अभिप्राय किसी स्थान को भर देना नहीं है, बल्कि अपनी योग्यता और अपने परिश्रम से अपने स्थान को सुशोभित करना और उच्च बनाना है। यदि मनुष्य अपना कार्य सत्यता से करता है तो कोई कारण नहीं उसका धन्धा सम्मान की दृष्टि से न देखा जाय। प्रायः ऐसा देखा गया है कि जिस कार्य में एक व्यक्ति का पहले मन नहीं लगता था और जो कार्य पहले उसे निकम्मा प्रतीत होता था; उसी में आगे चल कर उसने अर्थ और ख्याति प्राप्त की। अतएव घबड़ा कर उतावली से किसी कार्य के

छोड़ देना ठीक नहीं। तत्परता और तन्मयता से कार्य करते रह कर धैर्य्य पूर्वक सफलता की प्रतीक्षा करनी चाहिये। आरम्भ में जिस कार्य में सफलता प्रतीत नहीं होती थी, कभी-कभी उसी में मनुष्य का भाग्योदय होते देखा गया है।

मनुष्य ईश्वरीय सृष्टि का सर्वोत्कृष्ट प्राणी है, और है विश्व का सर्वोपरि जीव। उसमें संसार के समस्त जीवों से श्रेष्ठ और अनन्त शक्ति सञ्चित है। यदि वह अपने पौरुष को पहचाने और अपनी योग्यता पर विश्वास रखे, तो वह किसी भी कार्य में सफल हो सकता है। यदि वह अपनी शक्तियों से काम ले—उन्हें आदेश दे—तो निःसन्देह वे उसकी आज्ञा का परिपालन करेंगी और करेंगी एक अनुचर की भाँति उसके आदेश का अनुसरण। उसे उदासीनता छोड़ कर कर्त्तव्य क्षेत्र में आना चाहिये। वह विश्व का मुकुट है, संसार का परिचालक है और है अपने समय का युग-निर्माता। फिर वह क्यों विलम्ब कर रहा है, उसे तो शीघ्र विजय के लिये प्रयाण करना चाहिये। वह अवश्य सफलता के शिखर पर अपनी वैजन्ती फहरा कर रहेगा। उसके तेज से दिशायें कम्पित होंगी और विघ्न-बाधा, ऋद्धि-सिद्धि के रूप में वरदायिनी होंगी। राज्य-लक्ष्मी उसका अभिवादन करेगी, और सौभाग्य स्वयं उसका अभिषेक करेगा।

तुम्हें अपना उत्साह नहीं खोना चाहिये सेनानी! उत्साह ही जीवन की शक्ति है—मनुष्य का रक्त है। जैसे रक्त में विकार होने से शरीर का विकास एवं पोषण नहीं हो सकता, उसी भाँति उत्साह में शिथिलता आने से मनुष्य के जीवन में भी शिथिलता उत्पन्न हो जाती है। फिर मनुष्य प्रगतिशील नहीं हो सकता और जीवन में क्रान्ति या परिवर्तन नहीं कर सकता। धैर्य्य मनुष्य को संकट में भी अधीर न होने की सान्त्वना देता है। धैर्य्य में सहन

शक्ति का अटूट स्रोत है। परन्तु उत्साह धैर्य से भी अधिक मूल्यवान् है। उत्साही व्यक्ति पराजित होकर भी अपना हृदय नहीं हारता। वह पतन के समय भी विजय के लिये कटिबद्ध रहता है। जब तक उत्साह है तब तक मनुष्य के उद्धार की आशा है, उसकी डूबती नैया का सहारा है और उसका सब कुछ है।

'लक्ष्य निर्वाचन' मनुष्य के सौभाग्य का पथ-प्रदर्शन करता है। 'साहस' मनुष्य को विरोध, विपत्ति और विपरीत वातावरण से मोर्चा लेने की शक्ति प्रदान करता है। 'समय-परिपालन' उसे 'कर्त्तव्य-परिपालन' के समय और अवसर का परिज्ञान कराता है। स्वावलम्बन मनुष्य की जीविका का प्रबन्ध करके उसके स्वाभिमान की रक्षा करता है। 'परिश्रम' में मनुष्य के दुर्भाग्य को सौभाग्य में परिणत करने की अद्भुत शक्ति अन्तर्हित है। 'शीघ्र-निर्णय' मनुष्य के समय नहीं, नहीं; उसके जीवन को व्यर्थ नष्ट होने से बचाता है और सत्वर अवसर का उपयोग करने का निर्देश देता है। 'अनुमोदन' कहता है—'कार्य की सुसम्पादिता में ही सम्पत्ति, सम्मान और सफलता का सार सञ्चित है। अपने कार्य को अपना स्वामी समझो और उसे ही प्रसन्न रखो। 'एकाग्रता' का निशाना अचूक, अव्यर्थ और अविफल होता है। 'आत्म-विश्वास' विजय श्री की निश्चयता का विश्वास दिलाता है—साथी बनता है।

संसार विलासी मनुष्यों की रङ्गशाला नहीं, कर्मठ योद्धाओं की समरभूमि है। यहाँ योग्य व्यक्ति ही उच्च स्थान पर पहुँच सकते हैं और देश के कर्णधार बन सकते हैं। उन्हीं की प्रतिभा से विश्व आलोकित होता है और वे ही 'युग-निर्माता' होते हैं। विश्व की क्रान्ति प्रगतिशील पुरुषों की प्रतिभा का ही प्रतिबिम्ब है। कर्मवीर वायु के झोंके से हिलते नहीं, वे पर्वत की तरह अचल और अटल रहते हैं। वे विघ्न से पीछे नहीं हटते, विरोध के भय

से लक्ष्य-च्युत नहीं होते और मृत्यु-भय से भी कर्तव्य से विमुख नहीं होते। वे हँसते-हँसते संकट का स्वागत करते हैं।

"आशिक मिजाज जितने हैं,
उनका यह कौल है।
आये भी जो कजा तो,
आये अदा के साथ॥"

× × × ×

सन् १८७४ ई० में अमेरिका के "इओवा" प्रान्त की एक झोंपड़ी में एक अभागे लड़के ने जन्म लिया। उसका दरिद्र पिता खेती के औजार बना कर बेचा करता था। बालक अभी होश भी सँभालने नहीं पाया था कि वह पिता की छत्रच्छाया से वञ्चित हो गया। इसके तीन ही वर्ष पश्चात् उसकी माता ने भी साकेत प्रयाण किया और मातृ-पितृ हीन बालक सम्बन्धियों की दया का भिखारी हो गया उस समय इसकी अवस्था नव वर्ष की थी। दुर्भाग्यवश सम्बन्धी भी उसे पर्याप्त सहायता नहीं दे सकते थे। अतएव शिक्षालय से अवकाश मिलने पर उसे खेत पर परिश्रम करना पड़ता था। कुछ समय पश्चात् उससे एक इंजीनियर से परिचय हो गया। उसने इसे इंजीनियर बनने के लिये प्रोत्साहित किया।

एक निर्धन और आश्रय हीन लड़के का इंजीनियर बनने का यह स्वप्न कितना निराशामय था! उसका लक्ष्य कितना उच्च, महान् और असम्भव सा था। किसी मनुष्य के आकाश के तारे तोड़ने के सदृश!! उसकी सहायता करने वाला कोई न था। दृढ़ लगन उसकी सम्पत्ति थी और स्वावलम्बन उसकी शक्ति!

"मिटा दे अपनी हस्ती को अगर कुछ मरतबा चाहे।
कि दाना खाक में मिलकर, गुले गुलजार होता है॥"

बीज नष्ट होकर ही विशाल वृक्ष के रूप में परिणत होता है।

यह सोच कर वह निराश नहीं होता था। वह किसी अवसर को खोता नहीं था और अपनी सुविधा से पूर्ण लाभ उठाता था। जीविका के लिये उसे प्रत्येक छोटे-बड़े कार्य करने पड़ते। विद्यार्थियों के मैले कपड़े वह धोबियों के घर पहुँचाता, समाचार-पत्र बेचता, व्याख्यान देता तथा चपरासी का कार्य करता था। अपने उद्देश्य में सहायक जीविका के किसी भी साधन को वह तुच्छ नहीं समझता था और परिश्रम के प्रत्येक कार्य का स्वागत करता था।

लड़का स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय में अध्ययन करने लगा। और अपनी विनम्रता तथा परिश्रम शीलता से शीघ्र ही प्रोफेसर 'ब्रेवर' का स्नेह भाजन हो गया। मि० ब्रेवर प्रसिद्ध भू-तत्व वेत्ता तथा उक्त विद्यालय के प्रोफेसर थे। यहाँ की शिक्षा ग्रहण करके यह केलिफोर्निया की खदानों में उम्मीदवार इंजीनियर की हैसियत से कार्य करने लगा। इंजीनियर होने पर भी यह साधारण श्रम-जीवियों की भाँति ही परिश्रम करता था।

इसके पश्चात् यह मि० जेनिन लेडी से मिला और उनसे नौकरी की प्रार्थना की। मि० जेनिन केलिफोर्निया में इंजीनियर थे। अपने समय के यह नयी दुनिया के प्रख्यात इंजीनियर थे। संयोग-वश वहाँ उसे कोरा उत्तर मिला। मि० जेनिन बोले—"शोक है, मेरे यहाँ कोई काम नहीं है!"

अभागे युवक ने पुनः कहा—"श्रीमान्! क्या मुझे कोई भी जगह नहीं देंगे?"

"खेद है, इस समय कोई भी स्थान रिक्त नहीं है।"

"मान्यवर! क्या चपरासी का भी कार्य मुझे नहीं देंगे?"

नहीं, उसकी मुझे आवश्यकता नहीं है।" मि० जेनिन बोले उन्हें बेकार युवक की दशा पर बड़ी करुणा हो रही थी, परन्तु वे विवश थे।

युवक कुछ कहने ही को था कि मि० जेनिन बोल उठे—"हाँ, मुझे एक टाइपिष्ट (*Typist*) की आवश्यकता तो प्रतीत होती है !"

युवक इस कला से अनभिज्ञ था। फिर भी उसने विनम्रता से पूछा—"महोदय, आपको कब तक उसकी आवश्यकता पड़ेगी !"

"थोड़े ही दिनों में"—मि० जेनिन बोले।

युवक "बहुत अच्छा" कह कर चला गया। अल्पकाल में ही उसने टाइपिंग और स्टिनोग्राफी का अभ्यास कर लिया। मि० जेनिन और युवक में विशेष परिचय हो गया था। लन्दन के एक धनाढ्य व्यक्ति को एक इंजीनियर की आवश्यकता थी। जेनिन ने इस कार्य के लिये युवक का समर्थन कर दिया। अनुभवी होने के लिये इंजीनियर की अवस्था कम-से-कम पैंतीस वर्ष अनिवार्य थी और युवक अभी २३ वर्ष का ही था। अतः दाढ़ी, मूँछ बढ़ा कर उसे अपने को ३५ वर्ष का सा दर्शाना पड़ा !

आगे चल कर युवक ने आस्ट्रेलिया को स्वर्ण-भूमि की काया पलट दी। इससे उसकी इंजीनियरिंग-दक्षता का सिक्का जम गया। खदान सम्बन्धी अड़चनों में उसकी आवश्यकता प्रतीत होने लगी। युवक ने ब्रह्मा की रजत खान, युराल और तुर्किस्तान की लौह तथा ताम्र खदानों का अन्वेषण किया। दक्षिणी अफ्रीका एवं अलासका की खानों का सुप्रबन्ध किया। इसकी खदानों में पृथक्-पृथक् देश और जाति के लगभग एक लाख पचीस हज़ार मज़दूर कार्य करते थे। इसकी अध्यक्षता में उन्होंने एक दिन भी हड़ताल नहीं की। यह युवक की कार्य कुशलता तथा प्रबन्ध सुचारुता का परिचायक है।

इसकी ख्याति सुन कर चीन सम्राट् ने इसे अपने ब्यूरो का प्रधान नियुक्त किया। चीन में इसने कई खदानों को ढूँढ़ा तथा कई को सुचारु रूप से सञ्चालित किया। फिर यह मंचूरिया और

मंगोलिया तक पहुँच गया। उस समय टेंटसीन (Tient-sen) में बाक्सर का विद्रोह छिड़ गया। शत्रुओं ने नगर घेर लिया। उस समय इसकी अध्यक्षता मे ही टेंटसीन निवासियों ने शत्रुओं का सामना किया। इसका निवास स्थान बम से उड़ा दिया गया फिर भी यह व्यग्र नहीं हुआ। गगन मार्ग से भयंकर अग्नि-वर्षा होते रहने पर भी इसने पीने का शुद्ध जल नलों द्वारा जनता तक पहुँचाया। चीन के आहतों की चिकित्सा तथा शुश्रुषा में भी इसने अच्छा योग दिया। इसने २७ वर्ष की आयु में ही चित्रवांगटो बन्दरगाह का निर्माण किया, रेल की सड़कें बनायीं और जलयानों का सुप्रबन्ध किया।

इसके पश्चात् इसने कैलिफोर्निया में निज की एक बृहत् कम्पनी स्थापित की। संसार ने इसकी प्रतिभा से प्रभावित होकर इसे "खानों के डाक्टर" की उपाधि प्रदान की। इसे व्यापार में इतनी सफलता प्राप्त हुई कि पाँच वर्षों में ही इसके कार्यालय की शाखाएँ सैंसफ्रांसिसको, न्यूयार्क, मेलबोर्न, लन्दन और शंघाई में खुल गयीं। इसने पाँच बार विश्व भ्रमण किया। चालीस वर्ष के भीतर ही यह होनहार युवक एक दरिद्र से करोड़पति हो गया। विपत्ति एवं कठिनता की पहाड़ियों पर चल कर सफलता के शिखर पर पहुँचने वाले इस मनस्वी मनुष्य का नाम 'मि० हूवर' है।

इतना कार्य बाहुल्य रहने पर भी इन्होंने १६ वीं शताब्दी के प्रख्यात लेखक 'एग्री कोला' की खदान सम्बन्धी पुस्तक का अनुवाद किया तथा चीन के गणित शास्त्र का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया। इतना ही नहीं यह साढ़े सात वर्षों तक संयुक्त राष्ट्र के सचिव रहे। फिर प्रजातन्त्र की ओर से संयुक्त राष्ट्र के राष्ट्रपति-पद के निर्वाचन में खड़े हुए और गवर्नर स्मिथ की प्रतियोगिता में भी लाखों मत से विजयी हुए और राष्ट्रपति होकर रहे। आज राष्ट्रपति 'हर्बट-हूवर' से कौन अपरिचित है? आपत्तियाँ सहकर भी महान् होने वाले

'हूवर' को कौन अपना, आदर्श नहीं बनाना चाहता ?' ऐसे महान् पुरुषों के चरण-चिह्न किसे सफलता का मार्ग प्रदर्शित नहीं करते ?

जब 'हूवर'—मातृ पितृ हीन 'हूवर' और रोटी के लिये दर-दर भटकने वाला हूवर—कोटिश और राष्ट्रपति बन सकता है, तब ऐसा कौन सा दरिद्र और अभागा मनुष्य है जो प्रयत्न करने पर अपना पथ प्रशस्त नहीं कर सकता और अपना अभीष्ट पूर्ण नहीं कर सकता। जो कार्य पहले असम्भव प्रतीत होता था, परन्तु उसे एक व्यक्ति ने कर दिखाया तो दूसरे भी दूसरी बार उसे क्यों नहीं कर सकते ? जो बातें एक बार हो गयीं वे पुनः हो सकती हैं और बार-बार हो सकती हैं।

× × × ×

युवक, जन्म-भूमि के जीवन प्राण ! देश के भावी कर्णधार !! उदास और मलिन क्यों हो ? विरोध और बाधा का स्मरण करके निराश और हतप्रभ क्यों होते हो ? निर्धनता और अभाव तुम्हें क्यों व्यग्र कर रहे हैं ? और क्यों तुम असफलता के आगे शिर झुकाते हो, जब कि विपत्ति और संकट को चूर-चूर करने की शक्ति तुम में भरी है और भरा है आपदा और अनिष्ट को रौंदने का तुम में अपार साहस ? जब कि तुम्हारे हाथ में राज्य-चिह्न है और है ललाट में सौभाग्य रेखा ? ओ, नवयुग के नियामक ! तुम्हें निराशा कैसी ? तुम्हारे हाथ से तो नवयुग का निर्माण होने वाला है और होने वाला है जननी-जन्मभूमि का मुख उज्ज्वल ! तुम्हारे हाथों ही अनीति और नृशंसता के रावण का वध होगा, दुष्ट दुर्योधन और पापी कंस का संहार होगा और होगा सुख, शान्ति और स्वतन्त्रता का सूर्योदय ! उस नवयुग में—उस मंगल प्रभात में—अत्याचार का नाम भी न होगा और शोषणवाद और राज्य-लोलुपता का पता भी न होगा ! उस समय हड़तालें नहीं होंगी,

बेकारी की महामारी नहीं होगी और नहीं होगा पशु बल का मानवता पर अधिकार। उस समय न्यायालयों की आवश्यकता ही नहीं प्रतीत होगी। वन्दी-गृहों के स्थान पर उद्योग-गृहों का निर्माण होगा। सुन्दर सड़कें, सुरम्य सरोवर, शिक्षालय और सेवा-सदन पर्याप्त संख्या में होंगे। आमोद-प्रमोद के स्थान और व्यायाम-मन्दिर स्थान-स्थान पर होंगे। सब की सफलता के द्वार खुले होंगे। किसी की आकृति पर खेद और चिन्ता के चिह्न दिखायी नहीं देंगे। सब लोग स्वास्थ्य, सुख और शान्ति से सम्पन्न होंगे। उस सुख ऐश्वर्य्य को देखकर देवगणों को भी स्पर्धा होगी और अमर भी कह उठेंगे:—

"है स्वर्ग-लोक अरु नन्दनवन, पर भारत इनसे न्यारा है।
कब जन्मेंगे हम भारत में, भारत प्राणों से प्यारा है॥"

राजकुँवर! उठो, मोह निद्रा त्यागो और उच्चतम सफलता के लिये प्रस्थान कर दो। सेनानी! तुम्हें ४० कोटि जनता का प्रतिनिधित्व करना है, नहीं, नहीं; विश्व का नेतृत्व करना है और करना है मातृभूमि का मुख उज्ज्वल! जननी के जीवन धन! अभी से अपना उत्तरदायित्व समझो! तुम्हें शिवि, दधीचि की भाँति उदार और सद्धर्मी बनना है, युधिष्ठिर सा सत्यनिष्ठ और विदुर सा नीतिज्ञ बनना है। प्रताप सा प्रण-वीर, शिवाजी सा शेर दिल और गुरु गोविन्द सा गरिमामय बनना है। तुम्हें सिंह और बकरी को एक घाट पर पानी पिलाना है और—"राम राज्य कहू का न व्यापा" को चरितार्थ करना है। ओ भावी राष्ट्र-निर्माता! तुम्हें दिखा देना है कि तुम जिस प्रगतिशील युग की कल्पना में निमग्न हो उस नव-युग के गर्भ में एक नवीन संसार निहित है। तुम्हारे विकास के साथ-साथ उस स्वप्न का भी विकास हो रहा है और अपने समय में तुम उसे सत्य करके दिखा दोगे। अपने अभीष्ट पथ की ओर

शीघ्रता से जीवन-रथ को बढ़ाओ और भाग्य-निर्माण के कार्य में योग दो। देश माता फटा आँचल पसारे तुम्हारा अभिवादन कर रही है।

तुम्हें व्याकुल लख कर सुहृदों को चिन्ता होती है भावी कर्मवीर! तुम्हीं माता की अभिलाषा हो और हो वृद्ध पिता के नेत्रों की ज्योति! तुम पर ही भावी वंशजों का भाग्य-निर्भर है। तुम उसे धूमिल कर दो या कर दो ज्योतिर्मय! तुम्हारे हाथ में ही देश की बागडोर रहेगी और रहेगी मातृभूमि की पताका! देखना, कहीं पूर्वजों के नाम पर बट्टा न लगे और जननी के दूध की निन्दा न हो! प्राण रहते देश की पताका नीचे न झुकने देना सेनानी! तुम्हें अन्यायी अत्याचारियों पर नियन्त्रण करना है और करना है दीन दुखियों का प्रतिनिधित्व! यही नहीं तुम्हें तो विश्व का सञ्चालन करना है और भारत जननी का मुख उज्ज्वल करना है। अहो! अभी-अभी तुम्हारा राज-तिलक होने वाला है ऐसे समय तुम शोक-मुद्रा में क्यों?—देश के भावी रत्न! इस शुभ घड़ी में तुम दीन-हीन से क्यों बने हो?—राजकुमार! ऐ, भविष्य में मसीह, मुहम्मद, बुद्ध और गाँधी बनने वाले महान् प्राणी! अपनी आत्मा को व्यापक बनाओ और इन आदर्श पुरुषों के अनुगामी बनो। आज न सही, किन्तु भविष्य में विश्व तुम्हारे झण्डे के नीचे अवश्य खड़ा होगा। उसे तुम्हारे नेतृत्व और पथ-प्रदर्शन की आवश्यकता होगी। अभिमान और अहंकार को तिलाञ्जलि देकर महानता की ओर बढ़ते चलो राष्ट्र के भावी भाग्य-विधाता!

मातृभूमि प्रत्येक पुत्र का आह्वान करती है। वह चाहती है—"राम और कृष्ण के वंशज, राणाप्रताप और शिवाजी की संतान कायर, कपूत बन कर न रहे। उसके पुत्र दरिद्रता, दासता और दुःख का अपमानित जीवन न बितावें। वे स्वाभिमान खोकर अबला का

अभिनय न करें। अपने पूर्वजों की भाँति वे भी पराक्रमी और प्रण-वीर होकर उसका मुख उज्ज्वल करें।" वह चाहती है—"उसके पुत्र भीम और हनुमान् से बलशाली हों, भीष्म और अर्जुन से धनुर्धारी हों और वे लक्ष्मण से ओजस्वी हों।

भारत ही नहीं विश्व को बन्धन मुक्त करने के लिये एक नहीं लाखों और करोड़ों कर्मवीर चाहिये। संसार को बहुत से नेताओं—नहीं, नहीं; सैनिकों और सेवकों की—आवश्यकता है। माता वसुन्धरा को सुखी सम्पन्न करने के लिये सच्चे कर्मवीरों की नितान्त आवश्यकता है। जननी जन्मभूमि की पुकार का प्रत्येक नवयुवक उत्तरदायी है।

भगवान् प्रत्येक व्यक्ति को उन्नत और महान् होने की शक्ति दे। सब की सद्कामनाएँ पूर्ण हों और सब जीवन-संग्राम में विजयी हों। सभी स्वास्थ्य, सम्पत्ति, सफलता, सम्मान और सुख से सम्पन्न हों।

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥

शुभम् भूयात्

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८	१४	आर्कराइट	आर्कराइट
१४	२०	का	की
१८	८	सवाह	सवाइ
२४	२४	हैं	हैं
४०	२१	सर्वोत्कृष्ट	सर्वोत्कृष्ट
४३	४	मुर्च्छित	मूर्च्छित
४५	१३	भयभीत	भयभीत
४७	९	गर्मी	गर्मी
५३	हेडिंग	लक्ष्य–निर्वाचन	आत्म–विश्वास
५६	१७	को	के
५८	२४	क्षमाणी	क्षत्राणी
५९	२	राजासिंह	राजसिंह
६४	२०	प्रायः	प्राय
७३	८	न	(अधिक है)
७३	९	तक	(न जोड़िये)
७७	४	लक्ष्य	लक्ष्य
८०	१२	समान	सामान
८१	१	आभाव	अभाव
८३	२५	समाजिक	सामाजिक
८४	२२	सलाह	सलाह
८५	१४	शीश	शीस
८५	२२	सम्राट्	सम्राट्
८६	२५	दास्ता	दासता
८७	२५	ऐसी	ऐसे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९१	३	पढ़ती है	पढ़ती है
९३	१४	थोड़ा	छोड़
९४	२४	शक्ति	शान्ति
९५	२६	पुंडीरकाक्ष	पुंडरीकाक्ष
९६	१०	कार्यान्चित	कार्यान्वित
९६	११	संशायात्मक	संशयात्मक
९८	१४	प्रादाग्रे	पादाग्रे
९९	१८	लेते हैं	लेता है
१००	८	प्रति-भोज	प्रीति-भोज
१००	१९	अपने	अपनी
१००	२१	मैं	में
१०१	९	सिंह-चम	सिंह-चर्म
१०१	१२	कवविर	कविवर
१०४	३	शाखी	शास्त्री
१०५	४	सो	तो
१०९	८	साम्रज्य	साम्राज्य
१०९	१०	हरिश्चद्र	हरिश्चन्द्र
१०९	१८	चहिये	चाहिये
१११	१६	देना	देता
११२	६	वाध्य	वाष्प
११२	२१	उन्हें	(अधिक है)
११३	हेडिंग	अनुमोदन	एकाग्रता
११५	"	"	"
११७	"	"	"
११९	"	"	"
१२१	१६	उतने	उतनी

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१३१	२३	मेंघावी	मेघावी
१३४	२३	इसन	इसने
१३८	१६	स्वीकर	स्वीकार
१४८	४	रुँदन	रुदन
१५२	१०	अनाश्यक	अनावश्यक
१५३	२०	पहुंचने	(अधिक है)
१६०	५	फ्रैंकालिन	फ्रैंकलिन
१६८	९	अस्वास्थता	अस्वस्थता
१६९	३	संन्यास	सन्यास
१७०	२	*this*	*there*
१७०	६	वह	यह
१७३	३	डिस्क्ट्रि	डिस्ट्रिक्ट
१८१	२२	विद्यर्थियों	विद्यार्थियों
१८३	३	पदर्शित	प्रदर्शित
१८४	२	वरता	करता
१८७	१६	परिश्रमी	पराश्रयी
२०२	२३	गाॅन्धीजी	गाँधीजी
२०३	१०	क्या इत	क्या इस इत
२०३	१३	सहस्त्र	सहस्र
२१७	६	सोभाग्य	सौभाग्य
२१७	१९	साथी	साक्षी
२१८	१२	सांकेत	साकेत
२२१	७	शुश्रुषा	शुश्रूषा
२२३	२१	का	काहू
२२४	५	तुन्हीं	तुम्हीं



विद्या-वाचस्पति श्री पं० वाराणसी प्रसाद त्रिवेदी, एम.ए., एल. एल. बी., काव्यतीर्थ, सांख्य तीर्थ, दर्शन-केशरी की सम्मतिः—

इस पुस्तक को हमने प्रायः अक्षरशः पढ़ लिया है। पढ़ने में बड़ा आनन्द आया। पुस्तक यों तो सर्वथा उपयुक्त है ही, किन्तु देश की वर्तमान दशा में पाठक नवयुवकों की अन्तरात्मा में अकर्मण्यता, आलस्य, नैराश्य आदि दुर्गुणों का उन्मूलन तथा उसमें धीरता, वीरता, गम्भीरता आदि सद्गुणों का स्थापना करना इस पुस्तक का प्रधान उद्देश्य है। लेखक इस कार्य में सफल हुआ है; इसके लिये हार्दिक बधाई है। पुस्तक की भाषा बड़ी माञ्जल तथा हृदयग्राहिणी है। ओज, गुण तथा वीर रस की प्रधानता है। आशा है इससे हमारे देश और जाति का परम कल्याण होगा। शमिति।

गाजीपुर } वाराणसीप्रसाद त्रिवेदी
२४-२-४६ }

